जन्मते हैं। और जो लोग पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करते हैं, वे प्राणिहिंसा वर्ज्जित, शास्त्र-रहित और दण्डहीन होकर कदापि हिंसा नहीं करते; न वे आघात कराते न स्वयं आघात करते हैं और मारनेवालेका अनुमोदन करनेमें विरत रहते हैं, वे सब जीवोंके विषयमें स्नेह-वान् हुआ करते हैं, वे अपने समान दूसरेको भी जानते हैं। हे देवि! ऐसे श्रेष्ठ पुरुष देवोंत सम्भोग करते हैं, वे हर्षित होकर उपपन्न सुख भोगोंको उपभोग किया करते हैं, अनन्तर यदि कदाचित वे मनुष्य लोकमें जन्मलेते हैं, तो दीर्घायु होकर सुख भोग किया करते हैं। दीर्घायु सच्च-रित्र सुकर्म्मशील मनुष्योंका प्राणिहिंसा विमोच वशसे यह पथ ब्रह्माके द्वारा वर्णित हुआ है।

१४४ अध्याय समाप्त।

उमा बोली, पुरुष कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार और व्यवहारसे युक्त होकर किन कर्म्मों तथा कैसे दानके सहारे स्वर्गलोक पाता है?

महादेव बोले, हे देवि! जो लोग दाता और ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं, दीन, अन्धे और कृपण आदिको भक्ष्यभोज्य अन्न, वस्त्र, तथा भूषण प्रदान करते हैं, निवासस्थान, गृह, सभा, कूप, तालाब तलाई आदि तैयार कराते और नित्य प्रयोजनीय वस्तुएं तथा जो मनुष्य जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करता उसे देते। आसन, शय्या, सवारी, धन, रत्न, गृह सब प्रकारके शस्य गऊ, चैत्र स्त्री प्रभृतिको जो मनुष्य प्रसन्नचित्त होकर सदा प्रदान करता है, वह देवलोकमें विराजता है, वह वहांपर बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोग करते हुए अप्सराओंके सङ्ग प्रमुदित होकर नन्दन प्रभृति बनोंमें क्रीड़ा करता है; स्वर्गलोकसे च्युत होनेपर वह पुरुष मनुष्यलोकमें धन धान्ययुक्त होकर महा-कुलमें जन्मता है। हे देवि! वहां समस्त काम-गुणयुक्त और हर्षित होकर वह महाभाग मनुष्य महाकोष सम्पन्न तथा धनवान होता है। ब्रह्माने पहले ही कहा है, कि दानशील महाभाग प्राणिगण सबको ही प्रिय हैं। हे देवि! दूसरे निर्बुद्धि मनुष्य दान विषयमें कृपण होकर द्विजोंको यांचनेपर धन विद्यमान रहते भी दान नहीं करते, वे जिह्वा लाभयुक्त होकर दीन, अन्ध, कृपण, भिक्षुक और अतिथियोंको यांचनेपर भी देनेसे विमुख हुआ करते हैं। वे लोग धन, वस्त्र, भोग्यवस्तु, सुवर्ण, गऊ तथा अन्नविकार कदाचित किञ्चित मात्र प्रदान नहीं करते, वे लोग दान विषयमें निवृत्त, लोभी नास्तिक तथा दान रहित होते हैं। हे देवि! ऐसे अल्पबुद्धिवाले मनुष्य नरकमें गमन करते हैं, कालक्रमसे जब उन्हें फिर मनुष्यत्व प्राप्त होता है, तब वे अल्पबुद्धि मनुष्य धनहीन कुलमें जन्मते हैं। वे लोग भूख-प्याससे युक्त सब लोगोंसे पृथक् और सब भोगोंसे रहित होकर अधमजीविकाके सहारे जीवित रहते हैं। हे देवि! इन्हीं कर्म्मोंसे मनुष्य अल्पभो-गयुक्त कुलमें जन्मते और अल्पभोगमें रत तथा निर्द्धन हुआ करते हैं। हे देवि! जो मनुष्य धनगर्व्वसे अभिमानी और स्तम्भित होते हैं, जो लोग अचेत होकर आसन देने योग्य माननीय पुरुषोंको आसन प्रदान नहीं करते, जो अल्प-बुद्धि मनुष्य पथप्रदानके योग्य पुरुषोंको मार्ग नहीं देते, जो तुच्छबुद्धि पुरुष पाद्य देने योग्य मनुष्यको पाद्यप्रदान नहीं करते, अर्घयोग्य पुरुषका सत्कार करके विधिपूर्व्वक पूजा नहीं करते अथवा जो मूर्ख मनुष्य पूजनीय पुरुषको अर्घ वा आचमनके लिये जल नहीं देते, गुरुको आया हुआ देखकर प्रीतिपूर्व्वक उसके सङ्ग गुरुयोग्य व्यवहार नहीं करते, अभिमान और लोभसे परिपूरित हुआ करते, माननीय लोगोंकी अवज्ञा करते और वृद्धोंको परिभव किया करते हैं, वे सारे मनुष्य नरकगामी होते हैं। वे मनुष्य अनेक वर्षोंके अनन्तर

कदाचित महानरकसे बाहिर होकर अत्यन्त निन्दित नीचकुलमें जन्मते हैं। जो लोग गुरु और वृद्ध लोगोंकी अवज्ञा करते हैं, वे चाण्डाल पुक्कश प्रभृति निर्बुद्धि लोगोंके निन्दित कुलमें उत्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग अभिमानी तथा अहंकारी नहीं हैं और देव ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे लोगोंके बीच पूज्य होते हैं। जो लोग गुरुजनोंको नमस्कार करते और विनययुक्त होके मधुरवचन कहते हैं, वे सब वर्णोंको प्रिय तथा सर्व्वभूतोंके हितकर हुआ करते हैं। हे देवि! द्वेष न करनेवाले महासुखशाली, अत्यन्त मृदुभाषी और जो लोग स्वागतप्रश्नसे सदा कोमल वचन कहते हैं, सब जीवोंकी हिंसा न करनेवाले अतिथियोंको यथायोग्य सत्कारसे पूजा करते हैं, पथप्रदान करने योग्य पुरुषको पथ देते हैं, बड़े लोगोंको गुरुकी भांति पूजा किया करते हैं; जो लोग अतिथिसेवामें अनुरक्त रहते और अभ्यागतोंकी पूजा करते हैं, स्वर्गगति प्राप्त होती है। अनन्तर मनुष्यत्व पाके श्रेष्ठकुलमें जन्म लेते हैं, वहांपर वेही पुरुष सब रत्नोंसे युक्त विपुल भोगके द्वारा पूज्य पुरुषोंको यथा योग्य दान करते और धर्म्मचर्य्यापरायण होते हैं। ऐसे मनुष्य श्रेष्ठकुलमें जन्मते और सदा उत्तम महत् कुलको प्रकाशित किया करते हैं। मैंने जो यह धर्म्म विषय कहा है, इसे स्वयं विधाताने वर्णन किया था। हे सुन्दरि! जिस पुरुषका व्यवहार अत्यन्त भयङ्कर है, जिसको देखके सब प्राणी भयभीत होते हैं, जो पुरुष हाथ, पांव, रस्सी वा दण्ड लोष्ट्र स्तम्भ अथवा दूसरे किसी उपायसे प्राणियोंको मारनेके लिये दौड़ता है, जिसकी बुद्धिवृत्ति हिंसाके निमित्त निकृष्ट पथमें भ्रमण करती है, जो सब जीवोंको व्याकुल करता है, सदा प्राणियोंको उद्वेगजनक होकर उन्हें आक्रमण करता है, ऐसे व्यवहारोंसे युक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। कालक्रमसे वह पुरुष मानुषत्व पाके अनेक प्रकारकी बाधा और क्लेशोंसे युक्त होकर अधमवंशमें उत्पन्न होता है। जगत्‌में द्वेषी मनुष्य सब पुरुषोंसे अधम है। हे देवि! यह जान रखो कि, अपने किये हुए कर्म्मोंसेही मनुष्य स्वजनों तथा बान्धव प्रभृतिके बीच अधम हुआ करते हैं। दयावान्, शठता रहित नियतेन्द्रिय मैत्रदृष्टि मनुष्य पिताकी भांति सब भूतोंको समदृष्टिसे देखता है, वह जीवोंका व्याकुल तथा दुःखित नहीं करता; उत्तम नियमित हाथ पांवके सहारे सब प्राणियोंका विश्वास पात्र होता है। मृदुकर्म्म करनेवाला दयावान् मनुष्य रस्सी, दण्ड, लोष्ट्र वा अस्त्रोंसे जीवोंको उद्वेगयुक्त नहीं करता, ऐसे स्वभाव और व्यवहारसे युक्त पुरुष स्वर्गलोकमें जाकर सुरपुरके दिव्य स्थानोंमें देवताओंकी भांति निवास किया करता है। वह मनुष्य कर्म्मक्षय होनेपर मनुष्यलोकमें जन्म लेकर अल्प बाधायुक्त और निरातङ्क होकर सुखसमृद्धि भोग किया करता है, वह सुखभागी निरायास और सदा निरुद्वेगयुक्त होता है। हे देवि! यही साधु पुरुषोंका पथ है, इसमें कुछ भी बाधा नहीं है।

उमा बोली, ये सब पूर्व्वपक्ष तथा सिद्धान्त विशारद ज्ञानविज्ञानयुक्त अर्थज्ञ मनुष्य जन्मते हुए दीख पड़ते हैं। हे देव! दूसरे लोग दुर्ब्बुद्धि और ज्ञान-विज्ञानसे रहित होके उत्पन्न होते हैं। हे विरूपाक्ष! किन विशेष कर्म्मोंसे पुरुष प्रज्ञावान होता और किस प्रकार अल्पबुद्धि हुआ करता है? हे सर्व्वधर्म्मज्ञ श्रेष्ठ! आप मेरा यह सन्देह दूर करिये। हे देव! मनुष्योंके बीच कोई कोई अन्धे ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही रोगी और कितने ही क्लीव दीखते हैं; इस विषयका कारण वर्णन करिये।

महादेव बोले, निपुण लोग वेदजाननेवाले धर्म्मज्ञ बुद्धिमान ब्राह्मणोंको प्रतिदिन कुशल पूछते और उनकी सदा शुभ सेवा करते हुए

अशुभ कर्म्मोंको परित्याग किया करते हैं; इसीसे वे लोग इसलोकमें सुख भोगकर स्वर्ग-गति प्राप्त करते हैं। यदि वे फिर मनुष्यजन्म पाते तो बुद्धिमान होते और उनका शुभ प्रज्ञा-नुयायी कल्याण होता है। जो महामूढ़ मनुष्य पराई स्त्रीकी ओर दृष्टि करते हैं, वे उस ही दुष्ट स्वभावसे जन्मान्ध होते हैं, जो लोग दुष्टचि-त्तसे नङ्गी स्त्रीको देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगार्त्त हुआ करते हैं। जो सब दुर्ब्बुद्धि दुराचारी मूढ़ मनुष्य विरुद्धयोनियों और पुरुषोंसे मैथुन करनेमें रत होते हैं, वे नपुंसक हुआ करते, हैं। जो लोग पशुहत्या करते, जो गुरुपत्नी गमन करते और जो लोग सङ्कीर्ण मैथुन करते हैं, वे सब मनुष्य नपुंसक हुआ करते हैं।

उमा बोली, हे देवसत्तम! कैसे कर्म्म बुरे और कौनसे उत्तम हैं? किन कर्म्मोंके करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है?

महादेव बोले, जो लोग कल्याणयुक्त पथको खोज करते हुए उस विषयमें ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हैं, वे धर्म्मान्वेषी गुणके अभिलाषी स्वर्ग भोग करते हैं। हे देवि! वैसे मनुष्य यदि कदाचित मनुष्यत्व लाभ करें, तो वे मेधावी धारणायुक्त और बुद्धिमान होके उत्पन्न होते हैं। हे देवि! इसे ही साधुओंका ऐश्व-र्य्ययुक्त कर्म्म जानो; मनुष्योंके हितके निमित्त मैंने तुम्हारे समीप इस धर्म्मको वर्णन किया।

उमा बोली, कितने ही धर्म्मद्वेषी अल्प-विज्ञानयुक्त मनुष्य वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके समीप जानेकी इच्छा नहीं करते; कोई कोई मनुष्य व्रतयुक्त और कोई श्रद्धा धर्म्म परायण हैं। कोई कोई अव्रती, कोई भ्रष्ट नियमवाले और कोई राक्षसके सदृश हैं। कोई विधिपू-र्व्वक यज्ञ करते, कितने ही होमरहित हैं; इसलिये कैसे कर्म्म विपाकके सहारे इस लोकमें मनुष्यगण ऐसे नैमित्तिक-धर्म्मोंसे आक्रान्त हुआ करते हैं? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये।

महादेव बोले, आगम शास्त्रोंमें लोगोंके कर्म्म और समस्त मर्य्यादा पहलेसे ही वर्णित है; दृढ़व्रती मनुष्य प्रमाणका अनुसरण करके दृढ़ हुआ करते हैं; जो लोग मोहके वशीभूत होते हैं, वे अधर्म्मको ही धर्म्म कहते हैं, वेही अव्रती मर्य्यादाभ्रष्ट और ब्रह्मराक्षस कहाते हैं, वे अधम मनुष्य समयके अनुसार इसलोकमें उत्पन्न होके होम तथा वषट्कार रहित हुआ करते हैं। हे देवि! मैंने तुम्हारा सन्देह दूर करनेके लिये मनुष्योंके हितायुक्त समस्त धर्म्म-सागर वर्णन किया।

१४५ अध्याय समाप्त।

नारदमुनि बोले, सर्व्वशक्तिमान् महादेवने इतनी कथा कहके स्त्रीधर्म्म सुननेकी इच्छासे पार्श्ववर्त्तिनी अनुकूल प्रियासे प्रश्न किया।

महादेव बोले, हे परावरज्ञे धर्म्म जानने-वाली तपोवन निवासिनी साध्वि उत्तमकेश-वाली हिमपर्व्वतात्मजा! हे दक्षे शम-दमयुक्त ममतारहित धर्म्मचारिणी वरारोहे! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम पूछनेपर मेरे अभिलषित विषयको वर्णन करो। ब्रह्माकी साध्वी भार्य्या सावित्री, इन्द्रकी पत्नी शची, मारकण्डेयकी सत भार्य्या धूम्रोर्णा, कुबेरकी पत्नी ऋद्धि, वरुणकी भार्य्या गौरी, सूर्य्यकी स्त्री सुवर्चला, चन्द्रमाकी साध्वी पत्नी रोहिणी, अग्निकी भार्य्या स्वाहा और काश्यपकी पत्नी अदिति, ये सभी स्त्रियें पतिको देवता समझती थीं। हे देवि! इन पतिव्रताओंसे तुमने सदा प्रश्न किया और उनकी उपासना की है। हे धर्म्मवादिनी धर्म्मज्ञे! इस ही निमित्त मैं तुमसे यह विषय पूछता हूं, तुम पहले स्त्रीधर्म्म वर्णन करो, इसेही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। तुम मेरी सहधर्म्मिणी समशीला और समव्रतधारिणी

हो, तुम्हारा प्रभाव तथा बल मेरे समान है और तुमने तीव्र तपस्या की है। हे देवि! इसलिये तुम जो स्त्रीधर्म्म कहोगी वह विशेष रीतिसे श्रेष्ठ होगा और जगत्के बीच प्रमाण स्वरूप हुआ करेगा। स्त्रीही स्त्रियोंके लिये परमगति हैं,—यह गति परम्परा क्रमसे सदा भूलोकमें गमन किया करती है। हे सुश्रोणि! मेरा शरीर तुम्हारे अर्द्धशरीरसे बना है, तुम लोक विस्तारकारिणी होकर सुरकार्य्य सिद्ध किया करती हो। हे शुभे! सब शाश्वत स्त्रीधर्म्म तुम्हें भलीभांति विदित है; इसलिये उत्तम रीतिसे विस्तार पूर्व्वक तुम निजधर्म्मका वर्णन करो।

उमा बोलीं, हे सर्व्वभूतेश भूतभव्य भवोद्भव भगवन्! तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह वचन प्रकाशित होगा। हे देवेश! ये सब तीर्थ तथा नदियें जलयुक्त होकेभी तुम्हें स्पर्श करनेके लिये तुम्हारे समीप गमन करती हैं; इसलिये मैं इनके संङ्ग विचार करके विस्तार पूर्व्वक सब विषयोंको कहूंगी। हे भगवन्! जो व्यक्ति अनहंवादी है, वही पुरुष कहाता है। हे भूतेश! स्त्रियें सदा स्त्रियोंकाही अनुधावन किया करती हैं। ये नदियें सबके बीच श्रेष्ठ हैं, पुण्यनदी सरस्वती सब नदियोंकी अग्रगण्या समुद्रगामिनी विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, ऐरावती, शतद्रु, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गोमती और सब तीर्थोंसे घिरी हुई सब नदियोंमें श्रेष्ठ देवनदी गङ्गादेवी जो आकाशसे पृथ्वी पर आई हैं, ये सब मुझसे सम्मानित होवें। धर्म्मवत्सला देवमहिषी धर्म्मधारिणी महादेवकी पत्नी उमाने इतनी कथा कहके हंसकर उन स्त्रीधर्म्म जाननेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा प्रभृतिसे स्त्रीधर्म्म विषय पूछा।

उमा बोली, ये भगवान स्त्रीधर्म्म सम्बन्धीय प्रश्न किये हैं, मैं तुम लोगोंके सङ्ग परामर्श करके शङ्करके समीप वह विषय कहनेकी अभिलाष करती हूं। हे सागरगामिनीगण! भूमण्डल अथवा स्वर्गलोकमें कोई विज्ञान एक व्यक्तिसाध्य नहीं दीखता, इस ही निमित्त मैं तुम्हारी सम्मानना करती हूं।

इसही प्रकार जब उमाने कल्याणदायिनी सब पवित्र नदियोंसे प्रश्न किया, तब देवनदी गङ्गा प्रत्युत्तर देनेमें नियुक्त हुई। अनेक भांतिकी बुद्धिसे युक्त, स्त्रीधर्म्मको जाननेवाली शुचिस्मिता, पुण्य पाप भयापहा बुद्धिके सहित विनय सम्पन्न, सर्व्वधर्म्म विशारदा बहुबुद्धिशालिनी गङ्गा शैलराजपुत्रीकी पूजा करके मुसकुराकर बोलीं। हे धर्म्मपरायणे देवि! हम सब कोई धन्या और अनुग्रहकी पात्री हुई हैं; क्यों कि तुम समस्त जगत्की माननीय होकर भी नदी स्वरूपिणी हमारी सम्मानना करती हो। जो लोग जिज्ञासु जनोंका सम्मान करते हैं, मेरे मतसे वे धर्म्मज्ञ पण्डित कहे जाने योग्य हैं, जो ज्ञानविज्ञान युक्त उपापोहविशारद प्रवक्ताओं तथा अन्यान्य पुरुषोंसे पूछके कार्य्य करते हैं, वे कदापि आपदग्रस्त नहीं होते, अत्यन्त बुद्धिमान मनुष्य यदि सभाके बीच वचन कहे तो वह अहंवादी होनेसे दुर्व्वल वाक्य कहा करता है। हे दिव्यज्ञानयुक्त द्युलोकमें मुख्य दिव्य पुण्यसम्पन्न देवि! तुमही हमारे निकट स्त्रीधर्म्म वर्णन करने योग्य हो। अनन्तर सुरसुन्दरी पार्व्वती गङ्गाके द्वारा अनेक प्रकारसे प्रशंसित होकर पूरी रीतिसे स्त्रीधर्म्म विषयोंको कहनेके लिये उद्यत हुईं।

उमा बोली, विधिपूर्व्वक स्त्रीधर्म्म मुझे जिस प्रकार मालूम है, उसे कहती हूं, सावधान होके सुनो। पहले विवाहके समय बान्धवोंके द्वारा यह स्त्रीधर्म्म विहित हुआ है, कि स्त्रियें अग्निके समीप पतिकी सहधर्म्मचारिणी होती हैं। उत्तम स्वभाव तथा श्रेष्ठवचनवाली सुशीला सुखदर्शना सीमन्तिनी सदा पुत्रके मुखसदृश पतिका मुख देखनेवाली और नियताचारी साध्वी स्त्री धर्म्मचारिणी होती हैं। सहधर्म्मकृत

शुभदम्पती धर्म्म सुनके जो नारी धर्म्मपरायण होती है और पतिके सदृश व्रताचरण करती है, वह पतिव्रता पतिको सदा देवतुल्य देखा करती है। जो देवतासदृश पतिकी सेवा टहल करती है, पतिके वशमें होकर सब भांति अन्त:करणसे प्रसन्नचित्त, उत्तमव्रतवाली और सुखदर्शना होती है; तथा जो नारी अनन्यचित्तवाली तथा प्रसन्न-मुखी है, वही धर्म्मचारिणी हुआ करती है। पतिके निठुर वचन कहने और क्रुद्ध नेत्रसे देखनेपर भी जो नारी स्वामीके सम्मुख प्रसन्न मुख होके स्थित रहती है, वही पतिव्रता है। जो स्त्री चन्द्र, सूर्य्य तथा पुरुष नामधारी वृक्षोंको और भी नहीं देखती, वह पतिव्रता वरारोहा स्त्री धर्म्मचारिणी होती है। जो स्त्री दरिद्र, रोगी, पथसे थके हुए पतिकी पुत्रकी भांति सेवा करती है, वह धर्म्मचारिणी होती है। जो नारी सावधान और गृहकार्य्योंमें दक्ष हो, जो पुत्रवती हो, जो नारी पतिव्रता तथा पतिप्राणा हो, वही धर्म्मचारिणी है। जो नारी प्रसन्न, विनयवती और अनन्यमना होकर सदा पतिकी सेवा टहल करती है, वह धर्म्मभागिनी है। जो प्रतिदिन अन्न देकर कुटुम्बका प्रतिपालन करती है, जो पतिके अनुरागके अनुसार काम, भोग, ऐश्वर्य्य और सुखकी अभिलाष करती है, वह नारी धर्म्मभागिनी होती है। भोरके समय उठनेका जिसे अनुराग है, गृहके कार्य्यको करनेमें जिसका मन लगता है, जो गृहको उत्तम रीतिसे धोती और गोमयसे लीपती है, जो सदा कार्य्योंमें तत्पर रहती, सदा पुष्प बलि प्रदान करती, पतिके सहित देवताओं अतिथियों और सेवकोंको यथा रीतिसे दान करके विधिपूर्व्वक शेषान्न भोजन करती है, जिसके परिजन सदा सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं, वह नारी धर्म्मभागिनी होती है। जो गुणवती सती सास ससुरकी चरणवन्दना करती और माता पिताके विषयमें भक्ति किया करती है; वही तपस्विनी है। जो नारी ब्राह्मण, निबल, अनाथ, दीन, अन्धे और कृपापात्रोंको अन्न देकर प्रतिपालन करती है, वह पतिव्रतभागिनी होती है, जो अल्पप्राण होके भी सदा दुश्चर व्रतोंको करती है तथा जो पतिमें चित्त लगाती वा पतिकी हितकारिणी है, वही पतिव्रतभागिनी होती है। जो नारी पतिको परम श्रेष्ठ जानती है, जो सती पतिव्रता होती है, उसके लिये पतिकी सेवा ही पुण्य है, पतिसेवा ही तपस्या और वही सनातन स्वर्ग है। स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु, पति ही गति है पतिके समान गति नहीं है; जैसा पति है, देवता भी वैसे नहीं हैं. स्त्रियोंके विषयमें पतिकी प्रसन्नता और स्वर्गवास समान नहीं होसकता। हे देव महेश्वर! तुम्हारे प्रसन्न रहते मैं स्वर्ग-वासकी अभिलाष नहीं करती। पति यदि दरिद्र किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त, दुःखी, शत्रुके वशीभूत अथवा ब्रह्मशापयुक्त होके भी किसी अकार्य्य अधर्म्म अथवा प्राण नाश करनेकी भी आज्ञा करे, उसे भी आपद्धर्म्म अवलोकन करके निशङ्क भावसे करना योग्य है। हे देव! यह मैंने तुम्हारे कथा क्रमसे स्त्रीधर्म्म कहा है, जो नारी इन आचरणोंसे युक्त हो, वह पतिव्रता है।

नारद मुनि बोले, देवेश्वर महादेवने ऐसी कथा सुनके पार्व्वतीका समादर करते हुए अनुचरोंके सहित सब लोगकी बिदा किया। अनन्तर भूतगणों, नदियों, गन्धर्व्वों और अप्सराओंने सिर झुकाके महादेवको प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

१४६ अध्याय समाप्त।

ऋषिवृन्द बोले, हे पिनाकधारी भगनेत्र-हारी सर्व्वलोक नमस्कृत शङ्कर! हम लोग आपके समीप वासुदेवका माहात्म्य सुननेकी इच्छा करते हैं।

महेश्वर बोले, शाश्वत पुरुष हरि पितामह ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ अभ्रशून्य अम्बरमें उदित सूर्य्यकी भांति कृष्णवर्ण होनेपर भी सुवर्णसदृश प्रभाशाली हैं, वह महातेजस्वी दशबाहुयुक्त और देवताओंके अधि निसूदन हैं; श्रीवत्स चिन्हधारी हृषीकेश सब देवताओंके पूज्य हैं। ब्रह्मा उनके उदरसे उत्पन्न हुए और मैं उनके सिरसे प्रकट हुआ हूं; उनके केशोंसे अग्नि और रोमावलीसे समस्त सुरासुर उत्पन्न हुए, ऋषिगण और समस्त शाश्वत लोकोंकी उनके देहसे उत्पत्ति हुई है। वह त्रिभुवनेश्वर स्वयं साक्षात् पितामहके गृह तथा इस समस्त पृथिवीकी सृष्टिकर्त्ता हैं और वही स्थावर-जङ्गम समस्त भूतोंके संहर्त्ता हैं। वही देवश्रेष्ठ स्वयं देवनाथ तथा परन्तप हैं; वह सर्व्वज्ञ, सर्व्वसंश्लिष्ट, सर्व्वग और सर्व्वतोमुख हैं। वह परमात्मा हृषीकेश सर्व्वव्यापी महेश्वर हैं, त्रिभुवनमें उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, वह सनातन भगवान् मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। वह मानद मनुष्य शरीर धारण करके देवकार्य्यके निमित्त युद्धमें सब राजाओंको मारेगा। देवगण त्रिविक्रमके विना किसी कार्य्यको करनेमें समर्थ नहीं हैं, देववृन्द नायकहीन होके सुरकार्य्योंको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते, वह सब भूतोंका नायक है और वहीसब भूतोंका नमस्कृत है। उस ही देवकार्य्यरत देवनाथ ब्रह्मर्षि शरण्य ब्रह्मस्वरूपी शरीरमें सुखसंस्थित और गर्भस्थ होकर ब्रह्मा निवास किया करते हैं, सर्व्वसुख संस्थित होके उसके शरीरमें सुखसे संस्थित हुए हैं। देवता लोग सुखपूर्व्वक उसके शरीरमें निवास करते हैं। वह देव पुण्डरीकाक्ष श्रीगर्भ लक्ष्मीके सहित निवास किया करता है; शार्ङ्ग धनुष और चक्र उसके आयुध हैं और वह खड्गी तथा गरुड़ध्वज है। वह उत्तम शील, पवित्रता, दम, पराक्रम, वीर्य्य, वपु, दर्शन, आरोह, प्रमाण, धैर्य्य, आर्ज्जव, सम्पत्ति, अनृशंसता रूप और बलसे युक्त है। अद्भुतदर्शन, दिव्यास्त्रधारी योगमायायुक्त, सहस्राक्ष, निरवद्य और महामना है। वह वीर मित्रकी श्लाघा करनेवाला, स्वजनों तथा बन्धुजनोंको प्रिय, क्षमावान् अनहंवादी ब्रह्मण्य और ब्रह्मनायक है। वह भयार्त्तोंका भयहर्त्ता तथा मित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाला है; वह सब जीवोंका शरण्य तथा सबको पालन करनेमें अनुरक्त है। वह श्रुतवान् अर्थसम्पन्न और सब भूतोंका नमस्कृत है; वह समाश्रितोंका बहुत ही उपकारक और शत्रुओंके भी धर्म्मको जाननेवाला है। वह नीतिज्ञ, नीतिसम्पन्न, ब्रह्मवादी, जितेन्द्रिय है; इस लोकमें देवताओंकी उत्पत्तिके निमित्त परम बुद्धियुक्त धर्म्मरक्षित प्रजापति सम्बन्धीय शुभ मनुष्यपथ तथा महानुभाव मनुके वंशमें उस ही गोविन्दकी उत्पत्ति होगी।

मनुका पुत्र अङ्ग, उसका पुत्र अन्तर्धामा और उसका पुत्र हविर्धामा अनिन्दित प्रजापति रूपसे वर्णित होगा, हविर्धामाका महान् पुत्र प्राचीन बर्हि नामसे विख्यात होगा, उससे प्रचेता प्रभृति दश पुत्र होंगे, प्रचेतासे इस लोकमें दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्ति होगी, दक्षकी कन्या अदितिसे आदित्यकी उत्पत्ति होगी, आदित्यसे मनुका जन्म होगा, मनुके वंशमें इला और सुद्युम्न जन्मेंगे, बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरुरवाका जन्म होगा, उससे आयुकी उत्पत्ति होगी, आयुसे नहुषका जन्म होगा, नहुषका पुत्र ययाति, ययातिके महाबलवान यदु नाम पुत्र होगा, उससे क्रोष्टा जन्मेगा, क्रोष्टाके महाबली पुत्रका वृजिनीवान नाम होगा, वृजिनीवानसे अपराजित उषङ्गु नाम पुत्र जन्मेगा, उषङ्गुका पुत्र चित्ररथ और चित्ररथका कनिष्ठ पुत्र शूर नामसे विख्यात होगा। विख्यात वीर्य्य, चरित्र गुणसम्पन्न, विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले, अत्यन्त पवित्र ब्राह्मणसम्मत, यदुवंशमें क्षत्रियश्रेष्ठ, महावीर्य्य, महायशस्वी,

मानदाता, शूर निज वंशकी वृद्धि करनेवाले वसुदेव नामसे विख्यात् आनक दुन्दुभी नामक पुत्र उत्पन्न करेगा। चतुर्ब्बाहु बासुदेव उसके पुत्र होंगे, वह दाता ब्राह्मणोंका सत्कारकर्त्ता ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मणप्रिय होकर मगधराज जरासन्धके द्वारा कैद हुए राजाओंको छुड़ावेंगे। वह वीर्य्यवान् बासुदेव गिरिगह्वरके बीच राजा जरासन्धको पराजित करके सब राजाओंकी रत्नराजिके सहारे समृद्धवान् होंगे और वह निजपराक्रमसे पृथ्वीके बीच अप्रतिहत तथा विक्रमयुक्त होकर सब राजाओंके ऊपर आधिपत्य करेंगे। नीतिज्ञ भगवान् शूरसेन देशमें पूर्णरीतिसे बुद्धियुक्त होकर द्वारकामें निवास करके जयलक्ष्मी वसुन्धरा देवीका सदा पालन करेंगे। आप लोग जिस प्रकार उत्तम अर्हण द्रव्य और वचनरूपी मालासे प्रशस्त ब्रह्मकी पूजा करते हैं, वैसे ही उनके निकट जाकर विधिपूर्व्वक पूजा करिये। जो लोग मेरे अथवा पितामह ब्रह्माके दर्शनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें प्रतापवान् भगवान् बासुदेवका दर्शन करना उचित है; उनका दर्शन होनेसे ही मेरा और देवेश पितामहका दर्शन हुआ करता है, इस विषयमें मैं कुछ भी विचार नहीं करता। हे तपस्वीवृन्द! तुम लोग यह जान रखो, कि वह पुण्डरीकाक्ष जिसपर प्रसन्न होंगे, ब्रह्मादि देवगण भी उसके विषयमें प्रसन्न रहेंगे। लोकमें जो मनुष्य उस केशवका आसरा करेगा, उसको जय तथा कीर्त्ति होगी और उसको स्वर्ग मिलेगा। वह धर्म्मभागी मनुष्य साक्षात् सब धर्म्मोंका उपदेशक होगा। धर्म्म जाननेवाले पुरुष सदा उद्योगी होकर उस देवेश्वरको नमस्कार करें, उस सर्व्वशक्तिमान् बासुदेवके पूजित होनेसे परमधर्म्म होता है। उस महातेजस्वी देवेशने प्रजाकी हितकामनासे धर्म्मके निमित्त कोटि ऋषियोंकी सृष्टि की है। वे सनत्कुमार प्रभृति ऋषिगण उसके द्वारा उत्पन्न होके गन्धमादन पर्व्वतपर तपयुक्त होकर निवास करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! इस ही निमित्त वह वाग्मी धर्म्मज्ञ वासुदेव सबके ही नमस्य हैं। सर्व्वलोकके बीच सर्व्वशक्तिमान् भगवान् नारायण ही श्रेष्ठ हैं, वह वन्दित होनेपर वन्दना पूजित होनेसे पूजा, सम्मानित होनेसे सम्मान और सदा अर्च्चित होनेपर प्रतिपूजा किया करते हैं। वह दृष्ट होनेसे दिनरात देखते और संश्रित होनेसे आश्रय किया करते हैं। हे द्विजसत्तमगण! वह देव अत्यन्त पूजित होनेपर सदा पूजा करता और उस अनन्दनीय विष्णुका यही परमव्रत है, महानुभाव आदिदेवके चरित्रोंका सज्जन लोग सदा आचरण किया करते हैं, वही सनातन देवलोकके बीच सदा देवताओंके द्वारा पूजित होता है। जो लोग उसपर अनुरक्त रहते, वे अनुरूप अभययुक्त हुआ करते हैं; इसलिये द्विजगण सदा उसे बचन, मन और कर्म्मसे नमस्कार करें। यत्नवान मनुष्य उपासनाके सहारे देवकीनन्दनका दर्शन करें। हे मुनिसत्तमगण! यह मेरे द्वारा आप लोगोंका पथ वर्णित हुआ। उसका सब भांतिसे दर्शन करनेपर सब देवताओंका दर्शन होता है। उस महा वराहरूपी सर्व्वलोक पितामह जगत्पति देवेश्वरको मैं भी सदा नमस्कार किया करता हूं। उसमें तुम लोगोंको निःसन्देह त्रिवर्ग दीखेगा, हम सब देवताओंके सहित उन्हींके शरीरमें निवास करते हैं उनके जेठे भाई श्वेतशैल सदृश प्रभायुक्त धराधारी बलदेव नामसे विख्यात होंगे। उस देवको स्वर्णमय तृणराज त्रिशिरा तालवृक्ष चिन्हयुक्त रथकी ध्वजा होगी, उस सर्व्वलोकेश्वर महाबाहुका सिर महाभोग युक्त महानुभाव नागगणसे परिवेष्टित रहेगा। सब अस्त्र शस्त्र ध्यान करते ही उनके निकट उपस्थित होंगे, वह भगवान हरि ही अनन्त नामसे वर्णित होते हैं, जिनके प्रतापसे काश्यपके पुत्र बलवान् सुपर्ण

(गरुड़) देवताओंकी आज्ञासे उन्हें प्रदर्शन करते हुए उस देव परमात्माका अन्त देखनेमें समर्थ न हुए। वह भोगके द्वारा वसुन्धराको आलिङ्गन करके उसके अन्तर निवास करता है, वह शेष परम हर्षयुक्त होके विचरता है, वेही विष्णु, वेही अनन्त और वेही भगवन् धरणीधर हैं। जो राम सोई हृषीकेश, जोई अच्युत सोई बलदेव हैं। वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ दिव्य तथा दिव्य पराक्रमशाली हैं, वे चक्र और हलधारी दोनों देव दर्शनीय तथा माननीय हैं। हे तपोधनगण! आप लोग यदुश्रेष्ठ राम और कृष्णकी यत्नपूर्व्वक पूजा करिये, इस ही निमित्त आप लोगोंके लिये अनुग्रहस्वरूप यह पवित्र विषय वर्णन किया है।

१४७ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, अनन्तर आकाशमें बिजलीके सहित बादलयुक्त महान् शब्द प्रकट हुआ और नीलवर्णवाली निविड़ घनघटासे आकाशमण्डल परिपूरित होगया। प्रावृट्कालकी भांति पर्ज्जन्यदेव जलकी वर्षा करने लगे, घोर अन्धकार प्रकट हुआ, सब दिशा प्रकाशसे रहित होगई। अनन्तर उस रमणीय पवित्र सनातन सुरशैल-पर मुनिगण महेश्वर वा भूतगणका दर्शन करनेमें समर्थ न हुए। क्षण भरके बीच आकाशमण्डल निर्म्मल हुआ, तब ब्राह्मणोंने तीर्थयात्राके निमित्त गमन किया, सब कोई अपने अपने अभिलषित स्थानपर चले गये। उमाके सहित महादेवके सम्वादके सम्बन्धमें यह अद्भुत अचिन्तनीय विषय देखकर वे सब मुनिवृन्द विस्मित होकर बोले। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप सनातन ब्रह्मस्वरूप हैं, पर्व्वतके ऊपर जिस भांति महादेवके द्वारा हम लोग उपदिष्ट हुए थे, उस ही भांति यह दूसरा अद्भुत व्यापार आपके तेजसे प्रकट हुआ। हे कृष्ण! इस अद्भुत कर्म्मको देखकर हम लोग विस्मित हुए और पहला विषय हमें स्मरण हुआ है। हे विभु महाबाहो जनार्द्दन! यह देवोंके देव कपर्द्दी गिरीशका माहात्म्य कहा गया। तपोवन-निवासी मुनियोंके द्वारा देवकीनन्दन कृष्णने उस समय इतनी कथा सुनके उन सब मुनियोंका सम्मान किया।

अनन्तर वे मुनिगण हर्षित होकर कृष्णसे बोले,, हे मधुसूदन! आप सदा हम लोगोंको दर्शन दीजिये। हे विभो! आपका दर्शन करनेके लिये हमें जैसा अनुराग है, वैसी स्वर्गमें निवास करनेकी रुचि नहीं होती। हे अरिकर्षण महाबाहो! भगवान् भवने आपका जो यथार्थ्य कहा, यह वही सब रहस्य वर्णित हुआ। आप अर्थतत्त्वज्ञ हैं, पूछने पर हम लोगोंसे ही जिज्ञासा करते हैं, इसलिये आपकी प्रीतिके लिये यह गोपनीय विषय उदाहृत हुआ, तीनों लोकोंके बीच आपको कुछ भी अविदित नहीं है। हे विभो! उत्पत्ति तथा प्रसूति अथवा दूसरे जो कुछ कारण हैं, वे सब आपसे छिपे नहीं हैं, हम लोग बहुतसी चपलता गोपनीय विषयोंको धारण करनेमें असमर्थ हैं। हे प्रभु! इसलिये आपके रहते हम लोग जो विषय कहें, वह लघुता हेतुसे प्रलाप मात्र है। आप जिसे न जानें, वैसा अद्भुत विषय इस लोकमें कुछ भी नहीं है। हे देव! द्युलोक वा भुलोकमें जो कुछ आश्चर्य हैं, वे सब आपको मालूम हैं। हे कृष्ण! अब हम लोग जाते हैं, आप बुद्धि और पुष्टिलाभ करिये। हे तात! आपके सदृश अथवा तुमसे भी उत्कृष्ट, महाप्रभाव, दीप्तिमान् कीर्त्तियुक्त सर्व्वशक्तिमान् तुम्हारे एक पुत्र होगा।

भीष्म बोले, अनन्तर उन महर्षियोंने पुरुषश्रेष्ठ यदुवंशधर देवेशको प्रणाम और प्रदक्षिण करके प्रस्थान किया। ये वही श्रीमान् नारायण परम दीप्तिमान होकर व्रत पूरा करके द्वारकामें आये, दश महीना पूरा होने पर

रुक्मिणीके गर्भसे परमार्थ्य शूरवीर सर्व्वसम्मत वंशधर पुत्र उत्पन्न हुआ। हे महाराज! वही काम सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित है, वह सुरासुरोंके अन्तर्गत होकर सदा बिचरता है। ये वही घनश्याम चतुर्भुज पुरुषश्रेष्ठने प्रेमवशसे पाण्डवोंको अवलम्बन किये हैं, आप लोग भी इनका आसरा कर रहे हैं। कीर्त्ति, लक्ष्मी, धृति और यह स्वर्गमार्ग जिस स्थानमें संचित होता है, भगवान् त्रिविक्रम बासुदेव वहां सन्निहित रहते हैं और इन्द्रके सहित तैंतीस देवता वहां निवास करते हैं, इस विषयको चर्चा करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। महात्मा मधुसूदन आदिदेव महादेव सर्व्वभूतोंके अवलम्ब हैं। वेही अनादि अनन्त और अव्यक्त हैं। ये महातेजस्वी देवताओंकी प्रयोजन सिद्धिके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। माधव अत्यन्त दुस्तर अर्थतत्त्वोंके वक्ता और कर्त्ता हैं। हे तात! नारायणके अवलम्बसे ही तुम्हारी जय और अतुल कीर्त्ति हुई तथा सब पृथ्वी तुम्हारे हस्तगत होरही है। ये अचिन्तनीय नारायण तुम्हारे नाथ और गति हैं, इस ही निमित्त तुमने अध्वर्य्यु के निकट रहके राजाओंकी युद्धरूपी अग्निमें प्रलयानल सदृश कृष्णरूपी स्त्रुवासे आहुति प्रदान की है। जिस दुर्व्बुद्धिने क्रोधवशसे हरिको गाण्डीवमूर्त्ति धारण कराई थी, उस दुर्योधनको ही पुत्र, भ्राता और बान्धवोंके सहित शोचनीय दशा हुई है। महाकाय महाबली दैत्य और दानवेन्द्रगण दावानलमें शलभ समूहकी भांति जिसके चक्राग्निके बीच नष्ट होगये; पराक्रम, शक्ति और बलहीन मनुष्योंके बीच उसके सङ्ग प्रतियुद्ध करनेवाला कोई भी नहीं है। हे महाराज! जयरूपी धनञ्जय सव्यसाचीने प्रलयकालकी अग्निसदृश युद्धमें अग्रगामी होकर निज तेज प्रभावसे दुर्योधनकी सारी सेनाका नाश किया है।

हिमालय पर्व्वतपर वृषभध्वजने मुनियोंसे जो पुराण कहा था, उसे मैं कहता हूं, सुनो। तेज, बीर्य्य और पराक्रमसे यदुवंशकी तुष्टि होती है; प्रभाव, सन्तति और जन्म, ये तीनों गुण कृष्णमें विद्यमान हैं, यदि ऐसा हो, तो कौन इसे अन्यथा करनेमें समर्थ होगा, इसलिये उस विषयको सुनो। जिस स्थानमें भगवान् कृष्ण निवास करते हैं, वहांपर उत्तम पुष्टि विद्यमान रहती है। हम अल्पबुद्धि, पराधीन और अत्यन्त बिह्वल हैं, इसलिये ज्ञानपूर्व्वक मृत्युके अक्षयपथमें शरणागत हुए हैं। तुम अत्यन्त ही सरलचित्त हो, पहले प्रतिज्ञा करके अन्तमें उस प्रतिज्ञाको पूरी करनेमें रत होकर राज्य लेनेसे बिमुख हुए थे। हे अरिन्दम महाराज! इस लोकके बीच तुम अपने बचनका बहुमान किया करते हो; तथापि जो प्रतिज्ञा करते हो, उसे अन्यथा नहीं कर सकते। ये सब लोग कालके सहारे रणभूमिमें मारे गये हैं, हम भी कालसे ही हत हुए हैं, इसलिये काल ही परमेश्वर है। तुम कालज्ञ हो, इसलिये कालसे स्पृष्ट होकर तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। कालरक्तसदृश लालनेत्र कृष्णवर्ण दण्डधारी है और सबको हरता है, इस ही लिये उसका हरि नाम है। हे कौरववंशवर्द्धन कुन्तीनन्दन! इसलिये अब तुम स्वजनोंके लिये शोक मत करो; सदा शोकरहित रहो। यह माधवका माहात्म्य जो मैंने कहा, उसे तुमने सुना, सज्जनोंके निदर्शनमें वह पर्य्याप्त है। हे महाराज! व्यासदेवका बचन तथा बुद्धिमान नारद मुनिके उपदेशके अनुसार और पूजनीय कृष्णकी कथा सुनके मैंने ऋषिसमूहका उत्तम महान् प्रभाव वर्णन किया है। हे भारत! शैलसुताके सहित महादेवका सम्वाद भी कहा गया। हे राजन्! जो मनुष्य इस महापुरुष सम्भव विषयको कहता, सुनता अथवा धारण करता है, उसका परम कल्याण होता है। उसकी यथाभिलषित सब कामना

पूरी होती और वह मनुष्य परलोकमें जाकर निःसन्देह स्वर्गसुख भोगता है। कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको चाहिये, कि जनार्दनको जानें, हे महाराज! ब्राह्मण लोग इस अक्षय जनार्द्दनकी स्तुति किया करते हैं। हे कुरुराज! जो सब धर्म्म महेश्वरके मुखसे बाहिर हुए थे, तुम अहोरात्र मन ही मन उन धर्म्मोंको धारण करना। इस ही प्रकार तुम पूरी रीतिसे दण्डधारी होके वर्त्तमान रहने और दक्षता प्रकाशित करनेपर स्वर्गलोकमें गमन करोगे। हे महाराज! तुम धर्म्मपूर्व्वक प्रजाकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, प्रजाकी रक्षाके लिये जो विपुल दण्ड विहित होता है, वही सम्यक् धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करता है। हे महाराज! मैंने सज्जनोंके निकट जो यह उमाके सहित महादेवका धर्म्मसंयुक्त सम्वाद वर्णन किया है, उसे सुनकर तथा सुननेके अभिलाषी होके जो लोग अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हैं, वे पवित्र चित्तसे वृषभध्वजकी पूजा करें। हे पाण्डव! यह उस अनिन्दित महानुभाव नारदमुनिका देवपूजार्ह सन्देश था, है, इसलिये तुम उसे प्रतिपालन करो। हे महाराज कुन्तीनन्दन! पवित्र हिमालयमें वासुदेव और महादेवकी यह अप्राकृतिक घटना अत्यन्त अद्भुत हुई थी; इस शाश्वत वासुदेवने बदारकाश्रममें दश सहस्र वर्षतक विपुल तपस्या करी थी। हे महाराज! ये पुण्डरीकाक्ष वासुदेव और धनञ्जय त्रेतायुगसे नारद तथा व्यासदेवके द्वारा मुझे विदित हैं। इस महाबाहु महातेजस्वी पुण्डरीकाक्षने बाल्य अवस्थामें ही स्वजनोंके परित्राणके निमित्त कंसका महत् वधकार्य्य साधन किया था। हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! मैं इस शाश्वत पुराण पुरुषके कर्म्मोंकी संख्या करनेका उत्साह नहीं करता। हे तात! ये पुरुषपुङ्गव जनार्द्दन जब तुम्हारे सखा हैं, तब अवश्य ही तुम्हारा परम मङ्गल होगा। और दुर्ब्बुद्धि दुर्य्योधन स्वर्गमें गया है, तोभी मैं उसके निमित्त शोक करता हूं, जिसके कारण यह समस्त महिमण्डल घोड़ों और हाथियोंके सहित विनष्ट हुआ है, दुर्य्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन, इन चारोंके अपराधसे सारा कुरुकुल निर्म्मूल हुआ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुष श्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्मके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिर उन सब महात्माओंके बीच चुप हो रहे। धृतराष्ट्र प्रभृति सब राजा इस कथाको सुनके विस्मित हुए और मनही मन हाथ जोड़के कृष्णकी पूजा की। नारद प्रभृति ऋषियोंने भीष्मका बचन प्रतिग्रह करके उनका सम्मान तथा अभिनन्दन किया। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित यह उत्तम महाश्चर्य्य पवित्र भीष्मानुशासन इस ही प्रकार सुना था। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले भीष्मदेवके विश्राम करनेके अनन्तर पृथ्वीपति महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरने उनसे फिर प्रश्न किया।

१४८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरने अशेष रीतिसे सब धर्म्मों और पवित्र विषयोंको सुननेके अनन्तर शान्तनुनन्दनसे फिर प्रश्न किया।

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य वृन्द किस देव वा किस परम आश्रयकी स्तुति तथा पूजा करते हुए इस लोकमें शुभ लाभ करते हैं? सब धर्म्मोंके बीच कौन सा धर्म्म परम श्रेष्ठरूपसे आपको सम्मत है? किसका जप करनेसे जीव संसाररूपी बन्धनसे छूटते हैं?

भीष्म बोले, पुरुष सदा जाग्रत होके देवोंके प्रभु अनन्त पुरुषोत्तमकी सहस्र नामसे स्तुति करते हुए उस अव्यय पुरुषकी भक्तिपूर्व्वक पूजा करे। यजमान मनुष्य उस अनादिनिधन सर्व्वलोक महेश्वर विष्णुका ध्यान स्तुति करते हुए उन्हें नमस्कार करे। उस लोकाध्यक्ष नारायणकी सदा स्तुति करते हुए पुरुष सब दुःखोंको

अतिक्रम करता है। ब्रह्मण्य सर्व्वज्ञ, सर्व्वलोककीर्त्तिवर्द्धन, लोकनाथ, महद्भूत और सर्व्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारण नारायणकी स्तुति करे; यह धर्म्म ही सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ और यही मुझे अभिमत है; जिस धर्म्मके विषयमें मनुष्य सदा भक्तिपूर्व्वक स्तुति करते हुए भगवानका पूजन करते हैं। जो परम महत् तेज, जो परम महत् तप, जो परम महत् ब्रह्म तथा जो परम परायण है, जो सब पवित्र पदार्थोंके बीच पवित्र, जो सर्व्व मङ्गलोंका मङ्गल, जो देवताओंका देवता और भूतोंका अव्यय पिता है। हे पृथ्वीनाथ! जिससे आदियुगमें सब प्राणी उत्पन्न होके युगक्षयमें जिसमें फिर लीन होते हैं, उस लोकप्रधान जगन्नाथ विष्णुका सहस्र नाम सुनो, महानुभाव नारायणके जो गौण नाम विख्यात हैं तथा ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए हैं, वे सब नाम चतुर्व्वर्ग फल प्राप्तिके हेतु हैं; उन्हीं नामोंका वर्णन करता हूं,—

वह विश्वको सृष्टि करके उसमें अनुप्रविष्ट है, इन्हींसे विश्व १, सर्व्वव्यापी होनेसे विष्णु २, वषट्कार मन्त्रस्वरूप ३, भूत भविष्य और वर्त्तमान-कालके प्रभु ४, भूत कर्त्ता होनेसे भूतकृत ५, भूतोंका पालन करता है, इसही निमित्त भूतभृत ६, भावस्वरूप ७, भूतोंका अन्तर्य्यामी होनेसे भूतात्मा ८, भूतोंका उत्पादक होनेसे भूतभावन ९, निर्गुण होनेसे पूतात्मा १०, परमात्मा ११, मुक्त पुरुषोंकी परमगति १२, अव्यय १३, अखिल कर्म्मफलदाता है, इसलिये पुरुषसाक्षी १४, द्रष्टा है, इसलिये क्षेत्रज्ञ १५, क्षर १६, मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंको संयत करके क्षेत्रज्ञ और परमात्माके एकत्व भावना योगसे प्राप्य है, इसही हेतु योग १७, योगवित्‌जनोंका नेता १८, प्रकृति और पुरुषका नियन्ता है, इसही निमित्त प्रधान पुरुषेश्वर १९, नरसिंहवपु २०, श्रीमान् २१, लम्बे केशोंसेयुक्त है, इसही निमित्त केशव २२, क्षर अक्षर दोनोंसे उत्तम है, इसीलिये पुरुषोत्तम २३,। कारण रूपसे अनुगत है, इसीलिये सर्व्व २४, सबकी हिंसा करता है, इसही हेतु शर्व्व २५, सब कोई उसमें शयन करते हैं, इसही निमित्त शिव २६, स्थिर है इसहीसे स्थाणु २७, भूतादिकोंकी अव्ययनिधि २८, धर्म्मस्थापन करनेके लिये प्रति युगमें उत्पन्न होता है, इसही लिये सम्भव २९, सब भोक्ता पुरुषोंको फल देनेवाला है, इसी हेतु भावन ३०, प्रपञ्चजगत्‌के अधिष्ठान रूपसे भर्त्ता ३१, जगदुत्पत्तिके कारण होनेसे प्रभव ३२। सर्व्वशक्तिमान होनेसे प्रभु ३३, सबका नियन्ता होनेसे ईश्वर ३४, स्वयम्भू ३५, भक्तोंके सुखका विधान करता है, इसहीलिये शम्भु ३६, अदितिके पुत्र होनेसे आदित्य ३७, कमलके समान नेत्र हैं, इसीसे पुष्कराक्ष ३८, मेरे भक्त विनष्ट न हों इत्यादि वेद उसका वचन है, इस ही निमित्त महास्वन ३९, उसका जन्म और विनाश नहीं है, इसीलिये अनादिनिधन ४०, अनन्तरूपसे जगत्‌को धारण करनेसे धाता ४१, कर्म्म और कर्म्मफलोंका विधान करनेसे विधाता ४२, विरञ्चिसेभी श्रेष्ठ है, इसलिये ईधातुरुत्तम ४३, प्रत्यक्ष अनुमान और उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि प्रभृति शास्त्रीय प्रमाणोंसे उसे जाना नहीं जाता इसही निमित्त अप्रमेय ४४, इन्द्रियोंका ईश्वर होनेसे हृषीकेश ४५, जगत्कारण पद्म उसके नाभीमें विद्यमान है, इसही लिये पद्मनाभ ४६, अमरगणधर्म्मी विशिष्ट देवताओंका ईश्वर होनेसे अमरप्रभु ४७, जगत्‌की रचना करता है, इसलिये विश्वकर्म्मा ४८, मननशील होनेसे मनु ४९, प्रलयके समय जगत्‌का नाश करता है, इसीसे त्वष्टा ५०, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ट ५१, स्थिरत्व प्रयुक्त स्थविर ५२, निश्चय है, इसलिये ध्रुव ५३, मनके सहित वचनसे अथवा बलपूर्व्वक उसे ग्रहण नहीं किया जाता, इसही निमित्त अग्राह्य ५४, शाश्वत् अर्थात् सब समयमें स्थायी रहनेसे

शाश्वत् ५५, देखते ही स्त्रियोंका मन हरता अथवा कृष्णवर्णा है, इसीलिये कृष्ण ५६, लोहितनेत्र होनेसे लोहिताक्ष ५७, प्रलयकालमें विश्वसंसारका नाश करता है, इस ही निमित्त प्रतर्द्दन ५८, ज्ञान ऐश्वर्य्य आदि गुणोंसे युक्त है, इस ही निमित्त प्रभूत ५९, ऊर्द्ध, अध और मध्यभेदसे तीनों धाम हैं, इस ही हेतु त्रिककुद्धाम ६०, पवित्र ६१, परम मङ्गल ६२, सर्व्वभूतोंका नियन्ता होनेसे ईशान ६३, प्राणप्रदाता होनेसे प्राणद ६४, सब प्राणियोंको जीवन स्वरूपहोनेसे प्राण ६५, अत्यन्त वृद्ध है, इस ही निमित्त जेष्ठ ६६, अत्यन्त प्रशस्त होनेसे श्रेष्ठ ६७, प्रजापति ६८, विरञ्चिस्वरूपसे अथवा हिरण्मयान्तर्व्वर्त्ती होनेसे हिरण्यगर्भ ६९, पृथिवीका कारण है अर्थात् पृथिवी उसके गर्भमें है, इसलिये भूगर्भ ७०, माधव ७१, मधुसूदन ७२, अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य्योंसे युक्त है, इसलिये ईश्वर ७३, विक्रमी ७४, धन्वी ७५, मेधावी ७६, वि अर्थात् गरुड़पक्षीके द्वारा गमन करता है, इसलिये विक्रम ७७, जगत्‌को आक्रमण कर रहा है, इसही निमित्त क्रम ७८, उससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है, इसीसे अनुत्तम ७९, शत्रुओंसे दुराक्रमणीय होनेसे दुराधर्ष ८०, प्राणियोंके पुण्य पाप-जनित सब कर्म्मोंको जाननेसे कृतज्ञ ८१, पुरुष प्रयत्नस्वरूप है, इस ही हेतु कृति ८२, निज महिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये आत्मवान् ८३, सुरेश ८४, दुःख नाश करनेसे शरण ८५, सुखस्वरूप होनेसे शर्म्म ८६, विश्व ही उसका वीर्य्यस्वरूप कार्य्य है, इसलिये विश्वरेता ८७, प्रजाकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये प्रजाभव ८८, दिनकी भांति प्रकाशरूप है, इसही निमित्त अह ८९, अखण्ड कालरूप होनेसे सम्वत्सर ९०, बन्धनहीन है, इस ही हेतु व्याल ९१, ज्ञानस्वरूप होनेसे प्रत्यय ९२, अपने भक्तोंको देखता है, इसलिये सर्व्वदर्शन ९३, जन्मरहित होनेसे अज ९४, ईश्वरोंका भी ईश्वर है, इसलिये सर्व्वेश्वर ९५, नित्य निष्पन्नरूप होनेसे सिद्ध ९६, सिद्धिरूप होनेसे सिद्धि ९७, सर्व्वभूतोंका कारण है, इस ही निमित्त सर्व्वादि ९८, निज रूपसे च्युत नहीं होता, इस ही लिये अच्युत ९९, समस्त कामनाओंकी वर्षा करता है, इस ही लिये वृष अर्थात् धर्म्म और वराह अवतार रूपसे कपि है, इस ही लिये वृषाकपि १००, उसका स्वरूप बुद्धिसे जाना नहीं जाता, इस ही हेतु अमेयात्मा १०१, सब सम्बन्धोंसे पृथक् असङ्ग पुरुष है, इसलिये सर्व्वयोगविनिःसृत १०२, वसु सब भूतोंमें वास करता है, इसलिये वसु १०३, सङ्ग आदि क्लेशोंसे उसका मन दूषित नहीं होता, इस ही निमित्त वसुमना १०४, सत्यरूप होनेसे सत्य १०५, एकात्मा होनेसे समात्मा १०६, अपरिच्छिन्न है, इसलिये असम्मित १०७, सब समयमें विकाररहित होनेसे सम १०८, सत्यसङ्कल्प होनेसे अमोघ १०९, हृदयाख्य पुण्डरीकमें व्याप्त है, इसलिये पुण्डरीकाक्ष ११०, उसके सब कर्म्म धर्म्ममय हैं, इस हेतु वृषकर्म्मा १११, धर्म्म अर्थ ग्रहण करनेसे ही वृषाकृति ११२, शिवके सहित अभिन्न है तथा संहारके समय प्रजा समूहको रुलाता है, इस ही निमित्त रुद्र ११३, सहस्र शीर्षा पुरुष है, इस ही हेतु बहुशिरा ११४, सब लोकोंको धारण कर रहा है, इस ही निमित्त बभ्रु ११५, विश्वयोनि ११६, उसके सब नाम पवित्र हैं, इसलिये शुचिश्रवा ११७, उसकी मृत्यु नहीं होती, इसलिये अमृत ११८, सब समय और सब स्थानोंमें रहनेसे शाश्वत ११९, स्थाणु १२०, उसमें आरोहण करना ही श्रेष्ठ है, क्यों कि उसे पानेसे पुनरावृत्ति नहीं होती, इस ही निमित्त वरारोह १२१, सब विषयोंका उसे ज्ञान है, इसलिये महातपा १२२, सर्व्वग १२३, हरएक विषयोंको जाननेवाला तथा प्रकाशमान होनेसे सर्व्व विद्वान् १२४, जरासन्ध प्रभृतिकी सेना उसके

द्वारा सब दिशाओंमें भगाई गई थी, इस ही निमित्त विष्वक्सेन १२५, दस्युओंको पीड़ित करनेसे जनार्द्दन १२६, ज्ञानदीपस्वरूप होनेसे वेद १२७, अर्थ और पाठक्रमसे वह वेदोंको जानता है, इसलिये वेदवित् १२८, वह सर्व्वावयव सम्पन्न है, इसलिये अव्यङ्ग १२९, वेदाङ्ग स्वरूप १३०, वेद लाभ करनेसे वेदवित् १३१, अतिक्रान्त दर्शी होनेसे कवि १३२, लोकोंको प्रत्यक्ष करता है, इसलिये लोकाध्यक्ष १३३, इन्द्र आदि देवताओंका अधिपति है, इसलिये सुराध्यक्ष १३४, धर्म्माध्यक्ष १३५, कार्य्य कारणरूपसे कृताकृत १३६, सृष्टिके प्रारम्भमें पृथक् पृथक् चतुर्व्विध ब्रह्मा दक्षादिरूपसे चतुरात्मा १३७, वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूपसे चतुर्व्यूह १३८, नृसिंहरूपसे चतुर्दंष्ट्र १३९, चतुर्भुज १४०। अत्यन्त दीप्तिमान होनेसे भ्राजिष्णु १४१, भोज्यरूपसे भोजन १४२, भोजनकर्त्ता होनेसे भोक्ता १४३, सहनशील होनेसे सहिष्णु १४४, हिरण्यगर्भ रूपसे जगत्के आदिकालमें जन्म लेनेसे जगदादिज १४५, निष्पाप होनेसे अनघ १४६, ज्ञान वैराग्य प्रभृति ऐश्वर्य्योंके द्वारा जययुक्त होनेसे विजय १४७, सबसे उत्कृष्ट है, इसलिये जेता १४८, विश्वयोनिमें बार बार अवतार लेके वास करता है, इसलिये पुनर्व्वसु १४९। उपेन्द्र १५०, वामन १५१, वामनरूपसे तीनों लोकोंको आक्रमण किया, इसलिये प्रांशु १५२, अमोघ १५३, अत्यन्त पवित्र होनेसे शुचि १५४, गोवर्द्धनादि धारण करनेसे ऊर्ज्जित १५५, कल्पवृक्ष हरण आदि कार्य्योंमें इन्द्रको अतिक्रम करनेसे अतीन्द्र १५६, भक्तोंका संहार करता है, इसलिये संग्रह १५७ कार्य्यरूपसे उत्पन्न होता है, इस ही हेतु सर्ग १५८, एक रूपसे जन्मादि रहित है, इसलिये धृतात्मा १५९, प्रजा समूहको निज निज अधिकारमें नियमित करनेसे नियम १६०, अन्तर्य्यामी प्रयुक्त यम १६१। अज्ञात प्रयुक्त वेदनाई है, इसलिये वेद्य १६२, सब विद्या अध्ययन करता है, इस ही निमित्त वैद्य १६३, सर्व्व क्रियामें कर्त्तृत्वके रहते भी यथार्थमें अकर्त्तृत्व प्रयुक्त होनेसे महायोगी १६४, दैत्यदलनायक होनेसे वीरहा १६५, मगवद्विद्याका ईश्वर है, इसलिये माधव १६६, वसन्तकी भांति प्रीतपद होनेसे मधु १६७, इन्द्रियोंके अगोचर होनेसे अतीन्द्रिय १६८, अत्यन्त कृपावान् होनेसे महामाय १६९, महोत्साह १७०, बाल्यकालमें पूतना आदि वध करनेके समय अत्यन्त बल प्रकाशित किया था, इसलिये महाबल १७१। महाबुद्धि १७२, महावीर्य्य १७३, महाशक्ति १७४, महाद्युति ७५ यह है, वह है, इत्यादि रूपसे उसका निरूपण नहीं होता, इसलिये अनिर्द्देश्य वपु १७६, श्रीमान् १७७, अमेयात्मा १७८, पृथ्वी, गोवर्द्धन तथा मन्दर पर्व्वतको धारण किया था, इसलिये महाद्रिधृत् १७९, महाधनुर्धारी होनेसे महेष्वास १८०, महीभर्त्ता १८१, श्रीनिवास १८२, साधुओंका अवलम्ब होनेसे सतांगति १८३ कोई शत्रु उसे रोकनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये अनिरुद्ध १८४, देवताओंको आनन्दित करता है, इसलिये सुरानन्द १८५, पहले समयमें पृथ्वीका उद्धार किया था, इसलिये गोविन्द १८६, वेदवादियोंको विशेषरूपसे पालन करता है, इस ही निमित्त गोविदांपति १८७। दुष्ट लोग उसके द्वारा विनष्ट होते हैं, इसलिये मरीचि १८८, वह दुष्टोंको शासन करता है, इस ही निमित्त दमन १८९, शुद्धत्त्व प्रयुक्त हंसकी भांति अथवा संसारबन्धनको काटता है, इसीसे हंसपक्षीकी भांति सुपर्ण १९०, शेषरूप होनेसे भुजगोत्तम १९१, सुवर्णकी भांति प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उसके नाभिस्थानमें वर्त्तमान है, इसलिये हिरण्यनाभ १९२, नरनारायण रूपसे सुतपा १९३, पद्मनाभ, १९४ प्रजापति १९५, अमृत्यु १९६, सर्व्वदर्शी होनेसे सर्व्वदृक् १९७, दन्तवक्र आदि दुष्ट दस्युगणको मारनेसे

सिंह १९८, सन्धिकर्त्ता होनेसे सन्धाता १९९, सन्धिमान २००, भक्तोंके अन्तःकरणमें स्थिरताके सहित स्थित रहनेसे स्थिर २०१। शिशुपालके बधके लिये चक्र चलाया था, इसही हेतु अज २०२. दुःखसे उसे सहन किया जाता है, इसलिये दुर्मर्षण २०३, दुष्टोंको दण्ड देता है, इसही निमित्त शास्ता २०४, शास्त्र प्रसिद्ध बिराट देहधारी है, इस हेतु विश्रुतात्मा २०५, सुरारिहा २०६, भक्तियोग उपदेश करनेसे गुरु २०७। उपदेष्टा पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये गुरुत्तम २०८, सबको धारण करनेसे धाम २०९, त्रिकाल बाधारहित होनेसे सत्य २१०; अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त है, इस ही निमित्त सत्यपराक्रम २११, विशेष रीतिसे दर्शन करनेसे निमिष २१२. निमेषहीन होनेसे अनिमिष २१३, वैजयन्ती माला धारण करनेसे स्रग्वी २१४, बाक्यके अधिपति होनेसे बाचस्पति २१५. महाबुद्धि हेतुसे उदारधी २१६। सबसे पहले पूजनीय है, इसलिये अग्रणी २१७, मथुरा ग्रामसे सब लोगोंको द्वारकामें लेजानेसे ग्रामणी २१८, श्रीमान् २१९, श्रुति, स्मृति और पुराणोंके तात्पर्यको बिशेष रीतिसे जानता है, इसलिये न्याय २२०, धर्म्मफल प्रापक है, इसलिये नेता २२१, सम्यक् रीतिसे उसका ईरण अर्थात् भाषण होता है, इस ही निमित्त समीरण २२२, बिराटरूप होनेसे सहस्र मूर्द्धा २२३, बिश्वात्मा २२४, सहस्राक्ष २२५, सहस्रपात २२६। धर्म्म रक्षाके निमित्त बार बार उत्पन्न होता है, इसलिये आवर्त्तन २२७ उसका चित्त परम वैराग्ययुक्त है, इस ही निमित्त निवृत्तात्मा २२८, योगमायासे परिपूरित रहनेसे संवृत्त २२९, दुष्टोंको मर्द्दन करता है, इसलिये सम्प्रमर्द्दन २३०, सूर्य्यरूपसे दिनका प्रवर्त्तक है, इस ही हेतु अह २३१, सत्प्रवर्त्तक अग्निरूपसे देवताओंका हवि ढोता है, इसी हेतु बह्नि २३२; कंसको जीतकर उग्रसेनको पृथ्वी दान करनेसे उसके इला अर्थात् भूमि न थी, इस ही निमित्त अनिल २३३, अनन्त अथवा बराहरूपसे भूभार धारण करता है, इस ही हेतु धरणीधर २३४। उसकी प्रसन्नतासे सब प्रकारके आलस दूर होते हैं, इसलिये सुप्रसाद २३५, भक्तोंके अपराध करनेपर भी उसका चित्त अप्रसन्न नहीं होता, इसलिये प्रसन्नात्मा २३६, विश्वधृक् २३७, विश्वभुक् २३८, विविध रूप धारण करनेसे विभु २३९, धर्म्मरक्षाके हेतु गोब्राह्मणोंका सत्कार करता है, इस ही निमित्त सत्कर्त्ता २४०, पूजित पुरुषोंसेभी पूजनीय होनेसे सत्कृत २४१, न्यायकार्य्यसे दूसरोंका कार्य्य सिद्ध करता है, इसलिये साधु २४२, संहारसमयमें प्राणियोंको हरण करनेसे जह्नु २४३, प्रलयकालमें नारा अर्थात् जल ही उसका अयन अर्थात् आश्रय था, इस ही हेतु नारायण २४४, सनातन परमात्मा होनेसे नर २४५। अनिर्व्वचनीय होनेसे असंख्येय २४६, अप्रमेयात्मा २४७, सबसे उत्कृष्ट होनेसे विशिष्ट २४८ वेदोक्त कर्म्म करता है, इसलिये शिष्टकृत् २४९, शुचि २५०, सिद्धार्थ २५१, सिद्धसङ्कल्प २५२, सिद्धिद २५३, त्रैवर्गिक फल साधन करनेसे सिद्धिसाधन २५४, धर्म्मयुक्त द्वादश अह अर्थात् दिवस बिशिष्ट होनेसे बृषाहि २५५, अभिलषित विषय दान करता है, इसलिये बृषभ २५६, चरण संक्रमणसे जगतको वेष्टन कर रहा है, इस हेतु विष्णु २५७, धर्म्म ही उसका सोपान होनेसे बृषपर्व्वा २५८, धर्म्म उसके उदरमें बिद्यमान है, इसलिये बृषोदर २५९, भक्तोंके किये हुए अल्प बिषयोंकी भी वृद्धि करता है, इसलिये बर्द्धन २६०, बर्द्धमान २६१, पवित्र होनेसे बिबिक्त २६२, वेदोंके तात्पर्य्यका विषय होनेसे श्रुतिसागर २६३। सुभुज २६४, दुर्द्धर २६५, वाग्मी २६६, महेन्द्र २६७, बसुद २६८, बसु २६९, नैकरूप २७०, बृहद्रूप २७१, शिपिविष्ट २७२, प्रकाशन २७३, ओज बल तेज प्रताप द्युति तथा देहकान्ति धारण करता

है, इस ही निमित्त ओजस्तेज द्युतिधर २७४, प्रकाशात्मा २७५, प्रतापन २७६, परिपूर्ण होनेसे ऋद्ध २७७, स्पष्ट २७८, अक्षर २७९, मन्त्रके द्वारा बोधित होनेसे मन्त्र २८०, चन्द्रांशु भास्कर द्युति २८१। समुद्र मथके चन्द्रमाको उत्पन्न करनेसे अमृतांशूद्भव २८२, दीप्तिमान होनेसे भानु २८३, शशसदृश अनेक प्रकार लक्षणोंसे युक्त होनेसे शशविन्दु २८४, सुरेश्वर २८५, संसाररोग निवर्त्तक होनेसे औषध २८६, जगत्में सेतुरूपी होनेसे जगत्सेतु २८७, सत्यधर्म्म-पराक्रम २८८, भूतभव्य २८९, भवन्नाथ २९०, पवन २९१, पावन २९२, अनल २९३, भक्तोंको अपना रूप प्रदान करके उनके कामका विनाश करता है, इसलिये कामिहा २९४, प्रद्युम्नका उत्पादक होनेसे कामकृत् कान्त २९५, मुमुक्षुजनोंका काम्यकाम २९६, कामप्रद २९७, दिव्यरूपसे प्रकट होनेसे प्रभु २९८, युगादिकृत २९९, चारों युगोंका आवर्त्तन करता है, इसलिये युगावर्त ३००, नैकमाय ३०१ महाशन ३०२, अदृश्य ३०३, अव्यक्तस्वरूप ३०४, सहस्रजित् ३०५, अनन्तजित् ३०६, परमानन्दस्वरूप युक्त अथवा सबसे पूजित होनेसे इष्ट ३०७, सर्व्वोत्तमोंमें सर्वाङ्ग रूपसे विशिष्ट ३०८, शिष्टोंका इष्ट होनेसे शिष्टेष्ट ३०९, मयूरपुंछसे युक्त होनेसे शिखण्डी ३१०, मायासे भूतोंको बद्ध करता है, इसलिये नहुष ३११, अभिलषित विषयोंको वर्षा करता है, इसलिये वृष ३१२, भक्तोंके क्रोधको विनष्ट करनेसे क्रोधहा ३१३, दुष्टोंके विषयमें क्रोध करता है, इस ही निमित्त क्रोधकृत ३१४, कार्य्यमात्रके कर्तृत्व युक्त होनेसे कर्त्ता ३१५, विश्वबाहु ३१६, महीधर ३१७, अच्युत ३१८, प्रथित ३१९, प्राण ३२०, प्राणद ३२१, वासवानुज ३२२, अपांनिधि ३२३, अधिष्ठान ३२४, अप्रमत्त ३२५, निज महिमामें स्थित रहनेसे प्रतिष्ठित ३२६, वायुरूपसे शोषण करनेसे स्कन्द ३२७, वायुको धारण करनेसे स्कन्दधर ३२८, जगत्का भार उठाता है, इसलिये धूर्य्य ३२९, अभिलषित पदार्थोंके दान करनेसे वरद ३३०, वायुकी भांति वेगवान् विनतानन्दन गरुड़ उसका वाहन है, इस ही निमित्त वायुवाहन ३३१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ३३२, चन्द्र और सूर्य्यरूपसे बृहद्भानु ३३३, आदिदेव ३३४, शत्रुपुर विदारण करनेसे पुरन्दर ३३५, अशोक ३३६, तारण ३३७, शत्रुओंका भी उद्धार करता है, इसलिये तार ३३८, पराक्रमयुक्त होनेसे शूर ३३९, शूरके सन्तान होनेसे शौरि ३४०, जनेश्वर ३४१, अनुकूल ३४२, वह सैकड़ों बार प्रकट होता है, इसलिये शतावर्त्त ३४३, हाथमें पद्मधारण करनेसे पद्मी ३४४, पद्मनिभेक्षण ३४५। पद्मनाभ ३४६, अरविन्दाक्ष ३४७, पद्मगर्भ अन्नरूपसे शरीर पोषण करता है, इस ही निमित्त शरीरभृत् ३४८, उसकी महती सम्पत्ति है, इसलिये महर्द्धि ३४९, प्रपञ्चरूपसे बृद्धरूपी है, इसलिये ऋद्ध ३५०, पुरातन आत्मा होनेसे वृद्धात्मा ३५१, महाक्ष, ३५२, गरुड़ध्वज ३५३, उसकी उपमा नहीं है, इसलिये अतुल ३५४, शरीरके बीच प्रत्यागात्म रूपसे प्रकाशमान है, इस ही निमित्त शरभ ३५५, उससे सब कोई डरते हैं, इसीसे भीम ३५६, समयज्ञ ३५७, हवनीय रूपसे हवि ३५८, समस्त पाप हरनेसे हरि ३५९, सब शास्त्रोंका तात्पर्य्य विषय होनेसे सर्व्वलक्षण लक्षण्य ३६०, लक्ष्मीवान् ३६१, समर विजयी होनेसे समितिञ्जय ३६२। उसका विनाश नहीं है, इसलिये विक्षर ३६३, मत्स्यरूप धारण करनेसे रोहित ३६४, भक्तोंका अन्वेषणीय है, इसलिये मार्ग ३६५, निमित्त-उपादान, दोनों कारणरूप होनेसे हेतु ३६६, रज्जुसे बद्ध होनेसे उदरमें उस चिन्हको स्वधारण करता है, इसलिये दामोदर ३६७, सब कुछ सहता है, इस हेतु सह ३६८, गिरिरूपसे महीधर ३६९, परम भाग्यवान् होनेसे महाभाग ३७०, वेगवान् ३७१, सर्व्वसंहर्त्ता होनेसे अमिताशन ३७२, उससे संसार उत्पन्न हुआ है, इस-

लिये उद्भव ३७३, शत्रुओंको चुब्ध करनेसे चोभण ३७४, क्रोड़ा करता है, इसलिये देव ३७५, जगत्रूपी विभूति उसके उदरमें विद्यमान है, इसलिये श्रीगर्भ ३७६, परमेश्वर ३७७, साधक तम होनेसे करण ३७८, कारण ३७९, कर्त्ता ३८०, विकर्त्ता ३८१, दुर्व्विज्ञेय होनेसे गहन ३८२, स्वरूप सम्वरण करता है, इस ही निमित्त गुह ३८३, सम्वितरूपसे व्यवसाय ३८४, जगत् उसहीमें स्थित है, इसलिये व्यवस्थान ३८५, उसमें ही सबकी समाप्ति होती है, इस लिये संस्थान ३८६, भक्तोंको वैकुण्ठ प्रभृति स्थान दान करता है, इस ही निमित्त स्थानद ३८७, अनेक कर्म्म कर्त्तृत्वयुक्त होनेपर भी स्वरूपसे निश्चल है, इसलिये ध्रुव ३८८, परम ऐश्वर्य्यशाली होनेसे परार्द्ध ३८९, स्वप्रकाश ज्ञानरूपसे परम स्पष्ट ३९०, परमानन्दरूप होनेसे तुष्ट ३९१, पूर्णत्वयुक्त होनेसे पुष्ट ३९२, शुभेचण ३९३, उसमें योगिजन रमण करते हैं, इसलिये राम ३९४, उसमें जगत्का ठहराव होता है, इसही निमित्त विराम ३९५, रजोगुण-रहित होनेसे विरज ३९६, पथ प्रदर्शक है, इसलिये मार्ग ३९७, भक्तजन उसे निज हृदयमें लेजा सकते हैं, इसलिये नेय ३९८, भक्तोंका अल्प उपहार भी ग्रहण करता है, इसलिये नय ३९९, अभक्तोंका दिया हुआ अधिक उपहार भी नहीं लेता, इसही निमित्त अनय ४००, युद्ध, दान, सत्य और दया विषयमें वीर ४०१, शक्तिमान पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये शक्तिमतां श्रेष्ठ ४०२, धर्म्म वर्णन करता है, इसलिये धर्म्म ४०३, धर्म्मज्ञोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये धर्म्म विदुत्तम ४०४। जिनका कुण्ठा अर्थात् प्रतिघात विगत हुआ है, वैसे भक्तोंका बाध्य है, इसलिये वैकुण्ठपुरुष ४०५, वेदरूप शब्दही उसका प्राण है, इसही हेतु प्राण ४०६, ब्रह्माको वेददान करनेसे प्राणद ४०७, प्रकृष्टरूपसे स्तवनीय है, इसलिये प्रणव ४०८, व्यापक होनेसे पृथु ४०९, प्रशस्त गर्व्वनिबन्धनसे हिरण्य गर्भ ४१०, शत्रुघ्न ४११, व्यापक होनेसे व्याप्त ४१२, सर्व्वत्र गमन करता है, इसलिये वायु ४१३, इन्द्रियजनित ज्ञान उसे प्रकाशित नहीं कर सकता, इसलिये अधोचज ४१४। वह ऋतुओंके बीच वसन्त है, इसलिये ऋतु ४१५, सुदर्शन ४१६, काल ४१७, सबसे श्रेष्ठ स्थानमें निवास करता है, इसही निमित्त परमेष्ठी ४१८, मुमुक्षुजन अन्य देवताओंको परित्याग करके उसे ग्रहण करते हैं, इसलिये परिग्रह ४१९, सदाशिवरूपसे उग्र ४२०, जो जैसा कर्म्म है, उसमें उस ही भांति पूरी रीतिसे वास करता है, इसलिये सम्वत्सर ४२१, सत्कर्म्मोंमें आलस रहित होनेसे दच ४२२, जगत्को विश्राम स्थान है, इसलिये विश्राम ४२३, सब विषयोंमें सरल होनेसे विश्वदचिण ४२४। उसमें जगत् विस्तीर्ण होरहा है, इसही निमित्त विस्तार ४२५, सर्व्वत्र स्थितिशील होनेसे स्थावर ४२६, स्थिर होनेसे स्थाणु ४२७, प्रमाता सत्यवादी है, इसलिये प्रमाण ४२८, अव्ययबीज ४२९, प्रार्थनीय होनेसे अर्थ ४३०, उससे बढ़के और कोई नहीं है, इसही निमित्त अनर्थ ४३१, आनन्दमय होनेसे महाकोश ४३२, महाभोग ४३३, महाधन ४३४। भक्तोंके कार्य्यमें निर्व्वेदयुक्त नहीं होता, इसलिये अनिर्व्विस्त ४३५, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ट ४३६, सत्तारूपसे धर्म्मरूप सदृश है, इसलिये धर्म्मयूप ४३७, सबकाही महान् सखा है, इसलिये महासख ४३८, सुधाकर सदृश आनन्द जनक है, इसही हेतु नचत्रनेमि ४३९, उसके जन्म समयमें श्रेष्ठ नचत्र रहनेसे नचत्री ४४०, अल्प पूजा करनेसेही अपराध चमा करता है, इसलिये चम ४४१, भक्तोंके दुःखी होनेपर वह भक्तकी भांति कृश होता है, इसही हेतु चाम ४४२, उसकी सब चेष्टा पूर्ण रीतिसे सिद्ध होती है, इसलिये समीहन ४४३। राजसूय यज्ञमें पूज्य होनेसे यज्ञइज्य ४४४, उसकी महती पूजा हुआ करती है,

इस हेतु महेज्य ४४५, अनेक कार्य्य करता है, इसलिये क्रतु ४४६, सत्रकी भांति आचरण करता अथवा सत्रयाग स्वरूप है, इसही निमित्त सत्र ४४७, साधुओंकी गति है, इसी लिये सतांगति ४४८, सर्व्वदर्शी ४४९, विमुक्तात्मा ४५०, सर्व्वज्ञ ४५१, वृत्तिभिन्न ज्ञानरूप होनेसे उत्तम ज्ञान ४५२। सुव्रत ४५३, सुमुख ४५४, सूक्ष्म ४५५, सुघोष ४५६, सुखद ४५७, सुहृत् ४५८, मनोहर ४५९, जितक्रोध ४६०, वीरबाहु ४६१, विदारण ४६२। भक्तोंको उक्तात्मा समर्पण करनेसे स्वापन ४६३, स्ववश ४६४, व्यापी ४६५, अनेकोंकी आत्मा होनेसे नैकात्मा ४६६, विविधि कर्म्मोंको करता है, इसलिये नैकर्म्मकृत् ४६७, गऊ और गोपियोंको वत्स दान करनेसे वत्सर ४६८, भक्तोंके विषयमें स्नेहवान् होनेसे वत्सल ४६९, चरानेके लिये उसके बछड़े थे, इसलिये वत्सी ४७०, रत्नगर्भ ४७१, धनेश्वर ४७२, धर्म्मकी रक्षा करता है, इसलिये धर्म्मगुप ४७३, धर्म्मवेत्ता होनेसे धर्म्मकृत् ४७४, धर्म्मी ४७५, सूक्ष्मरूपसे सत् ४७६, स्थूलरूपसे असत् ४७७, विनाशी होनेसे क्षर ४७८, अविनाशी भावसे अक्षर ४७९, ज्ञातृरूप नहीं है; किन्तु ज्ञानरूप है; इसलिये अविज्ञात सहस्रांशु ४८०, विधाता, उसके सब लक्षण पर्य्याप्त हैं, इसलिये कृतलक्षण ४८१। सब उसका नामस्वरूप है, इसलिये गभस्तिनेमि ४८२, सत्त्वस्थ ४८३, अत्यन्त विक्रमशाली होनेसे सिंह ४८४, भूतोंके उत्सवका ईश्वर है, इसही निमित्त भूतमहेश्वर ४८५, आदिदेव ४८६, महादेव ४८७, देवेश ४८८, देवभृद्गुरु ४८९। सबसे श्रेष्ठ होनेसे उत्तर ४९०, गोपति ४९१, रक्षाकर्त्ता होनेसे गोप्ता ४९२, ज्ञानगम्य ४९३, पुरातन ४९४, शरीररूप भूतगणको धारण करता है, इसलिये शरीर भूतभृत ४९५, भोक्ता ४९६, सुग्रीवको परम ऐश्वर्य्यशाली किया था; इसलिये कपीन्द्र ४९७, वह अनेक लोगोंके निकट सरल है, इसलिये भूरिदक्षिण ४९८। रघुनाथ रूपसे अनेक यज्ञ करके सोमपान किया था, इसही निमित्त सोमप ४९९, अमरगणकी रक्षा करनेसे अमृतप ५००, चन्द्रमाकी भांति आनन्दजनक होनेसे सोम ५०१, अनेक पुरुषोंको जीतनेसे पुरुजित ५०२, पुरुषोत्तम ५०३, विशेष नीति सम्पन्न होनेसे विनय ५०४, क्रोधादि जय करनेसे जय ५०५, सत्य सन्ध ५०६, दानपात्र अथवा दशार्ह वंशमें उत्पन्न होनेसे दाशार्ह ५०७, यादवोंका प्रभु है, इसही निमित्त सात्वतांपति ५०८, जीव ५०९, विनयी लोगोंका विनयिता साक्षी है, इससलिये विनयिता-साक्षी ५१०, मुक्तिदाता होनेसे मुकुन्द ५११, अमितविक्रम ५१२, देवताओंकी निधिकी भांति उपादेव है, इसलिये अम्भोनिधि ५१३, श्रीमान् अनन्त बलभद्रमें उसका चित्त सन्निविष्ट है, इस ही निमित्त अनन्तात्मा ५१४, महोदधिशय ५१५, अन्तक ५१६। अशुद्ध हृदयसे उत्पन्न नहीं होता, इसही लिये अज ५१७, महापूज्य होनेसे महार्ह ५१८, निज भक्तोंका चिन्तनीय होनेसे स्वाभाव्य ५१९ जितामित्र ५२०, प्रमोदन ५२१, आनन्द ५२२, नन्दन ५२३, स्वयं समृद्धि सम्पन्न होनेसे नन्द ५२४, सत्यधर्म्मा ५२५, तीनों लोकोंके बीच गरुड़के सहारे गमन करता है, इसलिये त्रिविक्रम ५२६। महर्षि ५२७, कपिलाचार्य्य ५२८, कृतकर्म्मोंको जानता है, इसलिये कृतज्ञ ५२९, रामावतारमें मेदिनीपति ५३०, त्रिपद ५३१, त्रिपशाध्यक्ष ५३२, महत् प्रभुत्वयुक्त होनेसे महाशृङ्ग ५३३, सिद्धान्त कर्त्ता होनेसे कृतान्तकृत् ५३४। लोकोत्तर वाराह है, इसलिये महावाराह ५३५, गऊ चरानेसे गोविन्द ५३६, सेनाके सहित भली भांति शत्रुयुद्धमें गमन करता है, इसही निमित्त सुषेण ५३७, स्वर्णमय केयूरधारी होनेसे कनकाङ्गदी ५३८, परम रहस्यरूपसे गुह्य ५३९, गूढ़ाभिप्राय निबन्धनसे गभीर ५४०, दुष्प्रवेश होनेसे गहन ५४१, इन्द्रि-

योंका माग्राह्य होनेसे गुप्त ५४२, चक्रगदाधर ५४३। भक्तोंका हितसाधन करता है, इसलिये वेधा ५४४, स्वभक्तजन उसके अङ्ग हैं, इसलिये स्वाङ्ग ५४५, शत्रुगण उसे जीत नहीं सकते, इसही निमित्त अजित ५४६, कृष्णवर्ण होनेसे कृष्ण ५४७, समर्थ होनेसे दृढ़ ५४८, पूर्णरीतिसे भक्तोंका दुःख कर्षण करता है, इसलिये संकर्षण ५४९, अच्युत ५५०, अपनेको वरण करनेसे वरुण ५५१, वरुण लोकसे आगत होनेसे वारुण ५५२, संसारवृक्षको छेदन करता अथवा भक्तजनोंका कल्पतरु है, इसही हेतु वृक्ष ५५३, पुष्कराक्ष ५५४, उन्नतचित्त होनेसे महामना ५५५, समस्त ऐश्वर्य धर्म यश श्री ज्ञान और वैराग्यविशिष्ट है, इसलिये भगवान् ५५६, प्रलयकालमें ऐश्वर्य नष्ट करता है, इसलिये भगहा ५५७, नित्यसुखी होनेसे आनन्द ५५८, वनमाली ५५९, हलायुध ५६०, अदितिका अपत्य होनेसे आदित्य ५६१, ज्योतिसमूहमें कोटि सूर्य सदृश है, इसलिय ज्योतिरादित्य ५६२, सहिष्णु ५६३, गतिसत्तम ५६४, सुधन्वा ५६५, उसका परशु शत्रुओंको खण्ड खण्ड करता है, इसलिये खण्डपरशु ५६६, विरोधियोंके विषयमें दारुण है, इसलिये दारुण ५६७, धनदाता होनेसे द्रविणप्रद ५६८, वावन अवतारमें द्युलोक आक्रमण करनेसे दिवस्पृक् ५६९, सर्व्वदर्शी ५७०, वेदव्यस रूपसे उत्पन्न हुए इसलिये व्यास ५७१, वाचस्पति ५७२, अयोनिज ५७३, वेदव्रत समाख्यात नामक तीनों साम उसके प्रतिपादक हैं, इसलिये त्रिसामा ५७४, वह ब्रह्मावत रूपसे साम गान करता है, इसही निमित्त साम ५७५, परमानन्द रूप होनेसे निर्व्वाण ५७६, अच्युतानन्द गोविन्द इत्यादि नामोंके उच्चारण करनेसे रोग नष्ट होता है। इसलिये भेषज ५७७, संसारतारक विद्याका उपदेशक होनेसे भिषक् ५७८, मोक्षके हेतु सन्न्यास किया करता है, इस हो निमित्त सन्न्यास सकृत् ५७९, सन्न्यासियोंकी शान्तिका विषय उपदेश करता है, इसलिये शम ५८०, सुखमें अनासक्त है, इसलिये शान्त ५८१, प्रलयकालमें सब भूत उसमें निवास करते हैं, इसही निमित्त निष्ठा ५८२, अविद्या निवृत्तिरूपसे शान्ति ५८३, पुनरावृत्तिरहित अवलम्ब होनेसे परायण ५८४, शुभाङ्ग ५८५, शान्तित ५८६, स्रष्टा ५८७, पृथ्वी तलमें आमोदयुक्त होनेसे कुमुद ५८८, प्रलयकालमें जलमें शयन करता है, इस हो निमित्त कुवलेशय ५८९, गौवोंका हितकारी होनेसे गोहित ५९०, पृथिव्यादिका पति होनेसे गोपति ५९१, गोप्ता ५९२, धर्म्म ही उसका नेत्र है, इसलिये वृषभाक्ष ५९३, धर्म्म ही उसे प्रिय है, इस ही हेतु वृषप्रिय ५९४, कर्म्मोंसे निवृत्त नहीं होता, इस ही निमित्त अनिवर्त्ती ५९५, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त हुआ है, इसलिये निवृत्तात्मा ५९६, वेदोंके अर्थको गीतामें संक्षेप करनेसे संक्षेप्ता ५९७, उसे स्मरण करनेसे पवित्रता होती है, इस हेतु क्षेमकृत् शिव ५९८, श्रीवत्सवक्षा ५९९, श्रीवास ६००, श्रीपति ६०१, श्रीमताम्वर ६०२, श्रीद ६०३, श्रीश ६०४, श्रीनिवास ६०५, श्रीनिधि ६०६, कर्म्मके अनुसार श्री प्रदान करनेसे श्रीविभावन ६०७, श्रीधर ६०८, श्रीकर ६०९, श्रेय ६१०, श्रीमान् ६११, लोकत्रयाश्रय ६१२, उसके अक्ष अर्थात् इन्द्रियें उत्तम हैं, इस ही निमित्त स्वक्ष ६१३, सुन्दर अङ्गयुक्त होनेसे स्वङ्ग ६१४, अपरिमित आनन्द स्वरूप होनेसे शतानन्द ६१५, आनन्दित करनेसे नन्दी ६१६, ज्योतिगणेश्वर ६१७, विजितात्मा ६१८, कोई उसके सङ्ग विग्रह करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये विधेयात्मा ६१९, सत्कोर्त्ति ६२०, छिन्नसंशय ६२१, उदीर्ण ६२२, सर्व्वतश्चक्षु ६२३, उसका कोई ईश्वर नहीं है, इसलिये अनीश ६२४, सब समय सर्व्वस्थानोंमें व्याप्त रहनेसे शाश्वतस्थित ६२५, सीतान्वेषणके समय समुद्रके तीर भूमिपर शयन करनेसे भूशय ६२६, सबको भूषित करनेसे भूषण ६२७,

भूति ६२८, विशोक ६२९, शोकनाशन, ६३०, अर्च्चिष्मान ६३१, अर्च्चित कुम्भकी भांति उसमें सब प्रतिष्ठित है, इसलिये कुम्भ ६३२, विशुद्धात्मा ६३३, विशोधन ६३४, अनिरुद्ध ६३५, अप्रतिरथ ६३६, प्रकृष्टधनशाली होनेसे प्रद्युम्न ६३७, अमितविक्रम ६३८, कालनेमि नाम असुरको मारनेसे कालनेमिनिहा ६३९, वि अर्थात् गरुड़को चलानेसे वीर ६४०, शूर अर्थात् वसुदेवके पुत्र होनेसे शौरि ६४१, शूरजनेश्वर ६४२, त्रिलोकात्मा ६४३, त्रिलोकेश ६४४, बड़े केशोंसे युक्त है, इसलिये केशव ६४५, केशी नाम दानवको मारनेसे केशिहा ६४६, पापोंको हरनेसे हरि ६४७, कामनीय रूप होनेसे कामदेव ६४८, भक्तोंकी वाञ्छा पूरण करनेसे कामपाल ६४९, कामी ६५०, कान्त ६५१, वेदप्रणेता होनेसे कृतागम ६५२, अनिर्द्देश्य-वपु ६५३, द्युलोक और भूलोकमें व्याप्त होनेसे विष्णु ६५४, वीर ६५५, अनन्त ६५६, धनञ्जय ६५७, तपस्या प्रभृतिके निमित्त हितू है, इसलिये ब्रह्मण्य ६५८, वेदकर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत् ६५९, सृष्टिकर्त्ता होनेसे ब्रह्मा ६६०, आत्मसंवेद्य ज्ञानस्वरूप है, इसलिये ब्रह्म ६६१, तपकी वृद्धि करनेसे ब्रह्मविवर्द्धन ६६२, तत्त्ववेत्ता होनेसे ब्रह्मवित् ६६३, वेद प्रवर्त्तक होनेसे ब्राह्मण ६६४, ब्रह्मतत्त्वयुक्त है, इसलिये ब्रह्मी ६६५, जीवरूपसे मैं ही ब्रह्म हूं ऐसे ज्ञानविशिष्ट होनेसे ब्रह्मज्ञ ६६६, ब्राह्मणगण उसे प्रिय हैं, इसलिये ब्राह्मणप्रिय ६६७, महाक्रम ६६८, महाकर्म्मा ६६९, महातेजा ६७०, महोरग ६७१, महाक्रतु ६७२, महायज्वा ६७३, महायज्ञ ६७४, महाहवि ६७५, स्तुतियोग्य होनेसे स्तव्य ६७६, स्तवप्रिय ६७७, गुण प्रतिपादक शब्दरूपसे स्तोत्र ६७८, गुणकीर्त्तन क्रियारूपमें स्तुति ६७९, स्तुतिकर्त्ता होनेसे स्तोता ६८०, रणप्रिय ६८१, पूर्ण ६८२, पूरयिता ६८३, पुण्य ६८४, पुण्यकीर्त्ति ६८५, अनामय ६८६, मनोजव ६८७, तीर्थकर ६८८, सुवर्ण रेता होनेसे वसुरेता ६८९, धनदाता होनेसे वसुप्रद ६९०, धनखण्डन करता है, इसलिये वसुप्रद ६९१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ६९२, मायासे स्वरूप आच्छादन करता है, इसलिये वसु ६९३, सर्व्वत्र अविनाशी रूपसे उसका मन बसता है, इस ही निमित्त वसुमना ६९४, ब्रह्ममें कर्म्मफल अर्पित होनेसे हवि ६९५, सद्गति ६९६, सत्कृति ६९७, सर्व्वत्र प्रतीयमान अधिष्ठान रूपसे सत्ता ६९८, उससे साधुओंको ऐश्वर्य्य मिलता है, इसलिये सद्भूति ६९९, साधु भक्तोंके अभीष्ट होनेसे सत्परायण ७००, उसकी सारी सेना बलवान है, इसलिये शूरसेन ७०१, यदुश्रेष्ठ ७०२, साधुओंका आश्रय होनेसे सन्निवास ७०३, यमुनाके उत्तम तटपर गोपालोंने उसे परिवेष्टन किया था, इसलिये सुयामुन ७०४, उसमें सर्व्वभूत निवास करते हैं, इसही निमित्त भूतावास ७०५, विशुद्ध सत्त्वमें अधिष्ठित होनेसे वासुदेव ७०६, सब प्राण प्रभृतिका आश्रय है, इसही हेतु सर्व्वासुनिलय ७०७, उसके शक्ति सम्पदकी सीमा नहीं है, इसलिये अनल ७०८, दर्पहा ७०९, दर्पद ७१०, दृप्त ७११, दुर्द्धर ७१२, अपराजित ७१३, विश्वमूर्त्ति ७१४, महामूर्त्ति ७१५, दीप्तमूर्त्ति ७१६, अमूर्त्तिमान् ७१७, अनेक मूर्त्ति ७१८, अव्यक्त ७१९, शतमूर्त्ति ७२०, शतानन ७२१, स्वगत सजातीय और विजातीय भेदरहित होनेसे एक ७२२, मायाके सहारे बहुरूप होनेसे अनेक ७२३, उससे सोम उत्पन्न होता है, इसलिये यज्ञरूपसे सव ७२४, सुख अथवा ब्रह्मा स्वरूपसे क ७२५, विचार्य्य होनेसे किं ७२६, भक्तोंके हितसाधनके हेतु उनके स्थानोंमें जाता है, इसलिये यत् ७२७, अनेक लीला फैलानेसे तत् ७२८, अनुत्तम आश्रय होनेसे पदमनुत्तम ७२९, लोकबन्धु ७३०, लोकनाथ ७३१, माधव ७३२, भक्त वत्सल ७३३, हिरण्मय पुरुष रूपसे सुवर्णवर्ण ७३४, हेमाङ्ग ७३५, वराङ्ग ७३६, चन्दनाङ्गी ७३७, धर्मरक्षाके हेतु

वीर असुरोंको मारनेसे वीरहा ७३८, उसके समान कोई नहीं है, इसलिये विषम ७३९, सब धर्म्मोंसे रहित होनेसे शून्य ७४०, आशाहीन आप्तकाम होनेसे घृताशी ७४१, निजरूपसे विचलित नहीं होता, इसलिये अचल ७४२, प्राणीरूपसे चल ७४३, अमानी ७४४, मानद ७४५, मान्य ७४६, लोकस्वामी ७४७, त्रिलोकधृक् ७४८, सुमेधा ७४९, गिरियज्ञमें इन्द्रमख निवारण करनेके लिये अन्नकूट भोक्ता रूपसे उत्पन्न होनेसे मेधज ७५०, धन्य ७५१, सत्यमेधा ७५२, शेषरूपसे धराधर ७५३, आदित्यरूपसे वर्षा करता है, इसलिये तेजोवृष ७५४, द्युतिधर ७५५, सर्व्वशस्त्रभृतांवर ७५६, भक्तोंके द्वारा उपहृत पूजा प्रकर्षरूपसे ग्रहण करता है, इसलिये प्रग्रह ७५७, दण्डनीय लोगोंके विषयमें दण्डविधान करता है, इसलिये निग्रह ७५८, भक्तोंपर अनुग्रह विषयमें विहस्त है, इस ही हेतु व्यग्र ७५९, चतुःशृङ्ग मन्त्र वर्णा होनेसे नैकशृङ्ग ७६०, गदनाम श्रीकृष्णका भ्राता है, उससे पहले जन्म लेनेसे गदाग्रज ७६१, हिरण्यगर्भादि रूपसे चतुर्म्मूर्त्ति ७६२, चतुर्ब्बाहु ७६३, चतुर्व्यूह ७६४, चारों वेदोंका तात्पर्य्यविषय होनेसे चतुर्गति ७६५, मनबुद्धि, अहंकार और चित्तस्वरूप होनेसे चतुरात्मा ७६६, चारों आश्रमके धर्म्मरूपसे चतुर्भाव ७६७, चतुर्व्वेदवित् ७६८, जगत रूपसे एकपात् ७६९ संसारचक्रको पूर्ण रीतिसे आवर्त्तन करता है, इसलिये समावर्त्त ७७०, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त है, इसलिये निवृत्तात्मा ७७१, दुर्जय ७७२, दुरतिक्रम, ७७३, दुर्लभ ७७४, दुर्गम ७७५, अत्यन्त दुःखसे प्राप्त होता है, इसलिये दुर्ग ७७६, दुरावास ७७७, दुरारिहा ७७८, शुभाङ्ग ७७९, लोकशारङ्ग ७८०, उसहीका यह सब उत्तम प्रपञ्च तन्यमान है, इसलिये सुतन्तु ७८१, उक्त तन्तुकी वृद्धि करनेसे तन्तुवर्द्धन ७८२, इन्द्र उसका कर्म्म है, इसलिये इन्द्रकर्म्मा ७८३, महाकर्म्मा ७८४, कृतकर्म्मा ७८५, चतुर्व्विध पुरुषार्थ प्रापण उसका आगमन प्रयोजन है, इसलिये कृतागम ७८६, उससे जगत् उत्पन्न होता है, इसलिये उद्भव ७८७, जगत्‌में अत्यन्त सौन्दर्य्यशाली होनेसे सुन्दर ७८८, चिद्रूपशोभवान् होनेसे सुन्द ७८९, रत्न सदृश उसकी नाभि है, इसलिये रत्ननाभ ७९०, वेदरूपी नेत्रयुक्त है, इसलिये सुलोचन ७९१, अर्चनीय होनेसे अर्क ७९२, अन्नदान करता है, इसलिये वाजसन ७९३, मत्स्यावतारमें उनके शींग था, इसही निमित्त शृङ्गी ७९४, जयशील होनेसे जयन्त ७९५, सर्व्ववित् ७९६, जयी ७९७, उसके अवयव सुवर्णयुक्त हैं, इसलिये सुवर्ण विन्दु ७९८, अक्षोभ्य ७९९, सर्व्ववागीश्वरेश्वर ८००, महाह्रद ८०१, महारथ होनेसे महागर्त्त ८०२, महाभूत ८०३, महानिधि ८०४, भूमण्डलमें आमोदित होता है, इसलिये कुमुद ८०५, कुन्दकी भांति स्वच्छफलदान करता है, इसही निमित्त कुन्दर ८०६, कुन्ददामकृत कौतुक रूपी होनेसे कुन्द ८०७, मेघकी भांति पापनाशन होनेसे पर्जन्य ८०८, पावन ८०९, पवन ८१०, अमृतांश ८१ , अमृतवपु ८१२, सर्व्वज्ञ ८१३, सर्व्वतोमुख ८१४, नामगान नृत्यादिसे सहजहीमें प्राप्त होता है, इसलिये सुलभ ८१५, सुव्रत ८१६, सिद्ध ८१७, शत्रुजित ८१८, शत्रुतापन ८१९, सब भूतोंको नीचे रोक रखता है, इसलिये न्यग्रोध ८२०, अन्नादिरूपसे पोषण करता है, इसही निमित्त उदुम्बर ८२१, प्रपञ्चरूपसे विस्तीर्ण है, इसलिये अश्वत्थ ८२२, चाणूरनामक रन्ध्रदेशीय कंसके मल्लका नाश किया था, इसही हेतु चाणूरान्ध्रनिसूदन ८२३, सहस्रार्च्चि ८२४। काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधुम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी विश्वरुचिनाम्नी सप्तजिह्वा विशिष्ट अग्निस्वरूप होनेसे सप्तजिह्व ८२५, सात समितयुक्त होनेसे सप्तैधा ८२६, सूर्य्यरूपसे सप्तवाहन ८२७, घनमूर्त्ति रहित होनेसे अमूर्त्ति ८२८, निष्पाप है, इसलिये अनघ ८२९, अचिन्त्य ८३०, अभक्तोंको

भयभीत करता है, इसलिये भयकृत ८३१, भक्तोंका भय दूर करता है, इसलिये भयनाशन ८३२, सूक्ष्म होनेसे अणु ८३३, वृद्धिशील होनेसे बृहत् ८३४, कृश ८३५, स्थूल ८३६, कल्याण-धाता होनेसे गुणभृत् ८३७, परमार्थ होनेसे निर्गुण ८३८, नाममात्रसेही जगत्का उद्धार करता है, इसलिये महान् ८३९, कोई उसे धारण नहीं कर सकता, इसलिये अधृत ८४०, स्वमहिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये स्वधृत् ८४१, उत्तम वेद उसके मुखसे निकलते हैं इस ही कारण स्वास्य ८४२, उसका प्रथमवंश है, इसही निमित्त प्राग्वंश ८४३, परीक्षितकी रक्षा करके पाण्डवोंकी वृद्धि करनेसे वंशवर्द्धन ८४४, अनन्त रूपसे पृथ्वीका भार धारण करता है, इसलिये भारभृत् ८४५, श्रुतिके तात्पर्य्य विषयी कृत होनेसे कथित ८४६, चित्तवृत्ति-निरोध युक्त होनेसे योगी ८४७, योगीश ८४८, सर्व्वकामद ८४९, संसाररूपी वनमें विचरनेवाले जीवोंके विश्रामस्थान होनेसे आश्रम ८५०, भक्त विरोधियोंको खेदित करनेसे श्रमण ८५१, प्रलयकालमें प्रजा समूहका नाश करता है, इसलिये क्षाम ८५२, उसके उत्तम छन्द संसारवृक्षके पत्ते हैं, इसलिये सुपर्ण ८५३, वायुको चलानेसे वायुवाहन ८५४, धनुर्द्धर ८५५, धनुषके गुण दोषोंका जाननेवाला है, इसलिये धनुर्व्वेद ८५६, दमनकारी होनेसे दण्ड ८५७, मन्वादिरूपसे प्रजा समूहको दमन किया था, इसही निमित्त दमयिता ८५८, दण्डके फल दम्यनिष्ठ होनेसे दम ८५९, अपराजित ८६०, सर्व्वसह ८६१, नियन्ता ८६२, नियम ८६३, अयम ८६४, सतोगुणी होनेसे सत्त्ववान् ८६५, प्राधान्य रूपसे स्थित है, इसही निमित्त सात्त्विक ८६६, सत्य ८६७, सत्यधर्म्म परायण ८६८, पुरुषार्थकांक्षी पुरुषोंका अभिप्रेत होनेसे अभिप्राय ८६९, प्रियार्ह ८७०, असनादिसे पूज्य है, इसलिये अर्ह ८७१, प्रियकृत ८७२, प्रीतिवर्द्धन ८७३, वह आकाशमें गमन करता है, इसही कारण विहाय सगति ८७४, द्युतिशील होनेसे ज्योति ८७५, सुरुचि ८७६, देवताओंके उद्देशसे दी हुई हवि भोजन करनेसे हविभुक् ८७७, विभु ८७८, रस आदान करनेसे रवि ८७९, विशेषरूपसे रुचिशील है, इसलिये विरोचन ८८०, आकाशमें गमन करनेसे सूर्य्य ८८१, जगत् सृष्टिकर्त्ता होनेसे सविता ८८२, सूर्य्य उसका नेत्र है, इसलिये रविलोचन ८८३, उसका अन्त नहीं है, इसही निमित्त अनन्त ८८४, अग्निरूपसे हवनीय घृतादि भोजन करता है, इसही कारण हुतभुक् ८८५, प्रकृतिका कार्य्यदर्शी होनेसे भोक्ता ८८६, अभक्तोंका सुख खण्डन करता है, इसही हेतु सुखद ८८७, अनेकबार बहुतेरे स्थानोंमें विविध भक्तोंसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये अनेकज ८८८, हिरण्य गर्भ रूपसे अग्रज ८८९, अनिर्व्वेद शून्य होनेसे अनिर्व्विस्थ ८९०, साधुओंके विषयमें क्षमा प्रदर्शित करनेसे सदामर्षी ८९१, सब लोकोंका अज्ञात कारण होनेसे लोकाधिष्ठान ८९२, अत्यन्त शक्तिमान् होनेसे अद्भुत ८९३, कालरूप होनेसे सनाथ ८९४; ब्रह्मादिकाभी कारण है, इसलिये सनातन तम ८९५, कर्द्दम प्रजापतिके द्वारा देवहूतीके गर्भसे कपिल रूपसे उत्पन्न हुए, इसलिये कपिल ८९६, वराहश्रेष्ठ रूपसे कपि ८९७, जगत् उसमें लीन होता है, इसलिये अव्यय ८९८, स्वस्तिद ८९९, अभक्त जनोंका स्वस्ति छेदन करता है, इस ही निमित्त स्वस्तिकृत् ९००, कल्याणरूप होनेसे स्वस्ति ९०१, भक्तजनोंका मङ्गल पालन करता है, इसलिये स्वस्तिभुक् ९०२, कल्याण विषयमें अनुकूल रहता है, इसही निमित्त स्वस्तित ९०३, दक्षिण ९०४, अरौद्र ९०५, कुण्डली ९०६, चक्री ९०७, विक्रमी ९०८, उर्जितशासन ९०९, वचनसे उसका वर्णन नहीं होसकता, इसलिये शब्दातिग ९१०, शब्दोंका अपने सङ्ग एक तात्पर्य्य करता है,

इसही निमित्त शब्दसह ९११, संसार तापनाशक होनेसे शिशिर ९१२, शर्व्वरीकर ९१३, अक्रूर ९१४, मनोहर होनेसे पेशल ९१५, शीघ्रकारी होनेसे दक्ष ९१६, क्षमिणाम्वर ९१७, विद्वत्त ९१८, वीतभय ९१९, पुण्यश्रवण कीर्त्तन ९२०. संसारसे उत्तीर्ण करता है. इसलिये उत्तारण ९२१, पापोंको नाश करनेसे दुष्कृतिहा ९२२, पुण्य करता है वा कहता है, इसलिये पुण्य ९२३, दुस्वप्ननाशन ९२४, संसारकी विविधिगति हरनेसे वीरहा ९२५, रक्षा करता है, इसलिये रक्षण ९२६, विद्या विनय वृद्धिके निमित्त वर्त्तमान है. इसलिये सन्त ९२७, जीवित रखता है, इसलिये जीवन ९२८, विश्वव्यापक होनेसे पर्य्यवस्थित ९२९, अनन्तरूप ९३०, अनन्तश्री ९३१. जितमन्यु ९३२. भयापह ९३३, कर्म्मके अनुरूप फलदाता होनेसे न्याय ९३४, सम्मवित होनेसे चतुरस्र ९३५, गम्भीरचित्त है, इसही निमित्त गभीरात्मा ९३६ विविधफल दान करता है, इसलिये विदिश ९३७, विशेष रूपसे आदेश करता है, इसलिये व्यादिश ९३८, वेदरूपसे आदेशकर्त्ता है. इसही निमित्त दिश ९३९. अनादि पृथवीकी भांति सबका अवलम्ब है, इसलिये भू ९४०, पृथ्वीकी शोभा है, इसलिये भुवोलक्ष्मी ९४१, सुवीर ९४२, रुचिराङ्गद ९४३, उस होसे प्रद्युम्न प्रभृतिकी उत्पत्ति हुई है. इसलिये जनन ९४४. जन्ममात्रसेही आदि है, इसलिये जन-जन्मादि ९४५, भयका हेतु होनेसे भीम ९४६, भीमपराक्रम ९४७, भौत्तिकाश्रय महाभूतोंका आधार है, इसलिये आधारनिलय ९४८, उसका कोई भी धारक नहीं है, इसही हेतु अधीता ९४९, पुष्पकी भांति उसकी हांसी आनन्द जनक है, इसलिये पुष्पहास ९५०, प्रकृष्ट जागरण विशिष्ट होनेसे प्रजागर ९५१. उद्धज ९५२, सत्पथाचार ९५३, प्राणद ९५४, प्रणव ९५५, भक्तोंके सहित व्यवहार करता है, इसलिये पण ९५६, यादवोंमें मर्य्यादा रूप होनेसे प्रमाण ९५७, जीवोंका अवलम्ब है, इसलिये प्राणनिलय ९५८, प्राणभृत् ९५९, प्राणजीवन ९६०, अवाधित सत्यस्वरूप होनेसे सत्त्व ९६१, तत्त्ववित् ९६२ एकात्मा ९६३, जन्म ९६४, मृत्य ९६५, जरातिग ९६६, भूलोक भुवर्लोक और स्वर्ग लोकमें कल्पवृक्षकी भांति अभीष्टप्रद है, इसलिये भुभुवःस्वस्तरु ९६७. भक्तोंको तारनेसे तार ९६८, सर्व्व साधारण रूपसे पिता है. इसलिये सपिता ९६९, पितामहका पिता है, इसलिये प्रपितामह ९७०, पूज्य है. इसलिये यज्ञ ९७१, यज्ञपति ९७२, यजमान रूपसे यज्वा ९७३. यज्ञाङ्ग ९७४, वह यज्ञसे प्राप्त होता है, इसलिये यज्ञवाहन ९७५. यज्ञभृत् ९७६, यज्ञकृत् ९७७. यज्ञी ९७८, यज्ञभुक् ९७९, युधिष्ठिरका अनेक उपायसे सिद्ध कराया, इसलिये यज्ञसाधन ९८०, यज्ञान्तकृत् ९८१, यज्ञगुह्य ९८२, उसहीसे सब प्राणी भक्षण करते हैं, इसलिये अन्न ९८३, भोक्ता होनेसे आन्नाद ९८४, आत्माही उसकी योनि अर्थात् उपदान कारण है, इसलिये आत्मयोनि ९८५. स्वयंजात ९८६, खनसम्वलित होनेसे वैखान ९८७, सामगायन ९८८, देवकीनन्दन ९८९, स्रष्ट ९९०, क्षितीस ९९१, पापनाशन ९९२, शङ्खभृत् ९९३, नन्दकनाम खड्गधारी होनेसे नन्दकी ९९४, चक्री ९९५, शार्ङ्गधन्वी ९९६, गदाधर ९९७, रथाङ्गपाणि ९९८, अक्षोभ्य ९९९, सर्व्वप्रहरणायुध १०००, ॐ नमः। यह कीर्त्तनीय महात्मा केशवका दिव्य सहस्र नाम अशेष रूपसे वर्णित हुआ। जो मनुष्य सदा इसे सुनता, सुनाता वा कहता है, उसे इस लोक अथवा परलोकमें कुछभी अशुभ प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण इसे पाठ करनेसे वेदान्त पारदर्शी होता, क्षत्रियको विजय प्राप्त होती. वैश्य धन सम्पन्न होता और शूद्रको सुख मिलता है। धर्म्मार्थी मनुष्य धर्म्म लाभ करते, अर्थार्थी पुरुषोंको अर्थलाभ हुआ करता है। कामीजनोंको काम प्राप्त होता

और प्रजार्थी लोगोंको प्रजा प्राप्त हुआ करती है। जो भक्तिमान् पुरुष सदा उठके पवित्र और तद्गतचित्त होकर वासुदेवका यह सहस्र-नाम पाठ करते हैं, उन्हें विपुल यश स्वजनोंके निकट प्रधानता, अचला लक्ष्मी और उत्तम कल्याण प्राप्त होता है, उन्हें किसी स्थानमें भय नहीं होता, वीर्य्य और तेज लाभ करते, अरोगी, द्युतिमान और बलरूपसे युक्त होते हैं, रोगार्त्त पुरुष इसे सुननेसे रोग रहित होता और बद्ध मनुष्य कारागारसे छूट जाते हैं। भीत मनुष्य भयसे और विपद्ग्रस्त आपदोंसे मुक्त हुआ करते हैं; मनुष्य भक्तियुक्त होकर सदा पुरुषोत्तमका इन्हीं सहस्रनामोंके सहारे स्तव करनेसे शोघ्रही क्लेशोंसे छूटता है और वासुदेवका आश्रय करने और वासुदेव परायण होनेसे सब पापोंसे रहित तथा पवित्रचित्त होकर ब्रह्मपद पाता है। वासुदेवके भक्तोंको कदाचित अशुभ नहीं होता और न उन्हें जन्म मृत्यु, जरा तथा व्याधिका भय होता है। जो लोग श्रद्धा और भक्तिपूर्व्वक इस स्तवका पाठ करते हैं, वे आत्मसुख, क्षमा, श्री, धृति और कीर्त्तियुक्त होते हैं,। पुरुषोत्तममें भक्तियुक्त पुण्यवान पुरुषोंको क्रोध, मत्सरता, लोभ और अशुभ बुद्धि नहीं होती। चन्द्र, सूर्य्य, स्वर्ग और नक्षत्रोंके सहित आकाश मण्डल सब दिशा तथा समुद्र महानुभाव वासुदेवके वीर्य्यसे विधृत होरहा है। सुरासुर, गन्धर्व्व, यक्ष, राक्षस और उरगोंके सहित सचराचर जगत् श्रीकृष्णके वश-वर्त्ती होकर विद्यमान है। इन्द्रियें, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धृति, शरीर, जीव, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ सभी वासुदेवमय हैं। सब शास्त्रोंकी अपेक्षा आचार ही पहले परिकल्पित होता है, आचारसे धर्म्मकी उत्पत्ति हुआ करती है और अच्युत वासुदेव ही धर्म्मके प्रभु हैं। ऋषि, पितर, देवता महाभूत, सब धातु और स्थावर जङ्गमात्मक यह जगत् नारायणसे उत्पन्न हुआ है। योगज्ञान, सांख्ययोग, सब विद्या, शिल्पकर्म्म वेद, शास्त्र, समस्त विज्ञान, ये सब जनार्द्दनसे प्रकट हुए हैं। भूतात्मा अव्यय एक मात्र विष्णु ही महद्भूत और अनेक रूपसे पृथक् भूत हैं, वही विश्वभुक् त्रिभुवनमें व्यापक होके भोग कर रहा है। जो मनुष्य कल्याण तथा सुखलाभकी इच्छा करे, वह वेदव्यासके कहे हुए भगवान विष्णुका यह स्तोत्र पाठ करे, जो लोग जगतकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण जन्मरहित कमल-नयन विश्वेश्वरदेवका भजन करते हैं, उनको कदापि पराभव नहीं होतो।

१४९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्वशास्त्र विशारद महा-प्राज्ञ पितामह! कैसे जप्य मन्त्रकी सदा जप-नेसे महत् धर्म्मफल होता है? प्रस्थानकाल, प्रवेशके समय अथवा कार्य्य आरम्भ होनेपर दैव वा श्राद्धकालमें कौनसा मन्त्र कार्य्य सिद्ध करता है? जिसे जपनेसे शान्ति, पुष्टि, रक्षा, शत्रुहानि तथा भय विनाश होता है, और जो वेदतुल्य हो, आप उसे वर्णन कर सकते हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज! तुम एकाग्रचित्त होकर यह व्यासदेवका कहा हुआ मन्त्र सुनो, यह सावित्री द्वारा बिरचित हुआ है और इसे पाठ करनेसे तुरन्तही पाप छूटता है। हे अनघ! हे पाण्डव! जिसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है, मैं उस मन्त्रकी सारी बिधि कहता हूं, तुम सुनो। हे धर्म्मज्ञ नृपवर! रात्रि और दिनमें जिसके सहारे मनुष्य पापपु-ञ्जसे लिप्त नहीं होता, उसे मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे नृपनन्दन! जिसे सुननेसे पुरुष आयुमान होता और सुसिद्ध अर्थ होकर इस लोक तथा पर-लोकमें प्रमुदित हुआ करता है। हे महाराज! पहले समयमें क्षत्रधर्म्मनिष्ठ सत्यधर्म्म परायण सत्तम राजर्षियोंके द्वारा यह मन्त्र सेवित हुआ

था। हे भरतश्रेष्ठ! जो सब राजा संयत होकर अव्यग्रभावसे सदा इस मन्त्रका जप करते हैं, उन्हें उत्तम श्री प्राप्त हुआ करती है। महाव्रत वशिष्टदेवको नमस्कार है, वेदनिधि पराशरको प्रणाम करके महोरग अनन्तदेवको नमस्कार है तथा इसलोकमें अक्षय सिद्धों और ऋषियोंको नमस्कार है। श्रेष्ठोंके बीच श्रेष्ठ देवताओंकेभी देव, वरणीयोंके वरद शिवस्वरूप सहस्रशीर्ष, सहस्रनाम जनार्द्दनको नमस्कार है। अजैकपाद, अहिर्बुध्न, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवनईश्वर, इन नामोंसे त्रिलोकेश्वर ग्यारह रुद्र प्रसिद्ध हैं, शतरुद्रिकेबीच उन्हीं महानुभाव रुद्रगणके एक सौ नाम वर्णित हैं। अंशभग, मित्र, जलेश्वर, वरुण, धाता, अर्ज्जमा, वैजयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य कश्यपकी सन्तान कहाते हैं। धव, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये अष्टवसु वर्णित हुए हैं। नासत्य और दस्र, दोनों अश्विनीकुमार विख्यात् हैं, ये मार्त्तण्ड अर्थात् सूर्य्यके आत्मज संज्ञाके नासिकासे बाहिर हुए हैं। इसके अनन्तर सब लोकोंके कर्मसाक्षी, अज्ञान और सुकृतकार्य्य वेत्ता, सब भूतोंमें अदृश्य रहकेभी जो त्रिदशेश्वरगण शुभाशुभ कर्म्मोंको अवलोकन करते हैं, वेही मृत्यु काल, विश्वदेवगण, पितृगण, मूर्त्तिमान तपोधनगण, तपस्या और मोक्षपरायण, शुचिस्मित सिद्ध-मुनिगण, जो कीर्त्तनकारी मनुष्योंको शुभ सम्प्रदान करते हैं, जो दिव्यतेज प्रभावसे प्रजापतिके बनाये हुए लोकोंमें निवास करते हैं, सर्व्वलोकों और समस्त कार्य्योंमें जो प्रयत हुआ करते हैं, प्राणोंके ईश्वर, इन सबके नामकीर्त्तन करनेसे मनुष्य सदा विपुली धर्म्मार्थ कामसे युक्त होता है और उसे विश्वेश्वरकृत शुभ लोक प्राप्त होते हैं। ये हैंतीस देवगण सब भूतोंके ईश्वर हैं, महाकाय नन्दीश्वर ग्रामणी, वृषभध्वज, गणेश्वर और विनायक सब लोकोंके ईश्वर हैं। सौम्यगण, रौद्रगण, योगभूतगण, समस्त ज्योतिष, नदियें, आकाश, पतगेश्वर, सुपर्ण, पृथ्वीके समस्त सिद्ध तपस्वी, स्थावर-जङ्गम और हिमालय पर्व्वतके सहित चारों समुद्र, हर सदृश पराक्रमी शिवके अनुचर वृन्द, देवश्रेष्ठ विष्णु; विष्णु और अम्बिकाके सहित स्कन्द, इन देवताओंको सावधान होके स्मरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है। इसके अनन्तर माननीय ऋषिसत्तमोंका नाम कहता हूं,— यवक्रीत, रैभ्य, अर्व्वावसु, परावसु, औशिज, काक्षीवान्, अङ्गिराके पुत्र बल, मेधातिथि और बर्हिषदेवकेपुत्र कण्वऋषि, ये सब कोई ब्रह्मतेजमय और लोक भावन कहके वर्णित होते हैं। ये सब रुद्र अग्नि और वसुतुल्य प्रभाशाली सुनिगण शुभलाभ करते, ये भूलोकमें शुभकर्म्म करके द्युलोकमें देवताओंके सहित दिव्य लीला किया करते हैं। महेन्द्रके गुरु सप्तर्षि पश्चिम दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं, जो लोग सावधान होके इनका नाम लेते हैं, वे इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं। उन्मुच, प्रमुच, वीर्य्यवान् स्वस्त्यात्रेय दृढ़व्य, उर्द्ध्वबाहु, तृणसोम, अङ्गिरा और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान अगस्त्य, ये सातों धर्म्मराजके पुरोहित होकर दक्षिण दिशाको अवलम्बन किये हैं। दृढ़ेषू, ऋतेषू, कीर्त्तिमान, परिव्याध, आदित्य तुल्य एकत, द्वित और त्रित, अत्रिके पुत्र धर्म्मात्मा सारस्वत ऋषि ये सातों वरुणके पुरोहित पश्चिम दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं। अत्रि भगवान् वशिष्ट, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज कुशिकवंशोद्भव विश्वामित्र, ऋचिकके पुत्र उग्र और प्रतापशाली जमदग्नि, ये सातो धनेश्वर कुवेरके गुरु उत्तर दिशामें वास करते हैं। दूसरे सप्तमुनि सब दिशाओंमेंही अधिष्ठित हैं, वे मनुष्योंके कीर्त्ति और कल्याणकर तथा लोकभावन कहके

वर्णित हुए हैं । धर्म्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल, ये सातो धरणीधर हैं । भृगुराम, व्यासदेव, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और लोमश, ये दिव्य मुनि हैं । इन मुनियोंके बीच प्रत्येक सात सात प्रकारके हैं, लोकमें येही शान्ति और स्वस्ति कर रहे हैं, ये जिस दिशामें रहें, उसही ओर मुह करके उनका शरणागत होवे, ये सब भूतोंके स्रष्टा और लोकपावन रूपसे विख्यात् हैं। सम्वर्त्त, मेरुसावर्णि, धार्म्मिक मार्कण्डेय, सांख्ययोग, नारद और महर्षि दुर्व्वासा, ये अत्यन्त तपोनिरत तथा दान्त होनेसे प्रसिद्ध हैं । दूसरे ब्रह्मलोकनिवासी मुनिगण रुद्रसदृश कहके वर्णित होते हैं । इनका नाम लेनेसे अपुत्र पुरुषको पुत्र लाभ होता, दरिद्र पुरुष धन पाते और धर्म्मार्थ काम विषयमें सिद्धिलाभ किया करते हैं । पृथिवी जिसकी कन्या हुई थी, उस वेण्य, नृपनन्दन प्रजापति सार्व्वभौम पृथु राजाका नाम लेवे । सूर्य्यवंशीय महेन्द्रसदृश पराक्रमी त्रिलोक विख्यात इलापुत्र पुरुरवा जो बुधका प्रियपुत्र है, उस वसुधाधिपका नाम लेवे । त्रिलोक विख्यात् वीरवर भरतका नाम और जिन्होंने सतयुगमें गोमेधयज्ञकिया था, उस परम तेजस्वी महाराज रन्तिदेवका नाम कीर्त्तन करना योग्य है, विश्वविजयी तपस्यायुक्त सुलक्षण लोक हितकर महा तेजस्वी राजर्षि श्वेतका नाम लेवे । जिसने महादेवको प्रसन्न किया था, जिसके निमित्त अन्धक दैत्य मारा गया, जो महादेवकी कृपासे भूमण्डलमें गङ्गा देवीको ले आया, जिसने सगर सन्तानोंको प्लावित तथा उद्धृत किया है, उस परम तेजस्वी राजर्षि भगीरथका नाम लेवे । अग्नि सदृश महा रूपवान महातेजस्वी उग्रकाय महाबल कीर्त्तिवर्द्धन नृपनन्दनगणका नाम कीर्त्तन करना योग्य है । देवगण, ऋषिगण, जगत्के नियन्ता नृपतिगण परम सांख्ययोग और हव्य कव्य परम श्रुतिपरायण परब्रह्मरूपसे वर्णित होते हैं । हे भारत ! सर्व्व भूतोंके मङ्गलकारी अनेक विषयोंको वर्णन किया है, यह सब व्याधियोंका नाश और सर्व्व कार्य्योंमें पुष्टिसाधन करता है, इसलिये सबेरे सन्ध्याके समय संयत होके इन्हें स्मरण करे । येही रक्षा करते, येही वर्षा करते, येही दीप्ति लाभ करते हैं, येही वहन तथा सृजन करते हैं, येही विनायक श्रेष्ठ, दक्ष, दान्त और जितेन्द्रिय हैं, इसलिये ये लोग कीर्त्तित होनेसे मनुष्योंके समस्त अशुभ दूर किया करते हैं, ये सब महात्मा पाप और पुण्यके साक्षी स्वरूप हैं, जो लोग भोरके समय उठके इन सब महात्माओंका नाम लेते, वे कल्याण परम्परा उपभोग किया करते हैं । जो मनुष्य सदा इनका नाम लेते हैं, उन्हें अग्नि और चोरका भय नहीं होता, उनके मार्गको कोई नहीं रोकता तथा उनके दुःस्वप्न नष्ट हुआ करते हैं । जो ब्राह्मण संयत होकर समस्त दीक्षाकालमें इसे पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूटता और स्वस्तिमान होके गृहमें गमन करनेमें समर्थ होता है । न्यायवान्, आत्मनिरत, क्षान्त, दान्त, अनुसूयक, रोगार्त्त अथवा व्याधियुक्त मनुष्य इसे पाठ करनेसे पाप-रहित हुआ करते हैं । गृहमें इसे पाठ करनेसे कुलका मङ्गल होता है, जो लोग क्षेत्रमें पाठ करते हैं, उनके क्षेत्रमें सब अङ्कुर उत्पन्न होते हैं, गमनशील मनुष्यके मार्गमें मङ्गल हुआ करता है, अन्य ग्राममें गया हुआ मनुष्य इसे पाठ करते हुए आत्म सुतके सहारे धन, बीज और ओषधियोंकी रक्षा करे । संग्रामके समय इस मन्त्रको जपनेवाले क्षत्रियोंके सब शत्रु विनष्ट होते हैं और उसका कल्याण हुआ करता है । दैव और पितृ कार्य्यमें जो पुरुष इन सब नामोंका पाठ करता है, उसके पितर और देवगण हव्य कव्य भोजन किया करते हैं । जो लोग इन नामोंका पाठ करते, उन्हें व्याधि नहीं होती, श्वापदोंका भय नहीं रहता, द्विप

और तस्करोंसे भय नहीं होता, पाप घटता तथा वे पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग उत्तम साबित्री पाठ करते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चारों वर्णों विशेष करके सदा आश्रमोंको शान्ति किया करते हैं। जो लोग सावित्री गुण कीर्त्तनरूप महत् वेद ग्रहण करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता और वे परमगति पाते हैं, गौवोंके बीच साबित्री पाठ करनेसे गौवें बहुवत्सला होती हैं। प्रस्थानकाल वा प्रवेशके समय जिस किसी अवस्थामें स्थित होके सर्व्वदा ही सावित्री पाठ करे। हे नरनाथ! जपपरायण होमनिष्ठ और सदा सावधानचित्त ऋषियोंका यह परम जप्य तथा गुप्त मन्त्र है। पहिले समयमें यह पराशर-सम्मत पुरातन इतिहास यथार्थ रीतिसे देवराजके निकट बर्णित हुआ था, वही इतिहास पूरी रीतिसे तुम्हारे समीप कहा गया। यह सनातन ब्रह्म स्वरूप, सर्व्वभूतोंका हृदय तथा सनातनी श्रुति है, चन्द्रवंशीय, सूर्य्यवंशीय, रघुवंशीय तथा कुरुवंशीय राजा लोग सदा पवित्र होकर यह परम पवित्र साबित्री पाठ किया करते हैं। देवताओंके निकट सप्तर्षिमण्डल और ध्रुव नक्षत्रके समीप इसे पाठ करनेसे सब पाप बिनष्ट होते हैं और इसका पाठ अशुभसे सदा बिमुक्त करता है। कश्यप गौतम प्रभृति रुद्रगण, और भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अगस्त्य, वृहस्पति प्रभृति ब्रह्मर्षिगण सेवित ऋचीक पुत्रोंके द्वारा अधिगत यह भरद्वाज सम्मत साबित्री बशिष्ठके निकट पाके देवराज और बसुओंने दानवोंका दल नष्ट किया था। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको सोनेके सींगसे युक्त एक सौ गऊ दान करते और दिव्य भारत कथाको नित्य पाठ किया करते हैं, उनके सदृश इसे पाठ करनेसे फल होता है। भृगुका नाम लेनेसे विशेष रीतिसे धर्म्मकी वृद्धि होती है, वसिष्ठको प्रणाम करनेसे बीर्य्यकी वृद्धि हुआ करती है, रघुको नमस्कार करनेसे पुरुष युद्धमें बिजयी होता है और दोनों अश्विनीकुमारोंके नाम लेनेसे कोई रोग नहीं होता। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट शाश्वती ब्रह्म साबित्री बर्णित हुई। हे भारत! तुम अब भी बिबक्षु हो, इसलिये और जो सुननेकी इच्छा हो उसे कहो।

१५० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये? किनके सङ्ग कैसा व्यवहार करना होता है? कैसे पुरुषके साथ कैसा आचार करनेसे मनुष्य हिंसित नहीं होता?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंको परिभव करनेसे देववृन्द भी अवसन्न होते हैं, ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे पुरुष हिंसित नहीं होता। ब्राह्मण ही पूज्य हैं, वेही नमस्कारके योग्य हैं, उनके समीप पुत्रकी भांति बर्त्तमान रहे, वे मनीषि ब्राह्मण लोकोंको धारण कर रहे हैं। जो लोग धन परित्याग करके अभिराम अथवा जो वाक्यसंयममें रत हैं, वेही सब लोगोंके लिये महान् धर्म्मसेतु स्वरूप हैं। जो धृतवती रमणीय और सेवकोंके निधान हैं तथा जो लोक शास्त्रोंके प्रणेता हैं, वे ही यशस्वी होते हैं। तपस्या ही जिनका नित्यधन और वाक्य ही विपुल बल है, वे सूक्ष्मदर्शी धर्म्मज्ञ ब्राह्मण धर्म्मप्रभव हैं। धर्म्मकामना करनेवाले मनुष्य सदा सत्यधर्म्ममें स्थित रहते हैं, वे ही धर्म्मसेतुस्वरूप हैं, जिन्हें सम्यक् रीतिसे अवलम्बन करके चार प्रकारकी प्रजा जीवन व्यतीत करती है। सनातन यज्ञवाही ब्राह्मण लोग सबके नेता और मार्ग प्रदर्शक हैं, वेही पितृ पितामह सम्बन्धीय गुरुतर भारोंको सदा वहन करते हैं। साधुओंकी भांति जो लोग बिषम भार उठानेमें अवसन्न नहीं होते, ब्राह्मण देवता और अतिथिगण जिनके सुखस्वरूप हैं,

जो हव्य कव्यका अग्रभाग भोजन करते और भोजनमात्रसे ही तीनों लोकोंको महत् भयसे परित्राण किया करते हैं, वेही सब लोकोंके दीपस्वरूप, वेही नेत्रवान मनुष्योंके नेत्रस्वरूप हैं, समस्त शिक्षा और श्रुति ही जिनका धन है, जो निपुण, मोक्षदर्शी, सब लोकोंके गतिज्ञ और अध्यात्मगति-चिन्ताशील हैं। जो आदि मध्य और अन्तके ज्ञाता हैं, जिनके सब सन्देह दूर हुए हैं, जो परावर, विशेषज्ञ हैं, वेही परमगति पाते हैं, जो लोग विमुक्त, पापरहित, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, मनार्ह और मानवित् महात्माओंके द्वारा सदा मानित हैं, जो चन्दन और मलपङ्कको समान जानते हैं, भोज्य और अभोज्य वस्तुमें तुल्य बुद्धि किया करते हैं, दुकूल और पटवस्त्रमें जिन्हें सम-ज्ञान है, बहुत दिनोंतक बिना भोजन किये जो लोग निवास कर सकते हैं, जो संयतेन्द्रिय होकर स्वशाखोक्त वेदपाठके समय शरीर सुखाया करते हैं, जिनकी कोपाग्नि आजतक भी दण्डकमें उपशान्त नहीं हुई; जो देवताओंके भी देवता, कारणोंके भी कारण और प्रमाणोंके भी प्रमाण-स्वरूप हैं; कोई ज्ञानवान् मनुष्य उन ब्राह्मणोंको अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता; वे अदेवको देव कर सकते और देवको अदेव करनेमें समर्थ हैं, तथा क्रुद्ध होनेपर दूसरे लोकों वा लोकपालोंको उत्पन्न कर सकते हैं। जिन महात्माओंके शापसे समुद्र भी अपेय हुआ है, जिनके बीच वृद्ध, बालक सभी सम्मानके योग्य हैं, तप विद्या विशेषके सहारे वे लोग परस्परमें सम्मान प्रदर्शित किया करते हैं। अविद्वान ब्राह्मण भी देवस्वरूप और महत् पवित्र, पात्र है, विद्वान ब्राह्मण उससे अधिक देवतुल्य और पूर्णसमुद्र सदृश है। जैसे संस्कृत और असंस्कृत अग्नि महत् देवता है, वैसे ही अविद्वान् अथवा विद्वान् ब्राह्मण भी महत् देवतास्वरूप है। तेजस्वी अग्नि श्मशानमें भी दूषित नहीं होती, विधिपूर्व्वक हविर्यज्ञ और गृहके बीच विशेष रूपसे शोभित होती है। ब्राह्मण यदि सदा अनिष्ट कार्य्योंमें भी वर्त्तमान रहे, तोभी सब भांतिसे माननीय है, उसे परम देवता जानो।

१५१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ नरनाथ! किस प्रकारके फलको देखके तथा कैसे कर्म्मोदयको जानकर आप उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं?

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें पवन और अर्जुनके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। माहिष्मती नगरीमें सहस्र भुजयुक्त महाबली श्रीमान् कार्त्तवीर्य्य-अर्जुन नाम राजा समस्त जगतका प्रभु हुआ था। उस हैहयवंशीय सत्यपराक्रमी वीरने रत्नाकरवती ससागराम्बरा सद्दीपा समस्त पृथ्वीमण्डलको शासित किया था, उन्होंने किसी कारणसे दत्तात्रेय मुनिको निज वित्त प्रदान किया था, उस कृतवीर्य्यात्मज अर्जुनने क्षत्रधर्म्म विनय और प्रश्रयान्वित होकर उस मुनिकी आराधना की थी। मुनिवरने प्रसन्न होकर उसे तीन वर मांगनेको कहा, राजा मुनिके समीप तीन वर पानेकी बात सुनके बोला, कि सेनाके बीच मेरी हजार भुजा होवें और गृहमें इस विषयमें अन्यथा हो। युद्धमें सैनिक-पुरुष मेरी हजार भुजा अवलोकन करें, मैं संशितव्रती होकर पराक्रमसे समस्त पृथ्वीमण्डल जय करूंगा और धर्म्मपूर्व्वक उसे पाकर आलसरहित होके पालन करूंगा। हे द्विजसत्तम! मैं इन्हीं तीनों वरोंको मांगता हूं, परन्तु आपके समीप मैं और एक चौथा वर पानेके लिये प्रार्थना करता हूं। हे अनिन्दित! आप मुझपर कृपा करके उसे प्रदान कर सकते हैं, यदि मैं आपके आश्रयमें रहके मिथ्या उद्दत

होऊं, तो साधुगण मुझे अनुशासित करें। ब्राह्मणने राजाका ऐसा वचन सुनके उसे तथास्तु कहके वर दिया। इस ही प्रकार उस दीप्त तेजस्वी राजाने ब्राह्मणसे वर पाया था। अनन्तर वह राजा सूर्य और अग्निसदृश तेजस्वी रथपर चढ़कर वीर्य सम्मोहके वशमें होकर कहने लगा;—"धैर्य, वीर्य, यश, शौर्य, पराक्रम और तेजमें मेरे समान कौन है?" उसका वचन शेष होनेपर आकाशमें 'अशरीरिणी आकाशवाणी हुई। रे मूढ़! क्या तू नहीं जानता, कि ब्राह्मण क्षत्रियसे श्रेष्ठ हैं; क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग मिलकर इस लोकमें प्रजाशासन करते हैं।'

अर्ज्जुन बोले, मैं सन्तुष्ट होनेपर सबभूतोंकी सृष्टि कर सकता और क्रुद्ध होनेपर सबको विनष्ट करनेमें समर्थ हूं, इसलिये वचन, मन और कर्मसे मेरी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं हैं। ब्राह्मणोंका प्राधान्यवाद पूर्व्वपक्ष और क्षत्रियोंका आधिक्य वाक्य सिद्धान्तपथ है, तुमने हेतुयुक्त दोनों वाक्य कहा, किन्तु उस विषयमें विशेष दीखता है। ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंका आसरा किया करते हैं, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मणोंका आसरा नहीं करते, ब्राह्मण वेदाध्ययन छलनिबन्धनसे क्षत्रियोंको उपजीव्य किया करते हैं। प्रजासमूहके धर्म्म क्षत्रियोंके आश्रित हैं, क्षत्रियोंसे ब्राह्मणोंकी जीविका हुआ करती है, तब उन क्षत्रियोंसे ब्राह्मण किस प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं? मैं सब प्राणियोंकी अपेक्षा उन प्रधानभिक्षा वृत्तिशाली ब्राह्मणोंको अपने अधोनमें स्थापित करूंगा। सुरलोकमें इस आकाशवाणीने असत्य वचन कहा है, मैं अवश्य तथा अजिन वस्त्रधारी ब्राह्मणोंकी जय करूंगा। तीनों लोकोंके बीच ऐसा कोई देवता वा मनुष्य नहीं है, जो मुझे राज्यसे च्युत कर सके। इसलिये मैं ब्राह्मणोंसे अवश्यही श्रेष्ठ हूं। मैं ब्राह्मण-प्रधान लोकको क्षत्रियप्रधान करूंगा, क्योंकि युद्धके बीच मेरे बलको सहनेमें किसीकाभी उत्साह नहीं है, आकाशवाणी अर्ज्जुनका वचन सुनके भयभीत हुई। अनन्तर आकाशसे वायुने उससे कहा, यह दूषितभाव परित्याग करके ब्राह्मणोंको नमस्कार करो ब्राह्मणोंके विषयमें पापाचरण करनेसे राज्य नष्ट होगा अथवा महाबल ब्राह्मण लोगही तुम्हें शान्त करेंगे, वे तुम्हें उत्साहरहित करके राज्यसे निराश करेंगे। राजाने उनसे पूछा, तुम कौन हो? वायुने कहा, मैं देवदूत पवन तुमसे हित-वचन कहता हूं।

अर्ज्जुन बोले, क्याही आश्चर्य है! इस समय तुम ब्राह्मणोंके विषयमें भक्ति अनुराग प्रदर्शित करके ब्राह्मणोंको पृथ्वीके सदृश कहते हो, ब्राह्मणगण वायुके सदृश वा जलके समान, किम्वा अग्नि तुल्य, सूर्य्य अथवा आकाशके सदृश हैं।

१५२ अध्याय समाप्त।

वायु बोले, हे मूढ़! महानुभाव ब्राह्मणोंके कई एक गुण सुनो। हे महाराज! तुमने जिनका नाम लिया, ब्राह्मण लोग उनसेभी श्रेष्ठ हैं। पृथ्वी अङ्गराजके सङ्ग स्पर्द्धा करके विनष्ट हुई थी विप्रवर कश्यपने उस पृथ्वीका फिर उद्धार किया था। महाराज ब्राह्मण लोग इस लोक और सुरलोकमेंभी सदा अजेय हैं। पहले समयमें अङ्गिराने निज तेज प्रभावसे समस्त जलपान किया था, वह महात्मा क्षीरको भांति जलको पीकेभी तृप्त नहीं हुए। हे पार्थिव! उन्होंने महाप्रवाहसे समस्त पृथ्वी मण्डलको परिपूरित किया था, उनके क्रुद्ध होनेपर मैंने भी जगत् छोड़के गमन किया और अङ्गिराके भयसे बहुत समय तक अग्निहोत्रमें निवास किया था, और भगवान इन्द्र अहल्याकी कामना करके गौतमके द्वारा अभिशप्त होकर धर्म्मार्थभाव हिंसित नहीं हुए। हे राजन्! समुद्र मीठे जलसे युक्त प्रकट हुआ था, वह ब्राह्मणके शापसे लवणोदक हुआ है। सुवर्णवर्ण निधूम-

युक्त उद्दालिख कवि हुताशन क्रुद्ध अङ्गिराके द्वारा अभिशापित होकर पूर्व्वोक्त गुणोंसे रहित हुए थे। हे राजन्! देखिये सगरके पुत्रगण जिन्होंने महोदधिकी उपासना की थी, वे सब उत्तम ब्राह्मणवर्णधारी द्विजाति कपिलके द्वारा अभिशापयुक्त हुए। हे नरनाथ! तुम ब्राह्मणोंके सदृश नहीं हो, तुम अपने कल्याणकी चिन्ता करो, भगवान गभस्थ ब्राह्मणोंकोभी सदा नमस्कार करते हैं। दण्डक राजाओंका महत्-राज्य ब्राह्मणोंके द्वारा नष्ट हुआ; तालजङ्घ नाम महा क्षत्रिय एकही उर्व्वके द्वारा नष्ट हुआ। तुम्हें भी दत्तात्रेय मुनिकी कृपासे विपुल राज्य, बल, धर्म्म और परम दुर्लभ शास्त्रज्ञान प्राप्त हुआ है। हे अर्ज्जुन! तुम ब्राह्मणरूपी अग्निदेवकी किस निमित्त सदा पूजा करते हो? वेही सब लोकोंके हव्य कव्यको वहन करते हैं, क्या तुम उन्हें नहीं जानते? अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रतिभूतोंकेही पालन कर्त्ता हैं, इसलिये ब्राह्मणोंको जीवलोकका कर्त्ता जानकेभी तुम क्यों मुग्धहोते हो? अव्यक्त अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जिन्होंने इस स्थावर-जङ्गममय निखिल विश्वकी सृष्टि की है, कोई कोई मूर्ख उस ब्रह्माको अण्डसे उत्पन्न हुआ कहनेकी इच्छा करते हैं, अण्ड विभिन्न होनेपर उससे पर्व्वत दिग्मण्डल जल, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित होता है, यह द्रष्टव्य नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा अज होकर किस प्रकार उत्पन्न हुए? आकाश अण्डरूपसे स्मृत हुआ है, पितामह उसही आकाशसे प्रकट हुए हैं, उस समय कुछभी नहीं था, इसलिये ब्रह्माने वहां किस भांति निवास किया? उसे वर्णन करो। हे राजन्! सर्व्वतेजगत प्रभु अहङ्कार नामसे अभिहित होते हैं, लोक-विधाता ब्रह्मा उसके अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। वायु उस समय इतनी कथा कहके चुप होरहे, अनन्तर फिर कहने लगे।

१५२ अध्याय समाप्त।

वायु बोले, हे महाराज! पहले समयमें अङ्ग नामक राजाने ब्राह्मणोंको दक्षिणा स्वरूपमें इस भूमिको दान करनेकी इच्छा की; उस समय पृथ्वीने सोचा, कि मैं सर्व्वलोकधारिणी ब्रह्मसुता हूं; तब यह राजा मुझे पाके किस निमित्त ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये अभिलाषी हुआ है? जो हो, मैं भूमित्व परित्याग करके ब्रह्मलोकमें चलूं, यह राजा राज्यहीन होवे; ऐसा विचार करके धरणी ब्रह्मलोकमें चली गई। अनन्तर कश्यपने पृथ्वीको जाती हुई देखके उसही समय योगबलसे अपना शरीर परित्याग करके निर्ज्जीव महीदेहमें प्रवेश किया। तब पृथ्वी तृण ओषधियोंसे युक्त तथा सब भांतिसे समृद्धिसम्पन्न हुई। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीपर धर्म्मकी प्रधानता हुई और सब भय नष्ट हुआ। हे महाराज! इस ही प्रकार देवपरिमाणसे तीस हजार वर्षतक कश्यपके द्वारा अधिष्ठिता भूमि सदा अतन्द्रित हो रही। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीने ब्रह्मलोकसे आके कश्यपको नमस्कार किया और उस समय महानुभाव कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी नामसे प्रसिद्ध हुई। हे महाराज! कश्यप ब्राह्मण ऐसे पराक्रमी थे; तुम ही बताओ कोई क्षत्रिय कश्यपसे श्रेष्ठ है वा नहीं? इतनी कथा सुनके राजा चुप हो रहा।

पवन बोले, हे राजन्! आङ्गिरस कुलमें उत्पन्न उतथ्यका वृत्तान्त सुनो। सोमकी कन्या भद्रा परम रूपवती थी, सोमने उतथ्यको उसके योग्य पति जाना था। उस चार्व्वङ्गीने परम नियम अवलम्बन करके उतथ्यके निमित्त घोर तपस्या की। अनन्तर सोमके पिता अत्रिने उतथ्यको आह्वान करके वह यशस्विनी कन्या दान की, भूरिदक्षिण उतथ्यने भी उसे भार्य्या रूपसे विधिपूर्व्वक ग्रहण किया। श्रीमान् वरुणने पहले उस कामिनीके लिये कामना की थी, इसलिये वह वनस्थलमें आगमन करके यमु-

नाके तटपर उसे हरके निज पुरीमें लेआये, वरुणपुरीसे बढ़के और कोई लोक उत्तम न थे, उसमें परम अद्भुत षट् सहस्र शत ह्रद थे, वह प्रासाद अप्सराओं और दिव्यकामसे शोभित था। हे राजन्! जलेश्वर उस पुरीके बीच उतथ्यभार्य्याके सङ्ग क्रीड़ा करने लगे। अनन्तर नारदने उतथ्यसे उसकी भार्य्या हरनेका वृत्तान्त कहा, उतथ्य नारदके मुखसे ऐसा समाचार सुनके उस समय उनसे बोले, आप वरुणके निकट जाके उससे परुष वाक्य कहिये, कि मेरे वचनके अनुसार मेरी भार्य्याको छोड़ दो, तुमने क्यों उसे हरण किया? तुम लोकपाल हो, लोकोंके विलोपकारी नहीं हो, सोमने मुझे भार्य्या दी है, तुमने इस समय उसे क्यों हरण किया? उतथ्यका यह सब वचन नारदमुनिके द्वारा जलेश्वर सुनके तिरस्कृत हुए और जब नारदने कहा, तुम उतथ्यकी भार्य्या परित्याग करो, तुमने उसे क्यों हरण किया है? तब वरुण उनसे बोले, यह भीरु मेरी भी अत्यन्त प्यारी है, मैं इसे परित्याग नहीं कर सकता। जब वरुणने ऐसा वचन कहा, तब नारद रुष्ट चित्तसे उतथ्य मुनिके निकट आके बोले, वरुणने मुझे गर्द्दनमें हाथ लगाकर विदा किया, तुम्हारी भार्य्या नहीं दी। अब तुम्हें जो करना हो, वह करो। महातपस्वी उतथ्य मुनि नारदका वचन सुनके क्रुद्ध और प्रज्वलित हुए और निज तेजोप्रभावसे जलको विष्टम्भन पूर्व्वक पान किया। जब सब जल उतथ्यने पीलिया, उस समय जलेश्वरने सुहृदोंसे तिरस्कृत होकर भी उनकी भार्य्या न दी। अनन्तर द्विजवर उतथ्य क्रुद्ध होकर भूमिसे बोले, हे भद्रे! छः हजार एक सौ ह्रद विशिष्ट स्थल मुझे दिखाओ। अनन्तर वह स्थल मरुभूमि और समुद्र भी सूख गया। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने सरस्वती नदीसे कहा, हे भीरु सरस्वती! तुम इस देशसे गमन करो, हे भीरु! तुमसे रहित होके यह देश पुण्यहीन होवे। अनन्तर उस देशके पूरी रीतिसे सूखनेपर वरुण भद्राको लेकर उतथ्यके शरणागत हुए और उन्हें उनकी भार्य्या प्रत्यर्पण की। हे हैहय! उतथ्य अपनी भार्य्या पाके प्रसन्न हुए और जगत् दुःखसे मुक्त हुआ। महातेजस्वी धर्म्मज्ञ उतथ्यने अपनी भार्य्या पाके वरुणसे जो वचन कहा, सुनो। "हे जलाधिप! तुम्हारे आक्रोश प्रकाश करनेपर भी मैंने इसे तपस्याके द्वारा पाया है," ऐसा वचन कहके वह अपनी भार्य्या लेकर निजगृहपर गये। हे राजन्! वह उतथ्य ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। अब मैं तुमसे पूछता हूं, कि उतथ्यकी अपेक्षा कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ है?

१५४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह राजा इतनी कथा सुनके चुप होरहा। अनन्तर वायुने कहा, हे महाराज! द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यका माहात्म्य सुनो। असुरोंके द्वारा पराजित देवगण निरुत्साह हुए थे, उनका यज्ञभाग और पितरोंका स्वधा मन्त्रके द्वारा प्रदत्त कव्यादि भी हृत हुआ था। हे हैहयश्रेष्ठ! ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्यका यज्ञकर्म्म नष्ट होनेसे देवगण ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होकर इस पृथ्वीतलमें विचरते थे, हे महाराज! अनन्तर किसी समय उन देवताओंने आदित्यसदृश तपस्वी प्रदीप्त विपुलव्रती तेजसे युक्त अगस्त्यको देखा। हे नरनाथ! वे लोग उस महात्मा अगस्त्यको प्रणामकरके कुशलप्रश्नके अनन्तर यह वचन बोले, हे मुनिपुङ्गव! हम लोग युद्धमें दानवोंके द्वारा पराजित तथा ऐश्वर्य्यभ्रष्ट हुए हैं, इसलिये आप हमें तीव्रभयसे परित्राण करिये। अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कुपित हुए और वह तेजस्वी प्रलयकालकी कालाग्नि सदृश प्रज्वलित होगये।

हे महाराज! उस समय सहस्रों दानवगण उस प्रदीप्त किरणजालसे एकबारही जलके

आकाशसे निपतित हुए। दैत्यगण अगस्त्यके तेजसे दह्यमान होकर भूलोक और स्वर्गलोक परित्याग करके दक्षिण दिशामें गये। बलि उस समय पृथ्वीतलमें अश्वमेध यज्ञ करता था, इसीसे वह और उसके अतिरिक्त जो सब महासुर नीचे तथा पृथ्वीतलमें थे, वे भस्म नहीं हुए। हे नृप! अनन्तर भय शान्त होनेपर देवताओंके द्वारा सब लोक फिर व्याप्त हुआ, तब देवताओंने फिर अगस्त्यसे कहा, आप भूमिमें रहनेवाले असुरोंका नाश करिये। हे राजन्! अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, मैं भूमिस्थ दानवोंको जलानेमें समर्थ नहीं हूं, क्यों कि उससे मेरी तपस्या नष्ट होनेकी सम्भावना है। हे राजन्! इस ही प्रकार पवित्रचित्तशाली अगस्त्यने निज तेजके सहारे दानवोंको जलाया था। हे अनघ! अगस्त्य ऐसे ही थे,—यह मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। अब मैं कहता हूं, अथवा तुमही कहो, क्या अगस्त्यको अपेक्षा क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? भीष्म बोले, राजा ऐसा प्रश्न सुनके चुप होरहा।

अनन्तर वायु बोले, हे महाराज! यशस्वी वशिष्ठके मुख्य कर्म सुनो। आदित्यगण मन ही मन वशिष्ठका गौरव जानके उनके समीप वैखानस नाम सरोवरपर जाके यज्ञ करते थे। पर्व्वतसदृश खलि नाम दानवोंने देवताओंको यजमान और यज्ञदीक्षासे कृश देखकर वध करनेकी इच्छा की। उन लोगोंके निकटमें ही ब्रह्मदत्त नाम तड़ाग था, दानवगण हताहत होके उस तड़ागमें स्नान करते ही जीवित होते थे; वे महाघोर पर्व्वत परिघ और वृक्षोंको लेकर एक सौ योजन समुत्थित जलको आन्दोलित करते थे। अनन्तर दश हजार दानव देवताओंकी ओर दौड़े, देवगण दानवोंसे पीड़ित होके देवराजके शरणागत हुए; देवराज देवताओंके दुःखसे पीड़ित होकर वशिष्ठके शरणमें गये। अनन्तर भगवान् वशिष्ठ ऋषिने उन लोगोंको अभय दिया, अनृशंसता परायण मुनिने उस समय देवताओंका दुःखित जानके निज तेज प्रभावसे सहजहीमें उन खलि नामक दानवोंको जला दिया। महातपस्वी वशिष्ठ कैलाशपर्व्वतसे चलनेवाली गङ्गा नदीको उस दिव्य सरोवरमें लिवा लाये, तब वह तड़ाग गङ्गामें मिल गया, गङ्गासे मिलकर उस सरोवरका सरयू नाम हुआ। जिस स्थानमें खलि दानवगण मारे गये थे, उस देशका खलिन नाम हुआ। इस ही प्रकार इन्द्रके सहित सब देवताओंकी वशिष्ठ मुनिने रक्षा की थी और ब्रह्मदत्त वरदीप्त दैत्योंका महात्मा वशिष्ठके द्वारा नाश हुआ। हे अनघ! यह मैंने तुमसे वशिष्ठका माहात्म्य कहा, मैं कहता हूं तथा तुम ही कहो, क्या वशिष्ठसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं?

१५५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनने इतनी कथा सुनके मौनावलम्बन किया था। अनन्तर वायु उससे कहने लगे। हे हैहयश्रेष्ठ! मेरे समीप महात्मा अत्रिका कर्म सुनो। देवता और दानवगण घोर अन्धकारके बीच इकट्ठे होकर युद्ध करते थे, उस युद्धमें राहुने बाणसे सूर्य्य और चन्द्रमाको बिद्ध किया। हे नृपश्रेष्ठ! अनन्तर अन्धकारसे ग्रस्त देवगण उस समय बलवान दानवोंसे मारे जाने लगे। देवताओंने असुरदलसे वध्यमान तथा क्षीणबल होकर तपस्वी अत्रि नाम ब्राह्मणको तपस्या करते देखा। अनन्तर देवगण उस शान्त जितेन्द्रिय अत्रिसे बोले, हम दोनों सूर्य्य और चन्द्रमा हैं, दानवोंने बाणोंसे हमें बिद्ध किया है, हम लोग अन्धकारयुक्त स्थानमें शत्रुओंके द्वारा व्यथित होते हैं, शान्ति लाभ नहीं कर सकते। हे प्रभु! इसलिये आप हम लोगोंका भयसे परित्राण करिये। ऋषिने कहा, मैं किस प्रकार आप लोगोंकी रक्षा करूंगा?

देवगण बोले, आप चन्द्रमा और अन्धकार-नाशक सूर्य्य होकर हमारे शत्रुओंका नाश करिये। अत्रि देवताओंका ऐसा बचन सुनके उस समय तमानुद शशी हुए और सौम्यभावसे चन्द्रमाकी भांति प्रिय दीखने लगे। हे महाराज! उस समय अत्रिने सूर्य्य और चन्द्रमाको प्रभायुक्त न देखकर निज तेजसे रणभूमिको प्रकाशित किया, जगत् अन्धकाररहित और प्रकाशमान हुआ। उन्होंने निज तेजके सहारे देवताओंके शत्रुओंको जय किया, देवगण महाघोर बिकराल असुरोंको अत्रिके द्वारा दह्यमान देखकर आप भी उनसे रक्षित होकर दानवोंसे युद्ध करने लगे। अनन्तर सूर्य्य उदय होनेसे देवताओंका परित्राण हुआ और दानवगण मारे गये, अत्यन्त तेजस्वी अत्रिने दानवोंको सामर्थ्य हरण की। हे राजर्षि! द्वितीय अग्निसदृश मृगचर्म्म धारी जपपरायण फल खानेवाले अत्रिने जो कार्य्य किया था, उसे अवलोकन करो। मैंने महात्मा अत्रिके कार्य्यको बिस्तारपूर्व्वक कहा, अब मैं कहता हूं, वा तुम्हीं बताओ, क्या अत्रिसे भी क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? अर्जुन ऐसा बचन सुनके चुप होरहा।

अनन्तर वायु बोले, हे राजन्! महात्मा च्यवनका महत् कर्म्म सुनो। च्यवन मुनि दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट प्रतिश्रुत होकर देवताओंके सहित इन्द्रसे बोले, इन दोनों वैद्योंको सोमपान कराओ। इन्द्र बोले, हमने इन्हें परित्याग किया है, इसलिये ये लोग किस प्रकार सोमपान कर सकते हैं? देववृन्द इनकी प्रशंसा नहीं करते, इसलिये आप हमसे ऐसा बचन न कहिये। हे महाव्रत बिप्रवर! हम लोग दोनों अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान करनेकी इच्छा नहीं करते, आप और जो कुछ कहें, उसे हम प्रतिपालन करेंगे।

च्यवन मुनि बोले, दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे सङ्ग सोमपान करेंगे; हे सुरेश्वर! ये दोनों अमर और सूर्य्यके पुत्र हैं। हे देवगण! मैंने जैसा कहा, उसे प्रतिपालन करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, नहीं तो तुम लोगोंके बिषयमें अमङ्गल होगा।

इन्द्र बोले, हे द्विजवर! हम अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान न करेंगे। जिनकी इच्छा हो, वे पीयें; किन्तु मैं इनके सङ्ग सोमपान करनेका उत्साह नहीं करता।

च्यवन बोले, हे बलसूदन! यदि तुम मेरी बात न मानोगे, तो यज्ञमें मेरे द्वारा प्रमथित होके उस ही समय सोमपान करोगे।

वायु बोले, अनन्तर अश्विनीकुमारोंके हितके निमित्त च्यवनने सहसा यज्ञकर्म्म आरम्भ किया। उनके मन्त्रसे देवछन्द अभिभूत हुए, इन्द्रने उस कर्म्मको आरम्भ हुआ देखके बज्रके सहित बिपुल पर्व्वत उठाके क्रोधपूर्व्वक च्यवनकी ओर दौड़े। तपस्वी भगवान् च्यवनने इन्द्रको आते हुए देखकर क्रोधपूर्व्वक जल छिड़कके बज्र और पर्व्वतके सहित उन्हें स्तम्भित कर दिया। महामुनि च्यवनने आहुतिमय एक मुख बाये हुए महाघोर मद नाम पुरुषको इन्द्रका शत्रु बनाके उत्पन्न किया। उसके सहस्र दांत एक सौ योजन लम्बे थे और उसके परम दारुण दांत दो सौ योजनके बीच व्याप्त थे। उसका एक ओठ भूमि और दूसरा आकाशमण्डलमें जा लगा। जैसे समुद्रमें सब मछलियें तिमिके मुखमें समा जाती हैं, वैसे ही इन्द्रके सहित सब देवता उसके जिह्वामूलमें स्थित हुए अनन्तर देवताओंने आपसमें बिचार करके मदके समीप जाकर देवराजसे कहा, इस द्विजवरको प्रणाम करो; हम लोग प्रसन्न होकर दोनों अश्विनीकुमारोंके सङ्ग सोमपान करेंगे। अनन्तर इन्द्रने प्रणत होके च्यवनका बचन प्रतिपालन किया; च्यवन मुनिने दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया। अनन्तर मुनिश्रेष्ठ बीर्य्यवान च्यवनने कर्म्म प्रत्याहरण किया

और जूआ, मृगया, मद्यपान तथा स्त्रियोंमें मदको बिभाग कर दिया। हे राजन्! मनुष्योंका निःसन्देह इन्हीं दोषोंसे नाश होता है, इसलिये मनुष्य इन दोषोंको एकबारगी परित्याग करे। हे महाराज! यह च्यवनके कर्म्म तुम्हारे समीप वर्णित हुए। मैं कहता हूं; तथा तुम ही कहो, क्या ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं?

१५६ अध्याय समाप्त।

———

भीष्म बोले, अर्ज्जुनके चुप हो रहनेपर पवनने उससे फिर कहा, हे जननाथ! ब्राह्मणोंके जो मुख्यकर्म्म हैं, वह सब मेरे मुखसे सुनो। जब इन्द्रादि देवता मदके मुखके भीतर चले गये तब च्यवनने उनकी भूमि हरण की। दोनों लोक हरे जानेपर महानुभाव देवगण अत्यन्त दुःखित और शोकार्त्त होकर ब्रह्माके शरणागत हुए। देवगण बोले, हे लोकपूजित! जब हम लोग मदके मुखके भीतर थे, उस समयमें च्यवन मुनिने हमारी भूमि हर ली और रूप नामक दानवोंने स्वर्गलोक हर लिया।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्रादि देवगण! तुम लोग शीघ्र ही ब्राह्मणोंके शरणमें जाओ, उन्हें प्रसन्न करनेसे पहलेकी भांति तुम लोग दोनों लोकोंको पाओगे। अनन्तर इन्द्रके सहित सब देवता ब्राह्मणोंके शरणागत हुए।

ब्राह्मणगण बोले, हम किसे जय करें? देववृन्द ब्राह्मणोंका ऐसा वचन सुनके बोले, इस समय आप लोग रूपनाम दैत्योंको जीतिये, द्विजगण बोले, हम भूमिगत दैत्योंको जीतनेमें समर्थ हैं। अनन्तर ब्राह्मणोंने रूपनाशन कर्म्म आरम्भ किया, रूपगणने यह वृत्तान्त सुनके धनी नाम दूतको उनके समीप भेजा। धनी उस समय भूलोकनिवासी ब्राह्मणोंसे रूपका कहा हुआ वचन कहने लगा। "रूपगण आप लोगोंके सदृश हैं, इसलिये इस समय यह क्या होरहा है? वे सभी वेद जाननेवाले प्राज्ञ हैं, सभी यज्ञ करनेवाले, सब कोई सत्यव्रती और सभी महर्षियोंके तुल्य हैं, उनमें सदा श्री निवास करती है, वेभी श्रीको धारण करते तथा स्त्रीगमन नहीं करते, तथा मांस भक्षण नहीं करते, जलती हुई अग्निमें होम करते हैं, गुरुवचनके वशीभूत रहते हैं, सभी नियतचित्तवाले हैं, बालकोंको खानेकी वस्तु बिभाग करके देते हैं। वे लोग धीरे धीरे गमन करते हैं, रजस्वलाकी सेवा नहीं करते, स्वर्गमें गति लाभ करते तथा वे लोग शुभ कर्म्मशाली हैं। गर्भिणी तथा वृद्धोंके भूखे रहते, वे लोग भोजन नहीं करते, पूर्व्वाह्नमें क्रीड़ा नहीं करते और दिनमें शयन नहीं करते"—इन सब गुणों तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे गुणोंसे युक्त रूपगणको तुम क्यों जय करोगे, इस कार्य्यसे निवृत्त हो जाओ निवृत्त होनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा।

ब्राह्मणोंने कहा, हम लोग रूपगणको जीतेंगे, देवताओंके सहित हम लोग अभिन्नभावसे स्मृत हुए हैं, इसलिये रूपगण हमारे बध्य हैं। हे धनी! तुम जिस स्थानसे आये हो, वहांही जाओ। धनी रूपगणके समीप जाके बोला, ब्राह्मण लोग तुम्हारे प्रियङ्कर नहीं हैं, ऐसा सुनकर रूपगण अस्त्र लेकर ब्राह्मणोंकी ओर दौड़े। ब्राह्मणोंने रूपगणको ऊंची ध्वजाके सहित आते हुए देखकर उनके प्राणनाशके निमित्त जलती हुई अग्नि चलाई। हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी चलाई हुई अग्नि रूपगणका नाश करके आकाश मण्डलमें बादलोंकी भांति बिराजमान हुई। देवता लोग इकट्ठे होकर युद्धमें दानवोंके दलका संहार करके ब्राह्मणोंके द्वारा रूपगणके मारे जानेका वृत्तान्त न जान सके। हे बिभु! अनन्तर महातेजस्वी नारद मुनि आके बोले, महाभाग ब्राह्मणोंके तेजसे रूपगण मारे गये। नारदमुनिका बचन सुनके सब देवता प्रसन्न हुए और यशस्वी ब्राह्मणों तथा द्विजगणोंकी प्रशंसा करने लगे अनन्तर

देवताओंके तेज और वीर्य्यकी वृद्धि हुई और उन्होंने तीनों लोकोंमें पूजित होकर अमरत्व लाभ किया। हे महाबाहो नरनाथ! जब पवनने इतनी कथा कही, तब अर्ज्जुनने उनकी पूजा करके जो उत्तर दिया उसे सुनो।

अर्ज्जुन बोले, हे प्रभु! मैं सब प्रकारसे सदा ब्राह्मणोंके निमित्त जीवित हूं, मैं व्रतनिष्ठ होकर ब्राह्मणोंको प्रतिदिन प्रणाम किया करता हूं। दत्तात्रेयके प्रसादसे मैंने यह बल पाया है और इस लोकमें मेरी परम कीर्त्ति हुई है तथा मैंने महत्कर्म्म किया है। हे मारुत! तुमने जो ब्राह्मणोंके अद्भुत कर्म्म वर्णन किये, उसे मैंने सावधान होकर सुना है।

वायु बोले, तुम ब्राह्मणों और इन्द्रियोंको क्षत्रधर्म्मके अनुसार पालन करो, समयके अनुसार भृगुवंशसे तुम्हें घोर भय प्राप्त होगा।

१५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे जननाथ! आप संशितव्रती ब्राह्मणोंकी सदा अर्च्चना करते हैं, परन्तु कौनसा फलोदय देखके उनकी पूजा किया करते हैं? हे महाव्रत महाबाहो! ब्राह्मणपूजासे क्या फल दीखता है, जिससे आप उन लोगोंकी अर्च्चना करते हैं। यह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, ब्राह्मणपूजाके फलदर्शी ये महाव्रत महाबुद्धिमान केशव तुमसे समस्त फलका विषय कहेंगे। आज मेरा बल, दोनों कान, वचन, मन, दोनों नेत्र और ज्ञान विशुद्ध नहीं है; जान पड़ता है शरीर त्यागमें अब अधिक विलम्ब नहीं है; सूर्य्य भी शीघ्र प्रयाण नहीं करता है। हे राजन्! पुराणोंके बीच ब्राह्मण; क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके जो महत् धर्म्म वर्णित है, और वे लोग जिस धर्म्मकी उपासना करते हैं, उसका शेषभाग कृष्णके निकट सीखो। मैं हो इस कृष्णको यथार्थ रीतिसे जानता हूं, इनका स्वरूप तथा इनका पुराणबल मुझे अविदित नहीं है। हे कौरवेन्द्र! केशव अमेयात्मा हैं, इसलिये येही सन्देहके स्थलमें धर्म्मका वर्णन करेंगे। कृष्णने ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है; कृष्णके देहसे ही महिमण्डलकी उत्पत्ति हुई है, येही भीमबल पुराण बराह हैं; इन्होंने ही पर्व्वतों तथा सब दिशाओंको उत्पन्न किया है। येही पाताल, आकाश, सुरपुर, चारों दिशा तथा चारों विदिशामें व्याप्त हैं, यह सृष्टि इन्हींसे प्रकट हुई है, इन्होंने ही इस दृश्यमान पुरातन जगत्‌को उत्पन्न किया है; इन्हींकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जिससे अत्यन्त तेजस्वी स्वयं हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। हे पार्थ! जिन्होंने घोर अन्धकारको दूर किया है, वेही अतलस्पर्शी अपार समुद्रमें निवास कर रहे हैं। सत्ययुगमें पूरा धर्म्म था, त्रेतायुगमें विवेक प्रबल हुआ था, द्वापर युगमें बलकी प्रधानता थी। हे पार्थ! कलिकालमें पृथ्वीपर अधर्म्म आया है। इस कृष्णने ही पहले दैत्योंको मारा, येही पहले देव और सम्राट् हुए थे, येही सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण हैं, यही भूत-भविष्यत और येही समस्त जगत्‌के रक्षाकर्त्ता हैं। जिस समय असुरवंशमें धर्म्म ग्लानियुक्त होता है, उस समय कृष्ण मनुष्यलोकमें अवतार लेते हैं। येही विशुद्धस्वभाववाले भगवान् धर्म्ममें स्थित रहके परापर लोकोंकी रक्षा किया करते हैं। हे पार्थ! ये असुरोंके बधके निमित्त त्याज्य पुरुषोंका परित्याग किया करते हैं। यह देव ही कार्य्य, अकार्य्य, कारण, कृत, भविष्यत और क्रियमाण है; इसे ही राहु, चन्द्रमा तथा इन्द्र जानो, येही विश्वकर्म्मा, येही विश्वरूप, येही विश्वभुक्, येही विश्वसृष्टा और येही विश्वजित् हैं; येही शूलधारी शरीरधारी कराल हैं; कर्म्मके द्वारा विदित होनेवाले इस देवकी सब कोई स्तुति किया करते हैं। गन्धर्व्व, अप्सरा

और सैकड़ों देवता सदा इनकी उपासना करते हैं, राक्षसगण इन्हींका कीर्त्तन किया करते हैं, येही एक मात्र धनपोषक और विजिगीषु हैं। यज्ञमें उद्गातृगण इनकी स्तुति करते हैं, साम-गान करनेवाले रथन्तर सामके सहारे इनकी स्तुति किया करते हैं, ब्राह्मण लोग ब्रह्ममन्त्रसे इनका स्तव करते हैं, अध्वर्य्युगण इन्हींके उद्देशसे हवि प्रदान किया करते हैं। गोवर्द्धन पर्व्वत धारण करनेके समय इन्द्रादि देवताओंने वाणीके सहारे इनकी स्तुति की थी।

हे भारत! अकेले येही समस्त जीवों तथा पशुओंके नियन्ता हैं, येही पुरातनी गुहाके बीच-प्रविष्ट ब्रह्म हैं। हे भरतकुलप्रदीप! इन्होंने ही पहले पृथिवीका छादन और मज्जन दर्शन किया है। येही श्रेष्ठ कर्म्मशील पुरुष दैत्य और असुरोंको विक्षोभित करके पृथ्वीका उद्धार करता है। पण्डित लोग इनका विविध भक्ष्य निर्देश करते और इन्हें युद्धमें जय प्रापक कहा करते हैं। आकाश, पृथ्वी और स्वर्गादि इनके वशमें हैं; इन्होंने ही मित्रावरुणको रेत-कुम्भसे उत्पन्न किया, जिसमें उत्पन्न हुए ऋषिको लोग वसिष्ठ कहा करते हैं। येही सर्व्वव्यापी मातरिश्वा वेगवान् अश्व हैं, येही किरणधारी सूर्य्य और आदि देव हैं; इन्हींके द्वारा सब असुर पराजित हुए हैं; इन्होंने ही त्रिपाद विक्षेपसे त्रिभुवन जय किया है। येही देवताओं, मनुष्यों और पितरोंके आश्रय हैं। पण्डित लोग इन्हें ही यज्ञवित् पुरुषोंका यज्ञ कहा करते हैं। येही कालका विभाग करके उदित होते हैं, इनकी दक्षिण और उत्तर, दोनों गतिकी अयन कहा जाता है। इनकी समस्त किरण मेदिनीमण्डलको प्रकाशित करती हुई, ऊपर नीचे और तिर्य्यक्प्रदेशमें विचरती हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मण लोग इनकी ही सेवा किया करते हैं; सूर्य्य इनकी ही प्रभाको पाके प्रकाशित होता है। यज्ञकारी होकर प्रतिमासमें यज्ञका विधान करते हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मणगण यज्ञमें इन्हींकी स्तुति किया करते हैं। ये सर्दी, गर्म्मी, वर्षाका समय, गर्भ त्रिनाभियुक्त सम्वत्सर चक्ररूपसे वर्णित होके सप्ताश्वयुक्त वर्षा-वात उष्ण-प्रकार तीनों धाम वहन करते हैं। येही महातेजस्वी सब भांतिसे सब लोकोंकी हिंसा करते हैं, पापोंको आकर्षण करनेसे इनका कृष्ण नाम हुआ है; ये अकेले ही सब लोकोंको धारण किये हुए हैं। हे वीरवर पार्थ! ये ही सूर्य्य रूपसे अन्धकारका नाश करते हैं, इसलिये इस कृष्णको ही तुम कर्त्ता जानके इनका आदरा करो। जिस महात्माने किसी समयमें कक्षगत सर्व्व शक्तिमान् नित्य-सन्तुष्ट धूमकेतुरूपसे खाण्डववनमें राक्षसों और उरगोंको पराजित करके सर्व्वत्रगामी होकर अग्निमें सब आहुति प्रदान की थी, उसीने धनञ्जयको सफेद घोड़े प्रदान किये हैं; उसहीने घोड़ों तथा अन्य समस्त जीवोंकी सृष्टि की है। वही संसार-रथको योजना करनेवाला है। ऊर्द्ध, मध्य और अधः लोकोंमें उसके रथकी गति हुआ करती है; इसलिये उसका रथ त्रिचक्र और त्रिवृत-शिरा नामसे विख्यात है। काल, अदृष्ट, ईश्व-रेच्छा और सङ्कल्प ये चारों उसके रथके घोड़े हैं। श्वेत कृष्ण और शुक्लकृष्ण मिश्रित त्रिविध-धर्म्मगर्भ है, इसलिये त्रिनाभि और वही पञ्च-भूतोंका अवलम्ब है, इसलिये पद्मनाभि कहाता है। उसने ही पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्षकी सृष्टि की है, उसीने वन पर्व्वतोंको उत्पन्न किया है। वह विषयेन्द्रियोंका नियन्ता है, इसलिये हृषीकेश कहाता है और वही अपरिमित प्रदीप्त अग्निसदृश तेजस्वी है। उसने ही नदियोंकी जिघांसा करते हुए उन्हें लङ्घन किया था; वज्र प्रहार करनेके लिये उद्यत देवराजको पराजित किया था; एक मात्र वही यज्ञमें महेन्द्ररूपसे ब्राह्मणोंके द्वारा पुरातन

ऋग्वेदके सहस्र मन्त्रोंसे स्तुतियुक्त हुआ करता है। हे राजन्! महातेजस्वी दुर्व्वासाको गृहमें निवास करानेके लिये इनके अतिरिक्त और कोई भी समर्थ न हुआ। पण्डित लोग उन्हें ही एक मात्र पुरातन ऋषि कहा करते हैं, वही विश्वकर्त्ता है, वही अपने सहारे सब जीवोंका विधान करता है। जो देवाधिदेव होकर वेदोंको स्थापन करता है, वही अग्निहोत्र प्रभृतिका आश्रय करता है। पुरातन विधि, काम, वेद और लौकिकमें जो कुछ फल होते हैं, विश्वक्सेन नारायणको ही फलस्वरूप जानना चाहिये। सब लोकोंमें जो सब शुक्लवर्ण ज्योतिके पदार्थ हैं, तीनोंलोक तीनोंलोकपाल तीनोंअग्नि, तीनों व्याहृति और समस्त देवगण देवकीनन्दनस्वरूप हैं। वेही सम्वत्सर, वेही ऋतु, वेही पक्ष, वेही अहोरात्र हैं; वेही कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त्त, लव और क्षण हैं,—यह सब विश्वक्सेनका ही स्वरूप जानो। हे पार्थ! चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सब पर्व्व, पौर्णमास, नक्षत्रयोग और ऋतु,—ये सब विश्वक्सेन नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार साध्यगण, विश्वगण, मरुद्गण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि कृष्णसे ही उत्पन्न हुए हैं। वही विश्वरूप वायु होकर जगतको विक्षिप्त कर रहा है, वही अग्नि होकर जगतको जलाता है, वही जल होके सबको डुबाता है और ब्रह्मा होके सबको सृष्टि करता है। वही वेद-प्रतिपाद्य वेदवस्तुओंका बोध कराता है और विधि होकर वेद तथा विधेय विषयोंका आश्रय करता है। धर्म्म, वेद, बल तथा चराचरात्मक सब विषयोंको ही केशवस्वरूप जानो। जिसको प्रभाके सहारे यह परम ज्योतिस्वरूप पूर्व्व दिशामें प्रकाशित है, उस सर्व्व-भूतात्मा विश्वरूपने पहले जलकी सृष्टि करके अनन्तर सम विश्व निर्म्माण किया है। सब ऋतु, उत्पात, विविध अद्भुत विषय, मेघमण्डल, बिजली ऐरावत और स्थावर जङ्गम सबकोही विश्वात्मा विष्णु जानो। पण्डित लोग उसी विश्वावास, निर्गुण, वासुदेव, सङ्कर्षण और जीवस्वरूप कहते हैं, उससे प्रद्युम्न और चौथा अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार उत्पन्न होता है। वह आत्मयोनि महात्माही देव, असुर, मनुष्य, श्वापद और तिर्य्यक,—इन पांचों रूपसे पञ्चजनोत्पन्न पञ्चभूतयुक्त जगतकी सृष्टि करनेके लिये अभिलाषी होकर आज्ञा प्रचार किया करता है। हे पार्थ! अनन्तर वह पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि और जलकी सृष्टि करता है, वह इस स्थावर जङ्गमात्मक-चतुर्व्विध लोकोंको सृष्टिकरता और अन्तरिक्ष तथा भूमितलमें भूरिवारि स्थापित करता है। हे राजन्! उसने ही इस विश्वको बनाया है, वह आत्मयोनि स्वयं ही सबको जीवित रखता है। अनन्तर वह भूपति सुरासुर मनुष्यलोक, ऋषिगण, पितृगण, प्रजासमूह तथा प्राणियोंको संक्षेप रीतिसे विधिपूर्व्वक उत्पन्न करनेका अभिलाषी होकर शुभाशुभ स्थावर और जङ्गमोंकी सृष्टि करता है, इस लिये जानना चाहिये कि विश्वक्सेनसे सब कोई उत्पन्न हुए हैं। जो वर्त्तमान है, जो होगा, तुम वह सब इस केशवको ही जानो। शाश्वत धर्म्मबाही कृष्ण ही प्राणियोंके अन्तकालमें साक्षात् मृत्युस्वरूप हैं। इस लोकमें जो कुछ अतीत हुआ तथा जो विषय हम लोगोंको मालूम नहीं हैं, उन सबको भी विश्वक्सेन नारायण जानो। लोकमें जो कुछ प्रसस्त अथवा जो कुछ शुभ अशुभ अचिन्तनीय विषय हैं, वे सब केशवके ही रूप हैं; जो उससे भिन्न है, वही विपरीत है। केशवका ऐसा ही प्रभाव है, इसही निमित्त ये नारायण परम अव्यय हैं, वेही जगतको आदि, मध्य और अन्तमें निवास करते हैं। येही जगतको उत्पत्तिके कारण हैं, इनका विनाश नहीं है; इन्हें जाननेकी इच्छा करो।

१५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है, उसे तुम वर्णन करो, तुम ही इस विषयके जाननेवाले हो और पितामह तुम्हें विशेष रीतिसे जानते हैं।

बासुदेव बोले, हे कुरुसत्तम भरतकुलधुरन्धर महाराज ! मैं यथार्थ रीतिसे ब्राह्मणोंके गुणोंको वर्णन करता हूं, तुम सावधान होकर सुनो। हे कुरुनन्दन ! पहले द्वारकानगरमें मेरे बैठे रहनेपर प्रद्युम्नने ब्राह्मणोंके द्वारा प्रकोपित होकर मुझसे पूछा, हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है और इस लोक तथा परलोकमें किस निमित्त उनका ईश्वरत्व हुआ है ? हे मानद ! सर्व्वदा द्विजातियोंकी पूजा करनेसे क्या फल है ? आप स्पष्ट रीतिसे मेरे समीप उसका उपदेश करिये ; इस विषयमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। हे महाराज ! जब प्रद्युम्नने ऐसा कहा, तब मैंने उन्हें जो उत्तर दिया था, उसे सावधान होके सुनो। हे रुक्मिणीनन्दन ! ब्राह्मणोंकी पूजाका फल मेरे समीप सुनो। त्रिवर्ग, अपवर्ग, यश, श्री और रोगशान्तिविषयमें देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करनेके समयमें ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना हम लोगोंका कर्त्तव्य कार्य्य है। हे रुक्मिणीपुत्र ! ये सोमराज हैं, येही इस लोक और परलोकमें सुख-दुःखके ईश्वर हैं ; ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति अतिकल्याणी है, इस विषयमें मैं विचार नहीं करता। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे आयु, कीर्त्ति, यश और बलकी वृद्धि होती है, जो लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे लोकेश्वर होते हैं। हे पुत्र ! मैं ईश्वर होके भी किस हेतु ब्राह्मणोंका समादर न करूंगा ? हे महाबाहो ! द्विजोंके विषयमें तुम्हें मन्यु न होवे। इस लोक और परलोकमें ब्राह्मण ही महाप्राणी हैं, प्रत्यक्षदर्शी ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होनेसे इस जगतको भस्म कर सकते हैं, और दूसरे लोकों तथा लोकेश्वरोंकी सृष्टि भी कर सकते हैं। जिनमें पूर्ण ज्ञान और सुन्दर तेज है, ब्राह्मणोंके अधीनमें क्यों न वर्त्तमान रहेंगे। हे तात ! मेरे गृहमें चीरवासा बेलका दण्ड धारण करनेवाला दीर्घश्मश्रु, अत्यन्त कृश पिङ्गलवर्ण एक ब्राह्मण वास करता था। भूलोकमें जो सब दीर्घ मनुष्य हैं, वह उन सबसे अधिक दीर्घ था ; वह मनुष्यलोक तथा समस्त दिव्य लोकोंमें विचरता था, वह चत्वर और सभाके बीच यह गाथा गाता था, कि 'दुर्व्वासा ब्राह्मणको सत्कारपूर्व्वक कौन गृहमें बास करा सकता है अल्प अपराध करनेपर भी मैं सर्व्वभूतोंके विषयमें रोष प्रकाश किया करता हूं, मेरा वचन सुनके कौन मुझे आश्रय देगा ? जो कोई मुझे गृहमें बास करावेगा, वह मुझे प्रकोपित न कर सकेगा'। दुर्व्वासा ब्राह्मणके ऐसी कथा प्रचार करते रहनेपर जब किसीने भी उनका आदर न किया ; तब मैंने उन्हें निज गृहमें बास कराया। उन्होंने एक ही बार सहस्र लोगों तथा उससे भी अधिक लोगोंका अन्न भोजन किया, किसी बार थोड़ा ही भोजन किया ; पुनर्व्वार गृहमें न आये। सहसा हंसे कभी अकस्मात रोदन करनेमें प्रवृत्त हुए। उस समय पृथ्वीपर उनके तुल्य अवस्थावाला पुरुष न था।

अनन्तर उन्होंने आश्रममें जाके बिछाई हुई शय्या और अलंकृत कन्याओंको जलाकर वहांसे प्रस्थान किया। अन्तमें वह संशितव्रती मुनि मुझसे फिर बोले, हे कृष्ण ! मैं शीघ्र ही पायस भोजन करनेकी इच्छा करता हूं। मैं उनका मन जानता था, इसलिये पहलेसे ही परिजनोंको सब अन्न पान तथा अनेक प्रकारकी भक्ष्यवस्तु तय्यार रखनेको कहा था। अनन्तर मैंने उन्हें उष्ण पायस प्रदान किया, वह शीघ्र ही उसे भोजन करके बोले, मेरे सारे शरीरमें पायस लगाओ। मैंने उनके वचनमें कुछ भी विचार न करके वैसा ही किया ; वह जूठा पायस उनके शरीर और मस्तकमें लगा

दिया, उन्होंने उस समय तुम्हारी शुभानना जननीको देखा और हंसके उसके शरीरमें भी पायस लगाया, उस समय मुनिने पायस-लिप्ताङ्गी तुम्हारी माताको शीघ्र ही रथमें योजना किया और उस रथपर चढ़के मेरे गृहसे बाहिर हुए, उस जलते हुए अग्निवर्ण रथ ध्वथ्यवत धीमान् ब्राह्मणने मेरे सम्मुखमें ही बालिका रुक्मिणीको कोड़ेसे मारा। उस समय मुझे ईर्षाजनित अल्पमात्र भी दुःख न हुआ, वह प्रशस्त राजपथके द्वारा बाहर निकले।

दाशार्हगण उस महत् आश्चर्यको देखकर क्रुद्ध हुए, उनके बीच कोई कोई आपसमें वार्त्तालाप करते हुए जल्पना करने लगे, कि ब्राह्मणगण ही यथार्थमें जन्म ग्रहण करते हैं; अन्य वर्ण किसी प्रकारसे पुरुष ही नहीं हैं। दूसरा कौन पुरुष इस रथपर चढ़के जीवित रहनेमें समर्थ होगा? आशीविष सर्पका विष तीक्ष्ण है, ब्राह्मण उससे भी अधिक तीक्ष्ण है; जो पुरुष ब्राह्मण रूपी विषसे जलता है, उसका कोई चिकित्सक नहीं है। उस दुर्द्धर्ष दुर्व्वासाके गमन करते रहनेपर मार्गमें रुक्मिणी शिथिल होगई, श्रीमान् मुनिने उस विषयमें क्रुद्ध होकर वेगपूर्व्वक रथको चलाया। अनन्तर वह द्विजवर अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथसे उतरके पादचारी हुए और दक्षिणकी ओर उद्धमार्गसे दौड़े। उनके उद्धमार्गसे दौड़नेपर मैंने उस द्विजवरका अनुधावन किया और उस ही भांति पायस लिप्त रहके उनसे कहा,—हे 'भगवन्! प्रसन्न होइये।' अनन्तर उस तेजस्वी ब्राह्मणने मुझे देखकर कहा, हे महाभुज कृष्ण! तुमने स्वभावसे क्रोधका जय किया है। हे सुव्रत! इस विषयमें मैंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं देखा। हे गोविन्द! इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो। हे तात! मेरे प्रसन्न होनेसे जो फल होता है, उसे विधिपूर्व्वक देखो। जबतक मनुष्योंकी अन्नमें अभिलाष रहेगी, तबतक लोकके बीच तुम्हारे पुण्यका वर्णन होगा; उतने समयतक तीनों लोकोंके बीच तुम्हें विशिष्टता प्राप्त होगी। हे जनार्द्दन! तुम सब लोकोंमें अत्यन्त ही प्रिय होगे; तुम्हारा जो कुछ टूटा, जला वा नष्ट हुआ है, उन सब वस्तुओंको तुम वैसी ही तथा उससे भी उत्कृष्ट देखोगे। हे मधुसूदन! हे अच्युत! तुम्हारे शरीरमें जितने परिमाणसे पायस लिप्त हुआ है, तुम जबतक इच्छा करो इसके सहारे तुम्हें मृत्युका भय नहीं है। हे वत्स! तुम्हारे दोनों पदतल किस हेतु लिप्त नहीं हुए इस वचनका उत्तर मुझे प्रिय नहीं है। उन्होंने प्रसन्न होकर उस समय मुझसे ऐसा ही वचन कहा था। जब उन्होंने ऐसा कहा, तब मैंने अपने शरीरको श्रीसम्पन्न देखा।

अनन्तर वह प्रसन्न होके रुक्मिणीसे बोले, हे सुन्दरी! लोकके बीच तुम सब स्त्रियोंसे श्रेष्ठ यश और कीर्त्तिलाभ करोगी। हे भाविनि! तुम्हें जरा, समस्त रोग अथवा वैवर्ण्य स्पर्श न कर सकेगा। तुम पवित्र सुगन्धयुक्त होकर कृष्णकी आराधना करोगी। केशवकी सोलह हजार स्त्रियोंके बीच तुम वरिष्ठा होगी और कृष्णके तुल्य लोकोंमें निवास करोगी।

हे पुत्र! प्रस्थान करनेमें उद्यत महातेजस्वी दुर्व्वासाने अग्निकी भांति महाप्रज्वलित होके तुम्हारी मातासे इतनी बात कहके मुझसे फिर कहा। हे केशव! ब्राह्मणोंके विषयमें तुम्हारी ऐसी ही बुद्धि रहे। वह विप्रवर उस समय इतनी कथा कहके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। उनके अन्तर्द्धान होनेपर मैंने उपांशु व्रताचरण किया, ब्राह्मण लोग जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारी माताके सहित मैंने यही व्रत करके अन्तमें परम हृष्टचित्तसे गृहमें प्रवेश किया। हे पुत्र! अनन्तर निज भवनमें प्रविष्ट होकर उस विप्रके द्वारा जो कुछ

भिन्न वा भस्म हुआ था उन सबको मैंने नूतन देखा। हे रुक्मिणीनन्दन! मैं सब वस्तुओंको नवीन तथा दृढ़ देखके विस्मित हुआ और सदा ब्राह्मणोंकी मनहोमन पूजा करने लगा। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय रुक्मिणीपुत्रके पूछनेपर मैंने श्रेष्ठ विप्रका यही सब माहात्म्य कहा था। हे प्रभु कुन्तीनन्दन! आप भी महाभाग ब्राह्मणोंकी सदा धन और गौओंके सहारे पूजा करिये, मैंने ब्राह्मणोंके प्रसादसे ही इस प्रकार फल पाया है। हे भरतर्षभ! भीष्मने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है।

१५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन! दुर्व्वासाके प्रसादसे उस समय तुम्हें जो विज्ञान प्राप्त हुआ था मेरे समीप तुम्हें उसको व्याख्या करनी योग्य है। हे मतिमतप्रवर! उस महात्माके महत् भाग्य और नामोंको जाननेकी अभिलाष करता हूं।

बासुदेव बोले, हे महाराज! अच्छा मैंने जो कुछ कल्याण लाभ तथा यश उपार्ज्जन किया है, कपर्द्दीको नमस्कार करके वह सब विषय आपके समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! मैं प्रातःकालमें उठकर प्रयत तथा प्राञ्जलि होकर जो अध्ययन किया करता हूं, वह शतरुद्रीय आपके निकट कहता हूं, सुनिये। हे तात! महातपस्वी प्रजापतिने तपस्याको समाप्तिमें उसे रचा है, शङ्करने इस स्थानपर जङ्गममय समस्त प्रजाकी सृष्टि की है। हे नरनाथ! महादेवसे श्रेष्ठ कोई प्राणी नहीं है, इस त्रिभुवनके बीच वह सब प्राणियोंके बीच श्रेष्ठ हैं; उस महात्माके आगे कोई भी निवास करनेका उत्साह नहीं कर सकता, तीनों लोकोंके बीच उनके समान कोई भी विद्यमान नहीं है, उनके क्रुद्ध होनेपर संग्राममें शत्रुगण उनकी गन्धके द्वाराही संज्ञा रहित तथा बहुतेरे हत होकर कांपते वा गिरते हैं। बादल गर्ज्जनेकी भांति उनका घोर शब्द सुनके देवताओंका भी हृदय विदीर्ण होता है, पिनाकधारी क्रुद्ध होके जिन्हें घोर रूपसे देखते हैं, उनका भी हृदय विदीर्ण होजाता है। लोकोंके बीच उनके कुपित होनेपर देवता, असुर, गन्धर्व्व और पन्नगगण, गुफामें प्रविष्ट होकेभी सुख लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। यजमान प्रजापति दक्षके विस्तृत यज्ञको महादेवने निर्भय और कुपित होकर विद्ध किया था। उन्होंने शरासनसे बाण छोड़कर घोर निनाद किया उस शब्दको सुनके सुख और शान्ति कहां? देववृन्द भयभीत हुए, सहसा यज्ञ विद्ध हुआ और महेश्वरके क्रुद्ध होनेपर उस ज्यातलशब्दसे सब लोक समाकुल तथा अवश हुए। हे पार्थ! देव असुर सब कोई विषण्ण हुए, जल कुथलने लगा और पृथ्वी कांपने लगी। सब पर्व्वत विद्रुत हुए और आकाश मण्डल विशीर्ण होगया, सब लोक अन्धतमसाच्छन्न होके प्रकाशरहित हुए। हे भारत! सूर्य्यके सहित ज्योतिवाले पदार्थोंकी प्रभा नष्ट हुई। अनन्तर सर्व्वभूत तथा आत्महितैषी ऋषिगण अत्यन्त भयभीत होकर शान्ति और स्वस्त्ययन करने लगे।

अनन्तर रौद्र पराक्रमी रुद्रदेव क्रुद्ध होकर देवताओंकी ओर दौड़े, उन्होंने क्रुद्ध होकर प्रहारके द्वारा भगके दोनों नेत्र बिनष्ट किया और रोषित तथा पादचारी होकर पूषाकी ओर दौड़े। पूषाके उस समय पुरोडाश भक्षण करते रहनेपर रुद्रदेवने क्रुद्ध होकर उसके सब दांतोंको उखाड़ दिया। अनन्तर उन देवताओंने कम्पित होकर शङ्करको प्रणाम किया; रुद्रदेवने फिर प्रदीप्त शाणित बाण सन्धान किया, ऋषियोंके सहित सब देवता महादेवका पराक्रम देखके भयभीत हुए। अनन्तर उन श्रेष्ठ देवताओंने शङ्करको प्रसन्न किया, देवगण उस समय हाथ जोड़के शतरुद्री जप करने लगे,

महेश्वर देवताओंके द्वारा सब प्रकारसे स्तुति-युक्त होकर प्रसन्न हुए, देवताओंने रुद्रदेवके यज्ञभागकी विशिष्टरूपसे कल्पना की।

हे महाराज! देववृन्द डरकर महादेवके शरणमें गये, तब महादेवने प्रसन्न होकर उस यज्ञको उन्धित किया; उस यज्ञमें जो जो वस्तु अपहृत हुई थी, उन्हें वह सब उसही भांति फिर सजीव कर दी।

सुरलोकमें बीर्य्यवान असुरोंके लोहमय, रजतमय और तीसरा स्वर्णमय,—ये तीन पुर थे, इन्द्र समस्त अस्त्रोंसे उसे भेद करनेमें समर्थ नहीं हुए। अनन्तर देववृन्द पीड़ित होकर महारुद्रके शरणागत हुए, समागत महानुभाव देवगण बोले, हे रुद्रदेव! पशुगण सब कर्म्मोंमेंही अत्यन्त भयंकर होते हैं। हे मानद! इसलिये त्रिपुरके सहित दैत्योंका संहार करके सब लोगोंका परित्राण करिये। उन्होंने देवताओंका बचन सुनके कहा, "ऐसा ही होगा" इतनी बात कहके विष्णुको श्रेष्ठ बाण, अग्निको शल्य, वैवस्वत यमको पुङ्ख, वेदोंको धनुष, सावित्रीको रोदा और ब्रह्माको सारथी करके सबके संयोग तथा कालक्रमसे त्रिपर्व्वयुक्त तीन शल्यके सहारे उन तीनों पुरोंको भेद किया। हे भारत! रुद्रदेवने प्रलयकालकी अग्निसदृश तेजसम्पन्न आदित्यवर्ण शरके सहारे तीनों पुरोंके सहित असुरोंको जलाया था। वेही पञ्चशिख बालकरूपसे अङ्कगत हुए तब उमाने पूछा, "ये कौन हैं?" उस समय देवराज असूया करते हुए बज्रसे प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए, तब उन्होंने इन्द्रको परिघसदृश भुजाको बज्रके सहित स्तम्भित किया था; देवगण उस भुवनेश्वरको नहीं जान सके, प्रजापतिके सहित सब कोई ईश्वरविषयमें मोहित हुए थे। अनन्तर भगवान् ब्रह्माने उस अत्यन्त तेजस्वी रुद्रदेवको ध्यानके सहारे जाना, कि "येही श्रेष्ठ हैं," ऐसा जानके उन्होंने उमापतिकी बन्दना की थी। अनन्तर देवताओंने उमादेवी और रुद्रदेवको प्रसन्न किया, तब बल-निसूदन देवराजको भुजा पहलेकी भांति होगई। उस रुद्र देवने दुर्व्वासा नामक बीर्य्यवान ब्राह्मण होकर द्वारकापुरीमें मेरे गृहके बीच बहुत समयतक बास किया था; उन्होंने मेरे गृहमें अनेक प्रकारके दुःसह व्यवहार किये, तौभी मैंने उदारताके सहित उन दुःसह व्यवहारोंको सहा था। वेही रुद्र, वेही शिव, वेही अग्नि, सर्व्व और सर्व्वजित् हैं; वेही इन्द्र और वायु हैं, वह अश्विनीकुमार और बिद्युत हैं; वेही चन्द्रमा, वेही ईशान, वेही सूर्य्य और वेही वरुण हैं। वेही काल, वेही अन्तक तथा मृत्यु हैं; वेही तम, वेही रात्रि और दिवस हैं। वेही पक्ष, महीना, दोनों सन्ध्या और सम्वत्सर हैं; वेही धाता, वेही बिधाता, वेही विश्वकर्म्मा और वेही सर्व्ववित् हैं; वेही सब नक्षत्र, ग्रह, चारों दिशा और विदिशा हैं। वह अमरद्युति भगवान् विश्वमूर्त्ति तथा अमेयात्मा हैं; वेही ब्रह्मरूपसे एक प्रकार और जीव ब्रह्म भेदसे दो प्रकार हैं, प्रपञ्चरूपसे अनेक प्रकार सहस्र प्रकार तथा सैकड़ों हजारों प्रकारके हैं। वह भूयान भगवान् जन्मरहित महादेव ऐसे ही हैं; सौ बर्षमें भी उनके गुणोंका बर्णन नहीं किया जा सकता।

१६० अध्याय समाप्त।

बासुदेव बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! अनेक रूप और अनेक नामयुक्त महानुभाव रुद्रदेवका जो महत् ऐश्वर्य्य है, वह मेरे समीप सुनो। महेश्वर महादेवको अग्नि, स्थाणु, इकाक्ष, त्र्यम्बक, बिश्वरूप और शिव कहते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस देवकी द्विविध देह कहा करते हैं; उनमेंसे एक मूर्त्ति घोरा और दूसरी शिवा है; वेही दोनों मूर्त्तियें अनेक प्रकारकी कृपा करती हैं। जो उग्र तथा घोरमूर्त्ति है; वही अग्नि, बिजली और सूर्य्य है,

उसकी शिव तथा सौम्यमूर्त्ति धर्म्म, जल और चन्द्रमा है। उनके शरीरका अर्द्धभाग अग्नि और अर्द्धभाग सोम कहा गया है; उनकी शिवामूर्त्ति ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करती है और घोरामूर्त्ति प्रलयकालमें जगत्का संहार किया करती है। ईश्वरत्व और महत्त्वयुक्त होनेसे उनका महेश्वर नाम हुआ है। जो जलाके निःशेष करता तथा जो तीक्ष्ण, प्रतापवान् है और मांस शोणित-मज्जा भक्षण करता है, उसे रुद्र कहा जाता है। जो देवताओंमें उत्तम महान् है, महत्त्व जिसका विषय है, जो महत् विश्वको पालन करता है, वही महादेव नामसे स्मृत होता है। धूम्ररूप निबन्धनसे उसे धूर्ज्जटी कहा जाता है। वह सदा कल्याणकी कामना करते हुए सब मनुष्योंको कर्म्मोंके सहारे पवित्र करता है, इस ही निमित्त उसका नाम शिव है। वह ऊर्द्धमें स्थिर रहके मनुष्योंके प्राणोंको दहन करता है और सदा स्थिरलिङ्ग है, इस ही निमित्त स्थाणु नामसे स्मृत हुआ करता है। स्थावर, जङ्गम, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान भेदसे उसके अनेक प्रकारके रूप हैं, इसी लिये वह बहुरूप नामसे प्रसिद्ध है। विश्वदेवगण उसका आश्रय कर रहे हैं, इसलिये उसका विश्वरूप नाम है। सब स्थानोंमें उसके नेत्र हैं, इस ही निमित्त उसे सहस्राक्ष और अयुताक्ष कहा जाता है। उसके नेत्रोंसे प्रकट हुए तेजका अन्त नहीं है, वह सब प्रकारसे पशुओंको पालन करता, उनके सङ्ग क्रीड़ा करता और उनका अधिपति होनेसे पशुपति नामसे प्रसिद्ध है। उसकी मूर्त्ति सदा ब्रह्मचर्य्यव्रतमें रत रहती है, इसही निमित्त लोग उस महात्माकी प्रियमूर्त्तिकी पूजा किया करते हैं। जो लोग उस महानुभावके विग्रह अथवा लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे लिङ्गपूजक सदा महती समृद्धि सम्भोग किया करते हैं। ऋषिवृन्द, देवगण, अप्सरा और गन्धर्व्वगण उस ऊर्द्धस्थित लिङ्गकी ही अर्चना करते हैं। लिङ्गके सदा पूजित होनेसे महेश्वर प्रमुदित होते हैं और भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्नचित्त होकर भक्तोंको सुख प्रदान करते हैं। वह देव श्मशानके बीच निःशेष करके जलाते हुए निवास किया करता है। श्मशानके बीच जो पुरुष उसकी पूजा करते हैं, वे वीरस्थानमें निवास करनेके योग्य होते हैं। वही प्राणियोंके शरीरमें मृत्युस्वरूप है और वही शरीरधारियोंके शरीरमें प्राण तथा अपान वायुस्वरूप है; उसके रूप घोर, प्रकाशमान तथा अनेक प्रकारके हैं। लोकमें उसके जो सब रूप पूजित होते हैं, उसे विद्वान् ब्राह्मण लोग जानते हैं। उसके कर्म्म तथा चरितके सहारे देवताओंके बीच बहुत्त्वप्रयुक्त होनेसे यथार्थ नामधेय हुआ करते हैं। ब्राह्मण लोग वेदके बीच उनकी शतरुद्रिय पाठ करते हैं और वेदव्यासने उस महात्माके जो सब नाम वर्णन किये हैं, उसे भी जानते हैं। वह सब लोगोंके सुखप्रदाता विश्व और महत् रूपसे वर्णित होते हैं, ब्राह्मण लोग तथा दूसरे ऋषिवृन्द इन्हें सबसे श्रेष्ठ कहते हैं; वेही देवताओंके बीच आदिपुरुष हैं; उन्होंने ही मुखसे अग्नि उत्पन्न की थी। अनेक प्रकारके ग्रहोंसे संरुद्ध प्राण परित्याग करनेसे वह शरण्य पुण्यात्मा शरणागत पुरुषोंको कदापि परित्याग नहीं करता; वही मनुष्योंको आयु, आरोग्यता ऐश्वर्य्य और पुष्कल काम प्रदान करता है; फिर वही आक्षेपपूर्व्वक ग्रहण किया करता है। इन्द्रादि देवताओंमें उसका ही ऐश्वर्य्य वर्णित होता है, वह तीनों लोकोंके बीच शुभाशुभ विषयोंमें सदा व्यापृत होरहा है। वह ऐश्वर्य्य के हेतु सब कार्य्योंका ईश्वर कहा जाता है; वह सब लोकोंका महेश्वर है और महद्भूतोंका भी ईश्वर है। उसके अनेक भांतिके रूपसे यह विश्व जगत् व्याप्त होरहा है; उस देवका मुख ही समुद्रमें बड़वामुख है।

१६१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवकीनन्दन कृष्ण जब इतनी कथा कह चुके, तब युधिष्ठिरने शान्तनुनन्दन भीष्मसे फिर प्रश्न किया। हे सर्व्वधर्म्मज्ञश्रेष्ठ महाप्राज्ञ! निर्णय अथवा प्रत्यक्ष आगम इन दोनोंके बीच कारण क्या है?

भीष्म बोले, हे प्राज्ञ! इस विषयमें कुछ सन्देह नहीं है, मेरे मनमें ऐसी धारणा है, कि तुमने सम्यक् प्रश्न किया है; मैं यह विषय कहता हूं, सुनो। इसमें संशय सुगम परन्तु निर्णय अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें संशय दीखता है वह दृष्टश्रुत अथवा अचिन्त्य है। हेतुवादी लोग प्रत्यक्ष कारणको देखकर अपनेको प्राज्ञ समझके अभिमान करते हैं; संशयको सत्यजानके 'नास्ति' ऐसा वचन कहा करते हैं; जो पण्डिताभिमानी बालकवृन्द ऐसा कहते हैं, वह युक्तिसिद्ध नहीं है। यदि ऐसा समझो, कि पक्षान्तरमें एक मात्र कारण होता है, तो बहुत समयतक निरासन तथा तन्मनस्को होनेसे उसे जान सकोगे। हे भारत! अनेक प्रकारको प्राणयात्रा है, इसको जो लोग जल्पना करते हैं, वे तत्पर पुरुष ही इसे देख सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते। कारणोंका अन्त जाननेसे विपुल उत्तम ज्ञानज्योति लोगोंके अन्तःकरणमें प्राप्त होती है। हे महाराज! कारणोंका ज्ञान कदाचित ज्ञान नहीं है, अग्राह्य और अनिबद्ध विषयोंको परित्याग करना चाहिये।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकमें सिद्धि प्रत्यक्ष होती है, लौकिक और आगमपूर्व्वक शिष्टाचार अनेक प्रकारका है, इसलिये आप मेरे समीप उसे ही बर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! बलवान दुरात्माओंके द्वारा क्रियमान धर्म्मको संस्थिति उन्होंने ही की है, कामक्रमसे वह बिभिन्न हुआ है। तृणसे ढके हुए कूएंको भांति अधर्म्म धर्म्मरूपसे प्रकाशित होरहा है, उस ही निमित्त चरित्र बिभिन्न होता है। जो लोग शिष्टाचारबिहीन श्रुतित्याग परायण, धर्म्मविद्वेषी तथा नीच कहके बर्णित हुए हैं और शिष्टाचार खण्डन करते हैं, वैसे प्रत्यक्षानुमानचारी पुरुषोंमें सन्देह होता है। जिन्होंने साधुओंके निकट तृप्ति लाभ की है, शास्त्रकी आलोचनासे जिनको बुद्धि शुद्धि हुई है, तथा जो लोग सन्तुष्ट हैं, वेही श्रेष्ठ प्रमाण हैं; उन्हींको उपासना करो और उन्हींसे पूछो। लोभ मोहके अनुगत काम और अर्थको पोछे करके धर्म्मबोध करते हुए उनको उपासना करो और पूछो; उनके चरित्र यज्ञ और स्वाध्याय कर्म्म भिन्न नहीं होते। प्रत्यक्ष दृष्ट चरित्र शौच आदि आचार तथा वेद, इन तीनोंके मिलनेसे एकमात्र धर्म्म होता है, वह धर्म्म ही साधनीय है।

युधिष्ठिर बोले, अपार पथको खोज करनेवाले पार न पाके जिस प्रकार दीखते हैं, वैसे ही फिर मेरी बुद्धि सन्देहसे मुग्ध होती है। वेद, प्रत्यक्षदृष्ट चरित्र और आचार, ये तीनों ही यदि धर्म्मविषयमें प्रमाण हुए, तौभी इनमें पृथकत्व मालूम होता है, तीनों प्रमाणोंके द्वारा प्रतिपाद्य प्रमेयधर्म्म किस प्रकार एक होगा?

भीष्म बोले, हे राजन्! बलवान् दुष्टात्माओंके द्वारा ह्रियमान धर्म्मके सम्बन्धमें यदि तुम ऐसी शङ्का करते हो, तौभी धर्म्मको विवेचना तीन प्रकारसे होती है; तीनों प्रमाणोंके सम्वादसे एक मात्र धर्म्म परीक्षणीय है। धर्म्मदर्शन विविध होनेपर भी धर्म्म एक ही है; तीनों प्रमाणोंके पृथक् होनेपर भी प्रमेय धर्म्म पृथक् नहीं है; तीनों प्रमाण पृथक् पृथक् रीतसे धर्म्मके प्रतिपादक नहीं होते तीनोंके मिलनेसे एक मात्र धर्म्म हुआ करता है। तीनों प्रमाणोंका जो पथ बर्णित हुआ है, उसका उस ही प्रकार आचरण करो, धर्म्म विषयमें तर्क करके प्रश्न करना योग्य नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! इस विषयमें तुम्हें सदा संशय न होवे; अन्धे और जड़को भांति शंकारहित

होके जैसा कहता हूं, वैसाही आचरण करो। हे अजातशत्रु! अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता और दान, ये चारों ही सनातन धर्म्म हैं, इसलिये तुम इन चारोंकी सेवा करो। ब्राह्मणोंके विषयमें पितृ पितामहोचित जो बृत्ति है, उसहीका अनुसरण करो; क्यों कि येही धर्म्मके उपदेशक हैं। जो अज्ञानी मनुष्य अप्रमाणको प्रमाण करते हैं, वह कदाचित प्रमाण नहीं होता केवल विषादजनक हुआ करता है, ब्राह्मणोंका सम्मान करते हुए अधिक आदरके सहित सेवा करो, यह जान रखो, कि ब्राह्मणोंसे ही ये सब लोग प्रतिष्ठित होरहे हैं।

युधिष्ठिर बोले, जो लोग धर्म्मकी असूया करते और जो मनुष्य धर्म्मको सेवा किया करते हैं, वे लोग किन स्थानोंमें जाते हैं? आप मेरे निकट इस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जिनका चित्त रजोगुण और तमोगुणसे ढंका है, वे धर्म्मविद्वेषी मनुष्य नरकमें गमन किया करते हैं। हे महाराज! जो लोग सब प्रकारसे धर्म्मकी उपासना करते हैं, वे सत्य और सरल चित्तवाले पुरुष स्वर्गभोग किया करते हैं; आचार्य्यकी उपासनाके हेतु धर्म्मही उनकी गति है, जो लोग धर्म्मकी उपासना करते हैं, उन्हें देवलोक प्राप्त होता है। मनुष्य अथवा देवगण लोभ-द्वेषसे रहित होके शरीरको उपताप देकर धर्म्मसे सुख लाभ करते हैं। मनीषिगण ब्रह्माके पुत्रको प्रथम धर्म्म कहते हैं; जैसे भोक्ताका मन पके फलको भोग करता है, वैसेही धार्म्मिक लोग फलकी उपासना किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, दुष्टोंका क्या लक्षण है? साधु लोग क्या किया करते हैं? साधु और दुष्टजन कैसे हैं? यह सब आप मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, दुष्ट लोग दुराचारी दुर्द्धर्ष और दुर्म्मुख हैं और साधुजन शील सम्पन्न तथा महा शिष्टाचार लक्षणस्वरूप हैं। हे राजेन्द्र! धार्म्मिक मनुष्य राजमार्ग, गोसमूह और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते। साधु लोग देव, पितर, भूत, अतिथि और कुटुम्ब इन पांचोंको अन्नदान करके शेषमें स्वयं भोजन करते हैं, वे लोग भोजन करते करते जल्पना नहीं करते, आर्द्र पाणि होकर सोते नहीं। जो लोग चित्रभानु, वृषभ, देवता, गऊ, चतुष्पथ, ब्राह्मण, धार्म्मिक और वृद्ध पुरुषोंको प्रदक्षिणा करते हैं, जो लोग बूढ़े, भारसे थके हुए पुरुषों, स्त्रियों, अनेक ग्रामोंके स्वामी, ब्राह्मणों, गौवों और राजाओंको पथ प्रदान करते हैं, वेही साधु हैं। अतिथि, प्रेष्य स्वजनों और शरणागत पुरुषोंको प्रतिपालन तथा स्वागत प्रश्न करना चाहिये। सन्ध्या और सवेरे मनुष्योंका भोजन देवनिर्म्मित है, जो लोग उसके अनन्तर भोजन नहीं करते उसेही उपवास विधि कहते हैं। जैसे होमकालमें अग्नि समयकी प्रतीक्षा करती है, वैसेही ऋतुकालमें स्त्रियें ऋतुकी प्रतीक्षा किया करती हैं; ऋतुकालके अनन्तर अन्य समयमें जो लोग स्त्रीसङ्ग नहीं करते, वही उनका ब्रह्मचर्य्य कहाता है। अमृत, ब्राह्मण और गौवें,—ये तीनोंही समान हैं; इसलिये ब्राह्मणों और गौवोंकी विधिपूर्व्वक पूजा करे। वेदमन्त्रोंसे संस्कारयुक्त मांस भक्षण करनेमें दोष नहीं होता, पृष्ठमांस बृथामांस और पुत्रमांस,—ये तीनोंही समान हैं। निज देश तथा परदेशमें अतिथिको उपवासी न रखे; अध्ययन कार्य्य समाप्त करके गुरुजनोंको दक्षिणा दान करे, बड़े लोगोंको प्रणाम करे और पूजा करके आसन देना योग्य है। गुरुजनोंकी पूजा करनेसे परमायु यश श्रीके सहित बृद्धि होती है, बड़ोंको कदापि निन्दा न करे और उन्हें किसी कार्य्यके निमित्त प्रेरणा करना योग्य नहीं है। बड़े लोगोंके खड़े रहनेपर बैठा न रहे, इस प्रकार आचरण करनेसे आयु नहीं घटती। वस्त्ररहित

स्त्री-पुरुषोंकी ओर न देखे, सदा गुप्तभावसे मैथुन और अहार करे। गुरुजन सब तीर्थोंके भी तीर्थस्वरूप हैं, सब पवित्र पदार्थोंके बीच हृदय ही अत्यन्त पवित्र है; इन्द्रियोंके बीच ज्ञानही परम श्रेष्ठ और सन्तोष ही परमसुख है। सन्ध्या और सबेरेके समय वृद्ध लोगोंका पुष्कल वचन सुने, सदा बृद्धोंकी सेवा करनेसे मनुष्य ज्ञानवान् होता है, वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् यज्ञोपवीती होवे, बचन, मन और इन्द्रियोंको सदा संयत करे। संस्कार किया हुआ पायस, यवागू, कृशर और हविके सहारे ग्रहोंकी पूजा और पितृदैवत्य अष्टका श्राद्ध करे। आयुष्कर्म्ममें मङ्गलवचन कहे, चूत होनेपर शतजीव इत्यादि बचनसे अभिनन्दन करे, पीड़ित पुरुषोंको परमायुके निमित्त प्रार्थना करे। आपद्ग्रस्त होके कदापि महत् पुरुषोंको "तुम" न कहे, विद्वानोंको तुम कहने और बध करनेमें विशेष अन्तर नहीं है; कनिष्ठ लोगों, बराबर वालों और शिष्योंको तुम कहना योग्य है। पापकर्म्म करनेवाले मनुष्योंका हृदय ही सदा उन्हें पापी कहा करता है, अर्थात् कर्म्मके सहारे उनका हृदय जाना जाता है। महाजनोंके निकट जानके कृतकर्म्मोंको गोपन करनेसे वह कर्म्म बिनष्ट होता है; दुष्ट लोग ही जानके कृतकर्म्मोंको गोपन किया करते हैं। मुझे मनुष्य लोग नहीं देख सकते और देवता लोग भी नहीं देखते हैं; ऐसा ही समझके पापसे परिपूरित पापाचारी मनुष्य पापमें ही निमग्न हुआ करता है। जैसे व्याजीवी लोग देहभेदसे वृद्धिकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही धर्म्मसे ढका हुआ पाप धर्म्मकी वृद्धि किया करता है। जैसे नमक जलमें पड़नेसे गल जाता है, वैसे ही प्रायश्चित्तके द्वारा पापकर्म्म उस ही समय विनष्ट हो जाते हैं; इसलिये पापकर्म्मोंको न छिपावे, छिपानेसे ही वह बढ़ता है; पाप करनेपर उसे साधुओंके निकट कहनेसे वे लोग उस पापको नष्ट किया करते हैं। आशाके सहारे सञ्चित किया हुआ द्रव्य कालक्रमसे उपभुक्त होता है, जो पुरुष सञ्चय करता है, उसके वियोगमें दूसरा उसे भोग किया करता है। मनीषीवृन्द सब जीवोंके मानसको ही धर्म्म कहते हैं, इसलिये सब जीव धर्म्मका ही आसरा कर रहे हैं। एक मात्र धर्म्मका ही आचरण करे, धर्म्मध्वजी न होवे; जो लोग धर्म्मको उपभोग करते हैं, वे धर्म्मवणिक् हैं। दम्भरहित होकर देवताओंकी पूजा करे, निष्कपट होके गुरुकी सेवा करे; परकालके लिये निधि स्थापन करे और सत्पात्रको दान करे।

१६२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, भाग्यहीन मनुष्य अत्यन्त बलवान होनेपर भी धनवान् नहीं होता और भाग्यवान् मनुष्य कृशित तथा बालक होनेपर भी अर्थ लाभ करता है। जब मिलनेका समय नहीं रहता, तब प्रयत्न करनेपर भी नहीं प्राप्त होता और मिलनेके समयमें बिना यत्नके ही बहुतसा धन मिलता है। ऐसे सैकड़ों लोग दीखते हैं, जो कि यत्न करके निष्फल हुए हैं और बहुतेरे पुरुष बिना यत्नके ही बर्द्धित होते दीख पड़ते हैं। यदि यत्न करनेसे मनुष्योंको उस ही समय फल प्राप्त होता, तो विद्वान् पुरुष मूर्खोंके निकट वृत्तिके निमित्त आश्रित न होते। हे भरतसत्तम! मनुष्योंको न मिलनेवाली वस्तु प्राप्त नहीं होती, देखा जाता है, कि प्रयत्न करनेपर भी बहुतेरे निष्फल होते हैं। कोई सैकड़ों नीति बचनके सहारे धन चाहते हैं, कोई बिना प्रार्थना किये ही सुखी होते हैं। देखनेमें आता है, कि कितने लोग बार बार दुष्कर्म्म करके निर्द्धन हो जाते हैं और दूसरे लोग निर्द्धन होनेपर भी निज कर्म्ममें रत होके धनवान् होते हैं। कोई पुरुष नीतिशास्त्रोंको पढ़के भी

मन्त्रित्व पदमें नियुक्त नहीं होते और क्या कारण है, कि कितने ही मूर्ख पुरुष मन्त्रित्व पदपर नियुक्त होते हैं ? क्या विद्वान् विद्याहीन है तथा क्या धनवान् दुर्बुद्धि है ? यदि विद्याके अवलम्बसे मनुष्य सुखी होता, तो विद्वान् मनुष्य वृत्तिके निमित्त मूर्खोंका आसरा न करते। जैसे पुरुष जल पाके प्यास बुझाता है, वैसेही इष्टार्थी पुरुष विद्याके सहारे अर्थरूपी प्यासकी शान्ति किया करता है ; तथापि विद्या परित्याग नहीं करता। जिसका समय नहीं पहुंचा है, वह सैकड़ों बाणोंसे विद्ध होनेपर भी नहीं मरता और जिसका काल पहुंच गया है, वह तृणकी नोकसे छुए जानेपर भी जीवित नहीं रहता।

भीष्म बोले, कार्य्योंकी चेष्टा करते हुए यदि अर्थ लाभ न होवे, तो उग्र तपस्यामें प्रवृत्त होना चाहिये ; क्यों कि बिना बीजके कदापि अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता। मनीषिवृन्द कहा करते हैं, कि दान करनेसे मनुष्य भोगवान् होता है, वृद्धोंकी सेवा करनेसे मेधावी हुआ करता है और अहिंसासे महादीर्घायु होता है, । इसलिये दान करे जांचना योग्य नहीं है। धार्म्मिक लोगोंकी पूजा करे, उत्तम बचन कहे ; प्रियकारी, शुद्ध और सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसक होवे। हे युधिष्ठिर ! जब कर्म्म और स्वभाव दंश, कीट तथा चींटी प्रभृतिके सुख दुःख प्राप्तिविषयमें प्रमाण हैं, तब अपने विषयमें भी वैसा ही जानके तुम्हें स्थिर होना चाहिये।

१६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जो सत् वा असत् कर्म्म किया जाता तथा कराया जाता है ; किम्वा कृत वा अकृत हो ; उसके बीच सत्कर्म्म करके उसपर विश्वास करे और असत् कार्य्योंमें विश्वास न करना चाहिये। काल ही सब समयमें निग्रह-अनुग्रह प्रदान करता हुआ प्राणियोंकी बुद्धिमें आविष्ट होकर धर्म्म अधर्म्मका प्रवर्त्तक होता है। जिस समय धर्म्मार्थ प्रदर्शन हेतु पुरुषकी बुद्धिमें धर्म्म कल्याणकारी बोध होता है, उस समय धर्म्मात्मा मनुष्य आश्वस्त होवे ; अदृढ़ बुद्धि पुरुष धर्म्मफलमें विश्वास नहीं करते। प्राणियोंकी इतनी ही धर्म्ममें विश्वासवत्ता प्राज्ञ लक्षण है। जो लोग कर्त्तव्य अकर्त्तव्य दोनोंको जानते हैं, वे समयके अनुसार जैसा उचित होता है, वैसा ही आचरण किया करते हैं। जैसे ऐश्वर्य्यशाली मनुष्य रजोगुणसे युक्त सन्तान उत्पन्न नहीं करता, इस लोकमें धार्म्मिकपुरुष उस ही प्रकार आप ही अपना सम्मान किया करते हैं। काल कदापि दुःखके हेतु स्वरूपसे धर्म्म दान नहीं करता ; इसलिये धर्म्मचारी मनुष्य अपनेको पवित्र जाने। सन्तत अधर्म्म कालके द्वारा परिरक्षित जलती हुई अग्निसदृश धर्म्मको स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं है। विशुद्धता और अधर्म्मका अस्पर्श धर्म्मके द्वारा ही करना चाहिये ; क्यों कि धर्म्म ही विजयावह है ; धर्म्म ही तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है। कोई बुद्धिमान् पुरुष मनुष्यको हाथसे पकड़के धर्म्ममें प्रवृत्त नहीं कर सकता ; परन्तु वह धर्म्मभय तथा लोकभयके छलसे उसे धर्म्मानुष्ठानके निमित्त प्रेरण करता है, अर्थात् प्राज्ञ पुरुषोंके द्वारा लोकभय प्रभृति छलसे प्रेरित होकर मनुष्य धर्म्मानुष्ठानमें प्रवृत्त होता है। "मैं शूद्र हूं मुझे चारों आश्रमोंके धर्म्मसेवनमें अधिकार नहीं है" ऐसा बचन कहके दूसरे लोग अधिकारके अनुसार धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं, वह छल नहीं है ; इसलिये समस्त प्रवर्त्तना व्यर्थ है। सदृशचित्तवाले प्राणियोंका पञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष होनेपर भी 'यह पवित्र है, यह अपवित्र है', इस ही प्रकार विशेष व्यवस्थापन लोक धर्म्म और शास्त्रीय धर्म्म निमित्त कृत हुए हैं ; पशु, पामर, पण्डित प्रभृति प्राणीवृन्द जिस प्रकार पुनर्निर्दिष्ट एकत्व लाभ करते हैं, शास्त्रमें विस्तारपूर्व्वक वही धर्म्म

नियम वर्णित है; इसलिये चारों वर्णोंका विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करता हूं। लोक अनित्य है और धर्म्म नित्य है, यह किस प्रकार सत्य हुआ? लोक और धर्म्मके कार्य्य-कारण भाव हेतुसे कार्य्यकी अनित्यता युक्तियुक्त नहीं होती। हे तात! इसलिये सङ्कल्पस्वरूप काल अर्थात् निष्काम धर्म्म ही नित्य है, उसका फल कभी सकाम नहीं हो सकता; इसलिये धर्म्मही सनातन है। तुल्य देहविशिष्ट तथा सदृशचित्तवाले प्राणियोंके सम्बन्धमें धर्म्मयुक्त सङ्कल्प ही विशेष रूपसे स्वयं उपदेशक होता है, जब जीवोंका पूर्व्वकृत कर्म्म उनके जन्मनेपर सुख-दुख साधनका प्रवर्त्तक हुआ; तब जीवोंको धर्म्म सेवन अर्थात् कर्म्म फल भोगनेमें दोष नहीं है, क्यों कि तिर्य्यक्योनिमें वर्त्तमान जीवोंको सदसत् प्रवृत्तिविषय पूर्व्व कर्म्मके अनुसार लोकमें गुरुतर दीखता है; विधि नियन्त्रित होकर लोक दृष्टान्तके अनुसार लोकसमाज ही उपदेष्टा हुआ करता है।

१६४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुल धुरन्धर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने हिताकांक्षी होकर शरशय्याशायी भीष्मदेवसे पापामह हितविषय पूछा।

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें पुरुषके लिये कल्याण क्या है? क्या करनेसे मनुष्यको सुख मिलता है? किन कर्म्मोंके सहारे पुरुष निष्पाप होता है और किस प्रकार कर्म्म पापोंको नाश करता है?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मदेव सेवा करनेवाले युधिष्ठिरके निकट देववंश वर्णन करने लगे। भीष्म बोले, हे तात! ऋषिवंश युक्त इस देववंशका त्रिसन्ध्या पाठ करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। पुरुष दिनमें इन्द्रियोंके सहारे जो पापाचरण करता है अथवा जानके वा विना जाने रात्रि तथा दोनों सन्ध्यामें जो पाप करता है, सदा पवित्र होके इस देववंशका पाठ करनेसे उन पापोंसे छूट जाता है। इसे पाठ करनेसे पुरुष कालक्रमसे अन्धा वा बहिरा नहीं होता, सदा स्तुतिमान् होता है, तिर्य्यक् योनि, नरक और सङ्करजातिमें गमन नहीं करता, उसे मरनेसे भय, दुःख और मोह नहीं होता। देवासुर गुरु सर्व्वभूत नमस्कृत अचिन्त्य अनिर्देश्य सर्व्वप्राण अयोनिज देव पितामह ब्रह्माकी सती सावित्री, वेदभू वेदकर्त्ता विष्णु नारायण, प्रभु उमापति विरूपाक्ष, सेनापति स्कन्द, विशाख हुतभुक, वायु, चन्द्रमा, प्रभाकर सूर्य्य, शचीपति शक्रदेव, धूर्म्मोर्णाके सहित यम, गौरीके सहित कुबेर, सौम्यगण सुरभीदेवी, महर्षि विश्रवा, सङ्कल्पसागर, गङ्गा प्रभृति नदीगण, मरुद्गण, तपसे सिद्ध बालखिल्यगण, कृष्ण द्वैपायन, पर्व्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत विश्रुत, महाभागा देवकन्यागण, अप्सरावृन्द, उर्व्वशी मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा विश्वाची घृताची, पञ्चचूड़ा, तिलोत्तमा, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण, धर्म्म, श्रुत, तप, दीक्षा व्यवसाय, पितामह, शर्व्वरी, दिवस, मारीच, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध राहु, सनैश्चर, सब नक्षत्र, सब ऋतु, मास, पक्ष, सम्वत्सर, वैनतेय, समुद्र, कद्रुज, पन्नगगण, शतद्रु विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा, महानदी, वेणा, कावेरी, नर्म्मदा, कुलपुना, विशल्या, करतोया, अम्बुवाहिनी, सरयू, गण्डकी महानदी लोहित, ताम्रारुणा, वेत्रवती पर्णाशा, गौतमी, गोदावरी, वेणा, कृष्णावेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, कावेरी, वंक्षु, मन्दाकिनी, प्रभास, प्रयाग, पवित्र नैमिषक्षेत्र, विमल सरोवर जहांपर विश्वेश्वरका स्थान है, पुण्यतीर्थोंके बीच उत्तम कुरुक्षेत्र, सिन्धूत्तम, तप, दान, जम्बूमार्ग, हिरण्वती, वितस्ता, प्लक्षवती, नदी, वेद, स्मृति, वेदवती, मालवा अश्ववती, भूमिके समस्त पवित्र

स्थान, गङ्गासागर, पवित्र ऋषिकुल्या, चित्ररथा नदी, पवित्र नदी चर्म्मण्वती, कौशिकी, यमुना, भीमरथी नदी, बाहुदा, महानदी, महेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, सरस्वती, नन्दा, अपरनन्दा, महाह्रद, तीर्थ गया, फल्गू तीर्थ, देवताओंसे परिपूरित धर्म्मारण्य, पुण्या देवनदी, ब्रह्मनिर्म्मित तीनों लोकमें विख्यात् सब पापोंको हरनेवाला कल्याणकारी पुण्यसरोवर, दिव्य औषधियोंसे युक्त हिमालय पर्व्वत; धातुओंसे चित्रित विन्ध्य, औषधीयुक्त तीर्थवान् मेरु, महेन्द्र, मलय, रौप्ययुक्त श्वेत पर्व्वत, शृङ्गवान, मन्दर, नील, निषद, दर्दुर, चित्रकूट, अञ्जनाभ, गन्धमादन पर्व्वत, पवित्र सोमगिरि इनके अतिरिक्त अन्य समस्त पर्व्वत, दिशा, विदिशा, सारीपृथ्वी, समस्त, वृक्ष, विश्वदेवगण, आकाश, नक्षत्रगण, ग्रहगण और ये समस्त देवगण जो मेरे द्वारा कीर्त्तित अथवा अकीर्त्तित हुए हैं, वे सब कोई सदा हमारी रक्षा करें ।

मनुष्य इन्हीं नामोंके पाठ करनेसे सब पापोंसे छूटता है, इन सबकी स्तुति तथा अभिनन्दन करनेसे पुरुष समस्त भयसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग देवता स्तवकी प्रशंसा करते हैं, वे सब पापोंसे रहित हुआ करते हैं। देवताओंके अनन्तर तपसे सिद्ध अधिक तपस्या युक्त सब पापोंके नाशक विख्यात् ब्राह्मणोंका नाम वर्णन करता हूं ।

यवक्रीत, रैभ्य, काक्षीवान, औशिज, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, शक्तिमान, मेधातिथि और गुरुसम्पन्न वर्ही, ये पूर्व्वदिशाको अवलम्बन किये हैं। दक्षिण दिशाको अवलम्बन करनेवाले महाभाग उन्मुच, प्रमुच, वीर्य्यवान् स्वस्त्यात्रेय, मित्रा वरुणके पुत्र प्रतापवान् अगस्त्य, दृढ़ायु और ऊर्द्ध्वबाहु नामसे विख्यात् दोनों ऋषिसत्तम हैं। जो पश्चिम दिशाको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उनके नाम सुनो। सहोदरगणोंके सहित उषङ्गु, वीर्य्यवान् परिव्याध, दीर्घतमा ऋषि, गौतम, कश्यप, महर्षि, एकत, द्वित और त्रित, तथा अत्रिके पुत्र धर्म्मात्मा शक्तिमान सारस्वत। जो लोग उत्तरदिशाको अवलम्बन करके वास करते हैं, उनके नाम सुनो। अत्रि, वशिष्ट, शक्ति, पराशर, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, ऋचीक पुत्र राम, उद्दालकि ऋषि, श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्म्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचिकेतु, लोमहर्षण, उग्रश्रवा, ऋषि, भार्गव और च्यवन। हे महाराज ! सर्व्वपापोंका नाशक ऋषिदेव समन्वित यह आदि समवाय प्रकीर्त्तित हुआ। नृग, ययाति, नहुष, यदु, वीर्य्यवान, पुरु, सगर, धुन्धुमार, प्रतापवान, दलीप, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान, दुष्मन्त, महामना, चक्रवर्त्ती भरत, पवन, जनक, राजा धृष्टरथ, महाराज रघु, राजा दशरथ, राक्षसोंके नाशक वीर श्रेष्ठ रामचन्द्र, शशबिन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, राजा दृढ़रथ, महोदर अलर्क, नरनाथ ऐल, नरश्रेष्ठ करन्धम, नराधिप काश्मीर, दक्ष, अम्बरीष; कुकुर, महा यशस्वी, रैवत, कुरु, सम्वरण, सत्यविक्रम मान्धाता, राजर्षि, मुचकुन्द, जान्हवी, सेवित, जन्हु, आदिराज वेणुके पुत्र पृथु, मित्रभानु, प्रियङ्क, राजत्र सदस्यू, राजर्षिसत्तम श्वेत, विख्यात् महाभिष, राजा निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षुप, नरनाथ कक्षेयु, प्रतर्द्दन, दिवोदास, कोशलराज सुदास, ऐल, राजर्षि नल, प्रजापति, मनु, हविध्र, पिषध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीन वर्हि महायशस्वी, इक्ष्वाकु, राजा अनरण्य, जानुजङ्घ और राजर्षि, कक्षसेन, इनका तथा इनके अतिरिक्त जो वर्णित हुए, उनके नामोंका भी प्रातःकालमें उठके सूर्य्योदय और सूर्य्यास्तके समय दोनों सन्ध्यामें पवित्र और अनावृत होकर जो लोग पाठ करते हैं, वे धर्म्मफलभागी होते हैं। देवताओं, देवर्षियों और राजर्षियोंको स्तुति करनेसे ईश्वर हमारे

लिये पुष्टि, आयु, यश और स्वर्ग विधान करेगा, मुझे विघ्न प्राप्त न हो, पाप न हो और मेरे शत्रु न होवें, मेरी सदा निश्चय जय होवे और परलोकमें गति प्राप्त होवे।

१६५ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! कुरुकुल धुरन्धर भीष्मदेवके शरशय्या तथा पाण्डवगण प्रणीत वीर शय्यापर शयन करते रहनेपर मेरे पूर्व्व पितामह महाप्राज्ञ युधिष्ठिर सब धर्म्मशास्त्र और दानकी विधि सुनके संशयके विषयों तथा धर्म्मार्थ विषयमें सन्देह रहित होकर और जो कुछ कार्य्य किया था, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह समस्त राजमण्डली पट लिखित चित्रकी भांति मुहूर्त्त भर निश्चल हुई। अनन्तर राजाओंके चुप होनेपर सत्यवती पुत्र व्यासदेव मुहूर्त्तभर सोचके उस समय सोये हुए नरनाथ गङ्गानन्दनसे बोले,—

हे राजन्! कुरुराज युधिष्ठिर भाइयों और सब अनुयाई राजाओंके सहित प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं। हे नरनाथ! युधिष्ठिर कृष्णके सहित आपकी उपासना कर रहे हैं; अब आप इन्हें नगरमें जानेके लिये अनुमति दे सकते हैं, पृथ्वीपति गङ्गानन्दनभीष्मदेवने वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित युधिष्ठिरको अनुमति दी। हे महाराज! शान्तनुनन्दन भीष्मने राजा युधिष्ठिरसे यह मधुर वचन कहा। हे राजन्! अब तुम नगरमें जाओ, तुम्हारा मानसिक शोक विनष्ट होवे, हे राजेन्द्र! तुम श्रद्धायुक्त और दान्त होकर ययातिकी भांति बहुतसे अन्न सम्पन्न आप्त दक्षिण विविध यज्ञके द्वारा यजन करो।

हे पार्थ! तुम क्षत्रधर्म्ममें रत रहके पितरों और देवताओंको तृप्ति विधान करो; ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारा मानसिक दुःख नष्ट होवे, तुम प्रजारञ्जन करो। प्रकृतिगणको सब प्रकारसे धीरज दो और फल सत्कारके सहारे यथा योग्य सुहृदोंको सम्मानना करो। हे तात! चैत्यस्थान स्थित फलयुक्त वृक्षका जैसे पक्षीवृन्द आसरा किया करते हैं, वैसे ही मित्र और सुहृदजन तुम्हें अवलम्बन करके जीवन करें। हे महाराज! सूर्य्य दक्षिणायनसे विनिवृत्त तथा उत्तरायणमें प्रवृत्त होनेपर मेरा समय उपस्थित होगा, उस समय तुम मेरे समीप आना, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर 'ऐसा ही करूंगा,' इतना वचन कहके परिवारके सहित हस्तिनापुरकी ओर चले। हे कुरुश्रेष्ठ महाराज! उन्होंने धृतराष्ट्र और गान्धारीको आगे करके ऋषियों, भाइयों, श्रीकृष्ण, पुरवासी और जनपदवासी लोगों तथा मन्त्रियोंके सहित हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।

१६६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर पुरवासी और जनपदवासियोंको यथा रीतिसे सम्मान करके गृहमें जानेके निमित्त अनुमति दी। उस समय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मरे हुए वीरोंकी स्त्रियों वा पतिहीन नारियोंको बहुतसा धनदान करके धीरज देनेमें प्रवृत्त हुए। वह पुरुषश्रेष्ठ महाप्राज्ञ युधिष्ठिर राज्य पाके समस्त प्रजासमूहको बुलाकर अभिषिक्त हुए। धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर श्रीमान् धीमान् पुरुषश्रेष्ठ ब्राह्मणों सेनापतियों और वेदशास्त्र जाननेवाले पुरुषोंसे उत्तम आशीर्व्वाद पाके नगरके बीच पचास रात्रि वास करके कौरवोंमें अग्रगण्य भीष्मदेवका समय स्मरण किया। वह याचकोंके बीच घिरकर हस्तिनापुरसे बाहिर हुए आदित्यको निवृत्त और उत्तरायणमें प्रवृत्त देखकर भीष्मदेवके संस्कारके निमित्त पहले घृत, माला, पटवस्त्र, सुगन्ध, अगर प्रभृति चन्दन कालीयक द्रव्य, महामूल्यवान माला और विविध रत्न भेजके राजा धृतराष्ट्र यशस्विनी गान्धारी, माता

पृथादेवी और भाइयोंको अगाड़ी करके जनार्द्दन धीमान् विदुर, युयुत्सु और सात्यकीके सहित राजाओंके योग्य उत्तम महत् परिवारके द्वारा घिरकर तथा स्तूयमान होकर भीष्मके संस्कारक अग्निका अनुगमन करते हुए देवराजकी भांति उस नगरसे बाहिर हुए। अनन्तर वह महातेजस्वी राजा कुरुक्षेत्रमें शान्तनुपुत्रके समीप उपस्थित हुए। हे राजर्षि! राजा युधिष्ठिरने उस समय पराशरनन्दन बुद्धिमान व्यासदेव, नारद, देवल, असित और मरनेसे बचे हुए अनेक देशोंके समागत राजाओंके द्वारा उपासित और रक्षकोंसे रक्षित वीरशय्यापर सोये हुए भीष्मदेवका दर्शन किया। अनन्तर धर्म्मराजने भाइयोंके सहित रथसे उतरकर अरिदमन कुरुश्रेष्ठ पितामहको अभिवादन तथा द्वैपायन प्रभृति ब्राह्मणोंको प्रणाम किया; उन सब लोगोंने उन्हें अभिनन्दित किया। धर्म्मराज युधिष्ठिर ऋत्विकगण और भाइयोंके सहित ऋषियोंसे घिरकर शरशय्यापर सोये हुए गङ्गानन्दन भीष्मदेवसे बोले। हे नरनाथ जान्हवीनन्दन! मैं युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूं। हे महाबाहो! यदि आप सुनते हों, तो कहिये मैं आपका कौनसा कार्य्य करूं? हे विभु! मैं अग्नि लेकर आपके समयपर उपस्थित हुआ हूं। आचार्य्य, ऋत्विकगण, ब्राह्मणगण आपके पुत्र महातेजस्वी प्रजानाथ धृतराष्ट्र और मन्त्रियोंके सहित वीर्य्यवान् वासुदेव उपस्थित हुए हैं। मरनेसे बचे हुए सब राजा और कुरुजाङ्गलके सब लोग आये हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! इसलिये आप दोनों नेत्र उघारके सबको देखिये। इस समय जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब मैंने संग्रह किया है; समयपर आपने जो कुछ कहा था, वह सब कर्म्म मैंने सिद्ध किया है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान कुन्तीपुत्रका ऐसा वचन सुनके भीष्मदेवने नेत्र उघारके देखा, कि सब भारतगण उन्हें घेरकर खड़े हैं। अनन्तर बलवान वाग्मी भीष्मदेव विपुल भुजा ग्रहण करके उद्यत मेघ सदृश गम्भीर स्वरसे बोले। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! प्रारब्धसे हो तुम मन्त्रियोंके सहित उपस्थित हुए हो; भगवान सहस्र किरणधारी दिवाकर परिवृत हुए हैं। चोखे बाणोंके अग्रभागपर आज अट्ठावन रात्रि पर्य्यन्त मैं सोया हूं; परन्तु बोध होता है, मानो एक सौ वर्ष व्यतीत हुआ है। हे युधिष्ठिर! यह चान्द्रमाघमास उपस्थित है, यह शुक्लपक्ष है इस महीनेका तीनभाग इस समय भी शेष रह सकता है। भीष्मदेव युधिष्ठिरसे इतना वचन कहके धृतराष्ट्रको आमन्त्रण करके उस समयके अनुसार वचन कहने लगे।

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम धर्म्मज्ञ हो, तुमने विषय संशयका उत्तम रीतिसे निर्णय किया है; शास्त्रोंके जाननेवाले बहुतेरे ब्राह्मणोंकी तुमने उपासना की है। हे मनुजेश्वर! तुम्हें सूक्ष्म वेदशास्त्र सब धर्म्मों और चारों वेद मालूम हैं। हे कौरव! इसलिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है; जो होनहार था, वह हुआ है। तुमने कृष्ण द्वैपायनसे वेदरहस्य सुना है। हे महाराज! जैसे पाण्डुके पुत्रगण धर्म्मपूर्व्वक तुम्हारे पुत्र ही हैं; इसलिये तुम धर्म्ममें तत्पर रहके उन सेवा करनेवाले पाण्डुपुत्रोंका पालन करो। शुद्धचित्त धर्म्मराज तुम्हारे आज्ञावर्त्ती रहें अनृशंसता परायण तथा गुरुवत्सल जानो। तुम्हारे पुत्रगण दुरात्मा, क्रोध-लोभपरायण, ईर्षायुक्त और दुर्वृत्त थे; इसलिये उन लोगोंके निमित्त तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवश्रेष्ठ भीष्मदेव, महाराज धृतराष्ट्रसे इतनी कथा कहके फिर महाबाहु वासुदेवसे कहने लगे।

भीष्म बोले, हे देवदेवेश्वर सुरासुर नमस्कृत शङ्खचक्र गदाधारी त्रिविक्रम भगवन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम वासुदेव, हिरण्यात्म,

सविता विराट पुरुष हो; तुम हो जीवस्वरूप अनुरूप सनातन परमात्मा हो; मैं तुम्हारा भक्त तुममें ही चित्त लगाके तथा अदार होके परिवारगणके बीच घिरा हूं। हे पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम! तुम सदा मेरा परित्राण करो। हे वैकुण्ठ पुरुषोत्तम कृष्ण! मुझे अनुमति दो, आप जिनके अवलम्ब हैं, उन पाण्डवोंकी रक्षा करिये। पहिले मैंने दुर्बुद्धि मूर्ख दुर्योधनसे कहा था, कि जिस पक्षमें कृष्ण हैं, वहां ही धर्म्म है, जहां धर्म्म है, उस ही पक्षमें जय है। हे तात! बासुदेवकी उपाय अवलम्बन करके पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि स्थापित करो; सन्धि करनेसे तुम्हारा समय उत्तम होगा। मेरे बार बार ऐसा कहनेपर भी मन्दबुद्धि मूढ़ दुर्योधनने मेरा वचन न माना। इस समय पृथ्वीके सब राजाओंको मरवाकर स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ है। हे देव! मैं तुम्हें बदरिकाश्रममें नरके सहित बहुकालवासी पुराण ऋषिसत्तम देव कहके जानता हूं; नारद मुनि और महातपस्वी व्यासदेवने मुझसे कहा है, कि ये नर नारायण मनुष्य लोकमें अवतार लिये हैं। हे कृष्ण! अब मैं शरीर परित्याग करता हूं, तुम मुझे अनुमति दो, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मुझे परम गति प्राप्त होगी।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पार्थिव भीष्म! मैं तुम्हें अनुमति देता हूं, तुम्हें समस्त वसुलोक प्राप्त हों, हे महातेजस्वी! इस लोकमें तुम्हारा तनिक भी पाप नहीं है; तुम पितृभक्त तथा द्वितीय मारकण्डेय सदृश हो; क्योंकि मृत्यु दासीकी भांति सिर झुकाके तुम्हारे वशमें हो रही है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मदेवने कृष्णका ऐसा वचन सुनके पाण्डवगण तथा धृतराष्ट्र प्रभृति समस्त सुहृदोंसे कहने लगे। "मैं प्राण परित्याग करनेके लिये अभिलाषी हुआ हूं, उस विषयमें तुम लोग अनुमति करो। तुम लोग सत्यमें यत्नवान रहना, सत्य ही परम बल है। हे भारत! तुम लोग सदा अनृशंसतापरायण नियत-चित्त, ब्रह्मनिष्ठ धर्म्मशील और तपमें रत होना।" बुद्धिमान् भीष्मदेव सब सुहृदोंसे इतनी कथा कहके सबको आलिङ्गन करके फिर युधिष्ठिरसे यह वचन बोले। हे प्रजानाथ! ब्राह्मणगण, विशेष प्राज्ञजन, आचार्य्य और ऋत्विकगण सदा सर्व्वदा तुम्हारे पूजनीय हैं।

१६७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिदमन कुरुनन्दन! वह शान्तनव भीष्मने उस समय सब कौरवोंसे इसी प्रकार कहके मुहूर्तभर मौनावलम्बन किया। अनन्तर यथाक्रमसे मूलधारादि अधिष्ठानमें मनके सहित प्राणादि वायुको धारण करनेसे उस महात्माका प्राणादिवायु सम्यक् निरुद्ध होकर ऊर्द्धगामी हुआ। शान्तनुनन्दन भीष्म उस समय जिस जिस अवयवके जिस अंशको परित्याग करने लगे, उस योगयुक्त महानुभावका वह अङ्ग विशल्य हुआ। क्षणभरमें सबके सम्मुखमें ही वह विशल्य हुए। बासुदेव प्रभृति व्यासादि मुनियोंके सहित सब कोई उसे देखकर विस्मित होरहे, उन्होंने सब अवयवोंमें प्राणसंयुक्त मनको निरोध करके मस्तक भेदकर स्वर्गमें गमन किया। आकाशमें पुष्पवृष्टिके सहित देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे। सिद्ध और ब्रह्मर्षिगण साधु साधु कहके हर्ष प्रकाश करने लगे। हे प्रजानाथ! भीष्मदेवके मस्तकसे महोल्काकी भांति कोई पदार्थ निकलकर आकाशमें प्रवेश करते हुए क्षणभरके बीच अन्तर्हित हुआ। हे नृपश्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह भरतकुल धुरन्धर नरनाथ शान्तनुनन्दन उस समय कालके सहित संयुक्त हुए। अनन्तर महानुभाव पाण्डवगण विदुर और युयुत्सुने बहुतसा काठ और विविध सुगन्धि लाकर चिता बनाई, और सब लोग देखने लगे।

युधिष्ठिर और अत्यन्त श्रेष्ठ महाबुद्धिमान्

विदुर दोनोंनेही कुरुश्रेष्ठ भीष्मको बसन और मालासे परिपूरित किया, युयुत्सुने उनके ऊपर उत्तम छत्र धारण किया। भीमसेन और अर्जुन, दोनों सफेद चवंर लेकर डुलाने लगे। नकुल और सहदेवने उष्णीष धारण किया। युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र कुरुकुल धुरन्धर भीष्मदेवके पांवके तलेसे सब शरीरपर तालका बेना सञ्चालन करने लगे। अनन्तर सबने उस महात्माका विधिपूर्व्वक पितृयज्ञ निर्व्वाह किया; अग्निमें बार बार यजन किया; सामग ब्राह्मणगण सामगान करने लगे। अनन्तर धृतराष्ट्र प्रभृति प्रचन्दनकाष्ठ और कालीयक, कालगुरु, प्रभृति अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे गङ्गानन्दनको आच्छादित करके अग्नि जलाकर प्रदक्षिणा की। कुरुकुल धुरन्धर कुरुसत्तमगण कुरुश्रेष्ठ भीष्मका संस्कार करके ऋषियोंसे सेवित पवित्र भागीरथीके तटपर गये। व्यासदेव, असित, नारद, कृष्ण, भरतकुलकी स्त्रियें और जो सब पुरवासी वहांपर इकट्ठे हुए थे, वे सब कोई उनका अनुगमन करने लगे।

हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उन लोगोंने विधिपूर्व्वक महात्मा भीष्मदेवका तर्पण किया। अनन्तर गङ्गादेवी पुत्रका तर्पण होनेपर उस जलसे उठके रोदन करती हुई शोकसे विह्वल होकर विलाप करते करते कौरवोंसे बोलीं, हे निष्पापगण! जो घटना हुई है उसे मैं कहती हूं, सब कोई सुनो। जो मेरा पुत्र राजचरित्र, प्रज्ञा और नियम सम्पन्न था, जो कुरुवृद्धगणका सत्कार करनेवाला, पितृभक्त और महाव्रत था, पहले जो परशुरामके निकट पराजित नहीं हुआ; आज वही महावीर शिखण्डीके द्वारा दिव्य अस्त्रोंसे मारा गया। हे नृपगण! मेरा हृदय निश्चयही पाषाणमय है, क्यों कि उस प्रिय पुत्रको न देखकर अबतक भी विदीर्ण नहीं हुआ। काशीपुरीके बीच स्वयम्बर समाजमें इकट्ठे हुए समस्त क्षत्रिय राजाओंको एक रथसेही जीतकर जिसने तीनों कन्याओंको हरण किया था, पृथ्वीपर जिसके समान बलशाली और कोई भी न था, वह पुत्र शिखण्डीके हाथसे मारा गया है,—इस बातको सुनके मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ!! कुरुक्षेत्रको रणभूमिमें जामदग्न्य राम जिस महात्माके द्वारा सहजमें ही पीड़ित हुए थे, आज वह शिखण्डीके द्वारा मारा गया!!! महानदी गङ्गाके उस समय इसही प्रकार बहुत विलाप करते रहनेपर विभु दामोदरने उसे सान्त्वना वाक्यसे धीरज दिया।

हे प्रियदर्शने भद्रे! तुम धीरज धरो, शोक मत करो; तुम्हारा वह पुत्र परम लोकमें गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे शोभने! यह भीष्म महा तेजस्वी वसु थे, शापदोषसे इन्हें मनुष्यत्व प्राप्त हुआ था; इसलिये इनके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है। वह क्षत्रियधर्म्मके अनुसार रणभूमिमें संग्राम करते हुए अर्जुनके द्वारा मारे गये हैं। हे देवि! शिखण्डीने उनका बध नहीं किया। कुरुश्रेष्ठ भीष्मदेवके महायुद्धमें बाण उद्यत करके स्थित होनेपर साक्षात् शतक्रतु इन्द्र भी उनका बध करनेमें समर्थ नहीं थे। हे शुभानने! तुम्हारा पुत्र स्वच्छन्दताके सहित स्वर्गमें गया है, युद्धमें समस्त देवता भी उसका बध करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे गाङ्गा देवि! इसलिये तुम कुरुनन्दनके निमित्त शोक मत करो। यह तुम्हारा पुत्र वसुलोकमें गया है। हे देवि! तुम शोकरहित हो। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! नदियोंमें श्रेष्ठ जान्हवी कृष्ण और व्यासदेवका ऐसा बचन सुनके शोकरहित होके प्रकृतिको प्राप्त हुई। हे प्रजानाथ! कृष्ण प्रभृति सब कोई उस समय उनका सत्कार करके तथा उनकी अनुमति लेकर निवृत्त हुए।

१६८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्व्व सम्पूर्ण।

महाभारत।

अश्वमेध पर्व्व।

नारायण, पुरुषोत्तम नर और सरस्वती देवीको नमस्कार करके जयजयकार करे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाबाहु युधिष्ठिर कृततर्पण राजा धृतराष्ट्रको आगे करके व्याकुलचित्तसे गङ्गासे बाहर हुए। वह आंसू डबडबाये हुए नेत्रसे गङ्गासे उत्तीर्ण होकर व्याधके द्वारा विद्ध हाथीकी भांति तटपर गिर पड़े। अनन्तर कृष्णकी आज्ञानुसार भीमने उस अवसन्न युधिष्ठिरको पकड़ा और पर-बलपीड़क कृष्णने युधिष्ठिरसे कहा, कि "आप ऐसा न करिये।" हे महाराज! उस समय पाण्डवगण उस नरनाथ धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरका भूतलशायी, शोकार्त्त, दीनचित्त, ज्ञानरहित और लम्बी सांस छोड़ते हुए देखकर अत्यन्त शोकयुक्त होके बैठ गये। अनन्तर पुत्रशोकसे सन्तापित प्रज्ञाचक्षु महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र नरनाथ युधिष्ठिरसे बोले। हे कुरुशार्द्दूल! तुम उठके इसके अनन्तर कर्त्तव्य कर्म्मोंको सम्पादन करो। हे कुन्तीनन्दन! तुमने क्षत्रियधर्म्मके अनुसार इस पृथ्वीको जीता है, इसलिये सुहृदों और भाइयोंके सहित इसे भोग करो। हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! इस समय शोक करना उचित नहीं है, क्यों कि तुम्हारे लिये शोकका कारण कुछ भी नहीं देखता हूं। हे महिपाल! जिसके सपनेमें मिले हुए धनकी भांति एक सौ पुत्र नष्ट हुए हैं, उस गान्धारी और मुझे ही शोक करना उचित है। हे महाराज! मैंने दुर्बुद्धिके वशमें होकर महात्मा हितैषी विदुरके महत् अर्थयुक्त वचनको न सुननेसे इस समय परितापित होता हूं। दिव्यदर्शी महात्मा विदुरने मुझसे कहा था "हे महाराज! दुर्य्योधनके अपराधसे हो आपका श्रेष्ठ कुल नष्ट होगा; यदि आप अपने कुलका कुशल चाहते हैं, तो मेरे वचनके अनुसार इस दुष्टात्मा मन्दबुद्धि राजा दुर्य्योधनको परित्याग करिये। जिस प्रकार कर्ण तथा शकुनिके सङ्ग इसकी भेंट न हो और अप्रवादमें इनकी द्यूतक्रीड़ा निवारित होवे, उसहीका विधान करिये। हे राजन्! धर्म्मात्मा युधिष्ठिरको ही राज्यपर अभिषिक्त करिये, वह चित्तको वशमें करनेवाला धर्म्मपुत्र राज्यपर अभिषिक्त होनेसे धर्म्मपूर्व्वक पृथ्वी पालन करेगा अथवा यदि उस कुन्तीपुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करनेके लिये आपकी एकबारही इच्छा न हो, तो आप मध्यस्थ होकर स्वयं राज ग्रहण करिये। हे ज्ञातिवर्द्धन नरनाथ! जब आप सब प्राणियोंके विषयमें समभावसे विद्यमान रहके राज्यपालन करोगे, तो स्वजनवृन्द आपका आसरा करके जीविका निर्व्वाह करेंगे।" हे कुन्तीनन्दन! दीर्घदर्शी महात्मा विदुरके ऐसा कहनेपर भी मैं दुर्बुद्धिके वशमें होकर उनके वचनको न मानके पापात्मा दुर्य्योधनका अनुवर्त्ती हुआ था। उस धीरवर विदुरके मधुर वचनको टालनेसे ही यह फल पाके महादुःखरूपी शोक समुद्रमें

हुआ हूं। हे प्रजानाथ! तुम उस दुःखित वृद्ध पिता माताकी ओर देखो, इस समय तुम्हारे शोकका विषय कुछ भी नहीं दीखता है।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मेधावी युधिष्ठिर बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रका ऐसा वचन सुनके जब मौनभावसे ही स्थित रहे, तब श्रीकृष्णचन्द्रने उनसे कहा। हे प्रजानाथ! जो मन ही मन अत्यन्त शोक करता है, उसके प्रेतीभूत पूर्व्वपितामहगण अधिक सन्तापित होते हैं; इसलिये आप शोक परित्याग करके दक्षिणायुक्त विविध यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवताओंका विधिपूर्व्वक पूजन और सोमके सहारे तर्पण करके स्वधामन्त्रसे पितरोंको तृप्त करिये। हे महाराज! इस समय आपके सदृश महाप्राज्ञ पुरुषको अन्न और जलसे अतिथियों तथा अन्य प्रकारकी कामनासे दरिद्र मनुष्योंके मनकी अभिलाषको पूरण करना ही उचित है, इस प्रकार मुग्ध होना योग्य नहीं है। हे महाराज! आपने गङ्गानन्दन भीष्म, कृष्ण द्वैपायन व्यास, नारद और विदुरके निकट सब जानने योग्य कर्त्तव्य विषयोंको जाना तथा समस्त राजधर्म्म सुना है इसलिये आपको इस प्रकार मूढ़वृत्तिका अनुवर्त्ती होना उचित नहीं है, आप पितृ-पितामहकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यका भार उठाइये। देखिये क्षत्रियोंके यशस्वरूप क्षत्रधर्म्म युद्धके सहारे जो स्वर्गलाभ होना उचित है, उन लोगोंके विषयमें वैसा ही हुआ है, क्यों कि कोई शूर युद्धमें पराङ्मुख होके नहीं मरे। हे महाराज! जो होनहार था, वही हुआ है, इस विषयमें आप अब शोक न करिये, शोक परित्याग करिये; आपने जिन्हें संहार किया है, उन्हें फिर कदापि न देखेंगे। हे महाराज! जब गोविन्द धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहके विरत हुए, तब महातेजस्वी युधिष्ठिर उनसे कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे गोविन्द! मुझपर तुम्हारी जैसी प्रीति विद्यमान है और प्रेम तथा सुहृदताके सहित तुमने जो मेरे विषयमें अनुकम्पा की है, वह सब मुझे विदित है। हे श्रीमान् चक्र गदाधारी! अब यदि तुम मुझे सन्तुष्टचित्तसे तपोवनमें जानेके लिये आज्ञा दो, तो तुम्हारे द्वारा मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य्य सिद्ध होगा। संग्राममें अपराङ्मुख पुरुषश्रेष्ठ कर्ण और भीष्म पितामहको मारके तपोवनमें जानेके अतिरिक्त किसी प्रकारसे भी मैं शोकशान्तिका उपाय नहीं देखता हूं। हे जनार्द्दन! जिस कार्य्यके करनेसे मैं इस पापसे छूटूं और मेरा चित्त पवित्र हो, तुम उसहीका विधान करो।

जब पृथापुत्र युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रसे ऐसा वचन कहा, तब महातेजस्वी धर्म्मज्ञ व्यासदेव उन्हें धीरज देते हुए अर्थयुक्त कल्याणकारी वचन कहने लगे। हे तात! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त ही अपरिपक्व है, तुम बार बार बाल्यस्वभावसे ही मुग्ध होते हो; क्या हम लोग उन्मत्तकी भांति बार बार आकाशसे वचन कहेंगे? जिनकी युद्धसे जीविका निभती है, उन क्षत्रियोंको सब धर्म्म विदित हुए हैं। जो राजा न्यायपूर्व्वक कार्य्य करता है, उसे आधिरूपी बन्धनमें बद्ध नहीं होना पड़ता, तुमने इसे भी जाना है और निखिल मोक्षधर्म्म यथार्थ रीतिसे सुना है, तथा मैंने भी अनेक बार तुम्हारे कामज सन्देहोंको दूर किया है। तुम दुर्ब्बुद्धिके वशमें होकर हम लोगोंके वचनमें श्रद्धा नहीं करते हो, तुम्हारी स्मरणशक्ति निश्चय ही लुप्त होगई है, तुम्हें ऐसा न होना चाहिये; तुम्हारे लिये ऐसा अज्ञान अयुक्त है। हे पापरहित! तुम्हें सब प्रायश्चित्त विदित हैं, तुमने राजधर्म्म और दानधर्म्म सुना है, इसलिये सब धर्म्मोंको जानके तथा सर्व्वशास्त्र

विशारद होकर किस निमित्त बारम्बार अज्ञानकी भांति मोहित होते हो ?

२ अध्याय समाप्त ।

व्यासदेव बोले, हे युधिष्ठिर ! मुझे बोध होता है, कि तुम्हारी प्रखर बुद्धि नहीं है, क्यों कि कोई मनुष्य भी स्वयं स्ववश होके कार्य्य नहीं करता । हे मानद ! पुरुष ईश्वरकी प्रेरणासे जो उत्तम अधम कार्य्य करता है, उसमें क्या परिदेवना है ? हे भारत ! यदि तुम निश्चय ही अपनेको पापी समझते हो, तो जिस प्रकार पाप छूटता है, उसे सुनो । हे युधिष्ठिर ! मनुष्य लोग सदा बहुतसे पापकर्म्म करके तपस्या, यज्ञ और दानके सहारे उससे मुक्त हो सकते हैं । हे नरेन्द्रनाथ ! पापी मनुष्य यज्ञ, तपस्या और दानसे ही पवित्र हुआ करते हैं ; महात्मा देववृन्द और असुर लोग भी पुण्यके लिये यज्ञकार्य्यमें समधिक यत्न करते हैं ; इस ही निमित्त यज्ञ श्रेष्ठ हुआ है । महानुभाव देवगण यज्ञके द्वारा ही असुरोंसे अधिक हुए, इसही लिये क्रियावान् देवताओंने दानवोंके दलको धर्षित किया है । हे युधिष्ठिर ! इसलिये दशरथ-पुत्र रामकी भांति तुम राजसूय, अश्वमेध, सर्व्वमेध और नरमेध यज्ञ करो तथा विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त बहुकाम अन्न और वित्तसमन्वित अश्वमेध यज्ञ करो । तुम्हारे पितामह दुष्मन्तपुत्र शकुन्तलानन्दन महावीर पृथ्वीपति राजा भरतने इस ही प्रकार सब यज्ञ किया था ।

युधिष्ठिर बोले, "अश्वमेध यज्ञ निःसन्देह राजाओंको पवित्र करता है, परन्तु इस विषयमें मेरा जो अभिप्राय है, उसे भी आपको सुनना उचित है । हे द्विजोत्तम ! मैं यह महत् स्वजनवध करके अल्पदान न कर सकूंगा और बहुत दान करनेके लिये भी मेरे पास धन नहीं है तथा मैं इन आई घाव युक्त अत्यन्त कष्टसे वर्त्तमान राजपुत्रोंके निकट धन मांगनेका उत्साह नहीं कर सकता । हे द्विजसत्तम ! मैं स्वयं पृथ्वीका विनाश करके यज्ञके लिये फिर किस प्रकार कर लूंगा ? हे मुनिसत्तम ! दुर्य्योधनने ही हमें अकीर्त्तिकर कार्य्यमें नियुक्त किया है और उसके अपराधसे ही पृथ्वीके सब राजा मारे गये हैं । उस धृतराष्ट्रपुत्र नीचबुद्धि दुर्य्योधनने लाभसे पृथ्वी क्षय की है और उसका कोष भी विशीर्ण होगया है । इससे इस यज्ञमें पृथ्वी दक्षिणा ही प्रथम कल्प है, यही विधि विद्वान् पण्डितोंके द्वारा परिदृष्ट हुई है, इसमें अन्यथा होनेसे विधिमें विपर्य्यय हुआ करता है । हे तपोधन ! मैं इस विधिको प्रतिनिधि करनेकी वासना नहीं करता ; इसलिये इस विषयमें आपको पूरी रीतिसे मेरा मन्त्रित करना उचित है ।" उस समय कृष्णद्वैपायन व्यास पृथापुत्र युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनकर मुहूर्त्तभर चिन्ता करके धर्म्मराजसे कहने लगे ।

व्यासदेव बोले, "हे पार्थ ! जो खजाना खाली हुआ है, वह परिपूर्ण होगा, महात्मा मरुत्तराजके यज्ञकालका ब्राह्मणोंका उत्कृष्ट धन, हिमालय पर्व्वतमें विद्यमान है ; उसही धनको मंगाओ, उसीसे पर्य्याप्त होगा ।"

युधिष्ठिर बोले, हे वक्तृप्रवर ! मरुत्तराजके यज्ञमें किस प्रकार धन सञ्चित हुआ था और वह किस समय राजा हुए थे ?

व्यासदेव बोले, हे पार्थ ! वह महाधनशाली महावीर जिस समयमें राजा हुए थे, उसे यदि तुम्हें सुननेकी इच्छा है, तो उस कारन्धम राजाका वृत्तान्त सुनो ।

३ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मज्ञ ! मैं उस राजर्षि मरुत्तका विवरण सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक उनकी कथा यथार्थ कहिये ।

व्यासदेव बोले, हे तात ! सत्ययुगमें मनुनाम प्रजापालकदण्डधारी राजा थे, उनका पुत्र महाबाहु प्रसन्धि नामसे विख्यात हुआ था; प्रसन्धिका पुत्र क्षुप और क्षुपका पुत्र इक्ष्वाकु राजा हुआ था। हे महाराज! उस महात्मा इक्ष्वाकुके परम धार्म्मिक एक सौ पुत्र हुए थे, उन्होंने उन एक सौ पुत्रोंको ही महिपाल किया था। धनुर्द्धारियोंमें मुख्य विंश उनके बीच जेठे थे, विंशका पुत्र परमसुन्दर विविंश हुआ था; विविंशके पन्द्रह पुत्र हुए थे। विविंशके सब पुत्र धनुर्विद्यामें विक्रान्त, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी दानधर्म्ममें रत, शान्त और सदा प्रियवादी थे। उनमें जेठे खनीनेत्र थे, उन्होंने सबको पीड़ित किया था, खनीनेत्र अत्यन्त पराक्रमी थे, उन्होंने अकण्टक राज्य जय किया, तौभी प्रजा उनमें अनुरक्त न हुई; इसीसे राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए। हे राजेन्द्र! प्रजा उन्हें त्यागके उनके पुत्र सुवर्चाको राज्यपर अभिषिक्त करके आनन्दित हुई थी। वह सुवर्चा पिताको विक्रिया तथा राज्यसे उन्हें निर्व्वासित होते देखकर प्रजासमूहकी हितकामनासे संयत होकर रहता था। प्रजा उस ब्रह्मनिष्ठ सत्यवादी, पवित्र, शमदम युक्त, मनस्वी और धार्म्मिक सुवर्चामें अनुरक्त थी। अनन्तर जब धर्म्ममें प्रवृत्त सुवर्चाका कोष और वाहन विशीर्ण हुए तब सामन्तगण उन्हें सब भांतिसे पीड़ित करने लगे। खजाना, घोड़े तथा वाहनोंसे रहित होनेपर वह राजा सामन्तगणोंके द्वारा पीड़ित होकर सेवकों और पुरजनके सहित परम दुःखित हुए थे। हे युधिष्ठिर! वह सुवर्चा राजा बल नष्ट होनेपर भी सदा धर्म्ममें प्रवृत्त था, इसलिये सामन्तगण उसे विनष्ट करनेमें समर्थ न हुए। परन्तु जब वह पृथ्वीपति सुवर्चा पुरजनोंके सहित परम पीड़ा पाने लगा, तब उसने अपना हाथ अग्निमें डालकर उससे बल उत्पन्न किया। अनन्तर उसही सेनाके सहारे उसने निज सीमाके अन्तवर्त्ती सब राजाओंको जय किया था। हे महाराज! इसही कारण वह करन्धम नामसे विख्यात हुआ था। त्रेतायुगके प्रारम्भमें करन्धमके इन्द्र सदृश श्रीमान् देवताओंसे भी दुर्ज्जय कारन्धम नाम पुत्र हुआ था। उस समयमें उसने बल और वित्तके सहारे सबका सम्राट होकर सब राजाओंको अपने वशमें किया था। वही कारन्धम अविक्षित नामसे विख्यात हुए थे, वह धर्म्मात्मा अविक्षित इन्द्रके समान पराक्रमी, यज्ञशील, धर्म्ममें रत रहनेवाले धृतिमान्, संयतेन्द्रिय, सूर्य्यसदृश तेजस्वी, पृथिवीकी भांति क्षमाशील बृहस्पतिके समान बुद्धिमान तथा हिमवानकी भांति स्थिर थे। उस पृथ्वीपति अविक्षितने मन, वचन, कर्म्म, दम और शमके द्वारा प्रजासमूहके चित्तको आनन्दित किया था। जिस प्रभु अविक्षितने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किया था, विद्वान् अङ्गिराने स्वयं जिसका यज्ञ कराया था, उस अविक्षितके पुत्र धर्म्मज्ञ चक्रवर्त्ती दश हजार हाथियोंके सदृश बलवान् साक्षात् द्वितीय विष्णुरूप महायशस्वी मरुत्तने निजगुणोंके सहारे पिताको अतिक्रम किया था। उस धर्म्मात्मा मरुत्तने यज्ञ करनेके लिये सुवर्णमय सहस्र पात्र सुशोभित किया था। उन्होंने हिमालयके उत्तर भागमें मेरु पर्व्वत पाके वहीं उत्तम महान् काञ्चनमय प्रत्यन्त पर्व्वतपर कर्म्म किया था। वहांपर सुनारोंने असंख्य सुवर्णमय कुण्ड, पात्र और पीढ़ा आसन बनाया था; उसके समीपमें ही यज्ञवाट था। धर्म्मात्मा पृथ्वीपति मरुत्तने सब राजाओंके सहित उस ही स्थानमें यज्ञ किया था।

४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे वाग्मिवर! वह मरुत्त राजा कैसे वीर्य्यसम्पन्न थे और किस भांति उन्होंने सुवर्ण सञ्चय किया था? हे भगवन्!

इस समय वे सब वस्तु कहां हैं और हमें किस प्रकार मिलेंगी ?

वेदव्यास बोले, हे तात ! जैसे दक्षप्रजापतिके सुर और असुर बहुतसे पुत्र होकर सदा परस्पर स्पर्द्धा करते हैं, उसी भांति अङ्गिराके तुल्य व्रतशाली तपोधन सम्वर्त्त और बृहत्तेजस्वी बृहस्पति नाम दो पुत्र हुए थे। हे महाराज ! वे दोनों अत्यन्त स्पर्द्धित होनेसे पृथक् पृथक् स्थानमें रहते थे ; परन्तु बृहस्पति सदा सम्वर्त्तको दुःख देते थे। हे भारत ! वह सम्वर्त्त जेठे भाई बृहस्पतिके द्वारा सदा पीड़ित होनेसे दिगम्बर होकर समस्त अर्थ परित्यागकर वनवासकी अभिलाष करके वनमें चले गये।

इधर वासवने असुरोंको जय तथा मारके तीनों लोकोंका इन्द्रत्व पाकर अङ्गिराके जेठे पुत्र ब्राह्मणश्रेष्ठ बृहस्पतिको अपना पुरोहित बनाया। जगत्‌के बीच अप्रतिम बलवित्त वीर्य्यसम्पन्न इन्द्रके समान तेजस्वी संशितव्रती धर्म्मात्मा राजा कारन्धम पहले अङ्गिराके यजमान थे। उनके अत्यन्त सुन्दर वाहन बलवान योद्धा ; बुद्धिमान विविध मित्र और महामूल्यवान शय्या थी। उन्होंने ध्यानबलसे राजा होकर निज गुणों तथा सुखवायुसे सब राजाओंको वशीभूत किया था। वह निज अभिलषित समय पर्य्यन्त जीवित रहके सशरीर स्वर्गमें गये। अनन्तर ययातिकी भांति धर्म्म जाननेवाले शत्रुजित अविक्षित नाम उनके पुत्रने पृथ्वीको अपने वशमें करके निज विक्रम और गुणोंके सहारे पिताकी भांति राज्य किया था। इन्द्रके सदृश वीर्य्यवान मरुत्त उनके पुत्र थे ; समुद्रके सहित सारी पृथ्वी उनपर अत्यन्त अनुरक्त हुई थी। हे पाण्डुनन्दन ! वह पृथ्वीपति मरुत्त देवराजके सङ्ग स्पर्द्धा करते थे। ऐसा हो नहीं वरण इन्द्र अनेक यत्न करनेपर भी उस गुणवान पवित्र चित्तवाले पृथिवीपति मरुत्तसे विशिष्टता लाभ न कर सके।

एक बार हरिवाहन इन्द्रने वैशिष्ट लाभमें असमर्थ होकर देवताओंको सङ्ग लेकर बृहस्पतिको आह्वान करके उनसे कहा। हे बृहस्पति ! आप यदि मेरे प्रियकार्य्य करनेकी इच्छा करते हैं ; तो आप किसी प्रकार मरुत्त-राजाके दैव अथवा पितृकर्म्म न करने पावेंगे। हे बृहस्पति ! देवताओंके बीच मैंने ही तीनों लोकोंका आधिपत्य लाभ किया है ; मरुत्त केवल पृथिवीका अधिपति हुआ है। हे ब्रह्मन् ! आप अमरण धर्म्मयुक्त सुरपति इन्द्रका याजन कराके किस प्रकार अशङ्कचित्तसे उस मरणधर्म्म विशिष्ट राजा मरुत्तका याजन करेंगे ? हे बृहस्पति ! यदि आप अपना कुशल चाहते हैं, तो केवल मुझे अथवा महीपति मरुत्तको वरण करिये ; अथवा मरुत्तको परित्यागके सुखपूर्व्वक मुझेही भजिये।

हे कुरुनन्दन ! बृहस्पति देवराज इन्द्रका ऐसा वचन सुनके मुहूर्त्तभर सोचकर उनसे बोले, हे बलसूदन ! आप सब प्राणियोंके अधिपति हैं, तुम्हारेही द्वारा सब लोक प्रतिष्ठित हैं, आपने विश्वरूप नमुचि और बलको नष्ट किया है, आपनेही अकेले देवताओंकी श्री हरणकी है और आपही सर्व्वदा पृथिवी तथा स्वर्गको पालन करते हैं। हे पाकशासन ! इसलिये मैं आपका पुरोहित होकर किस प्रकार मनुष्य महीपति मरुत्तका यज्ञ कराऊंगा ? हे देवेन्द्र ! आप आश्वासित होइये, आप निश्चयही मेरा यह वचन जान रखिये, कि मैं कभी भी उस मनुष्य मरुत्तके यज्ञमें स्रुवा ग्रहण न करूंगा। यदि हिरण्यरेता अग्निमें उष्णता न रहे, पृथिवी उलट जाय और सूर्य्य प्रकाशित न हो ; तौभी मेरा सत्य विचलित न होगा। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उस समय देवराजने बृहस्पतिका ऐसा वचन सुनके मत्सररहित होकर उनकी प्रशंसा करके निज भवनमें प्रवेश किया।

५ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास मुनि बोले, हे युधिष्ठिर! इस स्थलमें पण्डित लोग वृहस्पति और बुद्धिमान मरुत्तके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। पृथ्वीनाथ मरुत्तने इन्द्रके सहित वृहस्पतिकी निश्चित प्रतिज्ञा सुनकर एक उत्तम महत् यज्ञ आरम्भका विचार किया। करन्धम सुतात्मज वाग्मिवर मरुत्त मनही मन यज्ञका सङ्कल्प स्थिर करके वृहस्पतिके निकट जाकर उनसे बोले, हे भगवन्! आपने पहले मेरे समीप जाकर जिस यज्ञका प्रस्ताव किया था, मैंने आपके वचन अनुसार उस यज्ञकी अभिसन्धि की है। हे साधु! मैंने उस यज्ञके करनेका अभिलाषी होकर यज्ञकी सब सामग्री सञ्चय की है, मैं आपका यजमान हूं, इसलिये आप उन सामग्रियोंको ग्रहण करके यज्ञसम्पादन करिये।

वृहस्पति बोले, हे पृथ्वीनाथ! मैं आपका यज्ञ करानेकी इच्छा नहीं करता, मैंने देवराजसे रोके जानेपर उनके निकट प्रतिज्ञा की है।

मरुत्त बोले, मैं आपका पैतृक यजमान होनेसे आपका अत्यन्त सम्मान किया करता हूं, इस समय मुझे आपको याच्यता प्राप्त हुई है; इसलिये आप मेरा यज्ञ कराइये।

वृहस्पति बोले, हे मरुत्त! मैं अमर्त्यका याजन करके किस प्रकार मर्त्य मनुष्यका याजन करूं। इसलिये आप जाइये, वा न जाइये; अब मैं फिर यज्ञ करानेमें प्रवृत्त न होऊंगा। हे महाबाहो! अब मैं आपका यज्ञ न करा सकूंगा, इसलिये आपकी जिसे उपाध्याय करनेकी इच्छा हो और जो आपका यज्ञ करे; आप उसीको वरण करिये।

वेदव्यास मुनि बोले, पृथ्वीपति मरुत्त वृहस्पतिका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त लज्जित हुए और सुसंविग्नचित्तसे लौटकर मार्गमें नारदमुनिको देखा। जब पृथ्वीनाथ मरुत्त मार्गमें नारदमुनिका समागम होनेपर यथा रीति हाथ जोड़के स्थित हुए, तब नारद मुनि उनसे बोले, हे राजर्षि! आप अत्यन्त असन्तुष्ट क्यों हुए हैं? हे पापरहित! आपका मङ्गल तो है? आप कहां गये थे? कहांपर इस प्रकार अप्रीति प्राप्त हुई? हे पार्थिवर्षभ! यदि मेरे सुननेके उपयुक्त हो तो आप मुझसे यह विषय कहिये, मैं सब प्रकारसे यत्नपूर्व्वक आपके मनका दुःख दूर करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मरुत्तने महर्षि नारदका ऐसा वचन सुनके उपाध्याय वृहस्पतिका समस्त विसम्वाद उन्हें सुनाया।

मरुत्त बोले, मैं अङ्गिराके पुत्र देवगुरु वृहस्पतिको यज्ञमें ऋत्विक करनेके लिये उनका दर्शन करने गया था, उन्होंने मुझे अभिनन्दित नहीं किया, बल्कि मुझे परित्याग किया है। हे नारद! इसलिये जब मैं गुरुके द्वारा दूषित और परित्यक्त हुआ, तब अब जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करता।

वेदव्यास मुनि बोले, हे महाराज! देवर्षि नारद राजा मरुत्तका ऐसा वचन सुनके अविक्षितपुत्र मरुत्तको वाक्यके द्वारा जीवित करते हुए कहने लगे।

नारद मुनि बोले, अङ्गिराके पुत्र धर्म्मशील सम्वर्त दिगम्बर होकर प्रजा समूहको मोहित करते हुए सब दिशाओंमें भ्रमण करते हैं। यदि वृहस्पति एकबारही आपका याजन करनेकी इच्छा नहीं करते हैं, तो आप उस महातेजस्वी सम्वर्तके निकट जाइये; वह प्रसन्न होकर आपका यज्ञ करेंगे।

मरुत्त बोले, हे वाग्मिवर नारद! आपके इस वचनके सहारे मैं जीवित हुआ; परन्तु आप बताइये, कहांपर मैं उस सम्वर्त्तका दर्शन पाऊंगा और मुझे किस प्रकार उनके समीप रहना होगा? किस प्रकार वह मुझे परित्याग न करेंगे? वह उपाय उपदेश करिये; मैं उनसे परित्यक्त होनेपर जीवित न रह सकूंगा।

नारद मुनि बोले, हे महाराज! वह सम्वर्त्त

उन्मत्त वेष बनाके महेश्वरके दर्शनकी अभिलाषसे काशीमें सुखपूर्व्वक विचरते हैं। हे पृथ्वीनाथ! आप उस काशीपुरीके द्वारपर उपस्थित होके उसके किसी स्थानमें एक मुर्दा रखियेगा, उस मुर्देको देखके जो वहांसे निवृत्त होगा; उसे ही सम्वर्त जानना। वह वीर्य्यवान् सम्वर्त्त जिस स्थानपर जावें, आप भी हाथ जोड़के उनका अनुगमन करते हुए उन्हें एकान्त स्थानमें पानेसे हाथ जोड़के कहना, कि "मैं आपका शरणागत हुआ।" यदि वह सम्वर्त्त आपसे पूछें, कि मेरा सन्धान तुम्हें किसने बताया? तो आप कहना, कि नारदने मुझसे आपका पता कह दिया है। यदि वह आपको मेरे अनुगमन करनेकी आज्ञा करें, तो आप निशङ्कचित्तसे कहना, कि उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया है।

वेदव्यास मुनि बोले, राजर्षि मरुत्तने नारद मुनिका वचन स्वीकार करके उनकी पूजा की और उनकी अनुमतिसे वाराणसी पुरीमें गये। महायशस्वी मरुत्त वाराणसी पुरीमें जाकर नारद मुनिके वचनको स्मरण करते हुए उस नगरीके द्वारपर यथोक्त शव स्थापित किया। विप्रवर सम्वर्त्त समकालमें ही पुरीद्वारमें प्रवृष्ट होकर द्वारदेशसे सहसा शवदर्शन करके वहांसे निवृत्त हुए। अविक्षितपुत्र पृथ्वीनाथ मरुत्त उन्हें निवृत्त होते देखकर उनके निकट शिक्षित होनेके निमित्त हाथ जोड़के उनके पीछे पीछे चले। सम्वर्तने महाराज मरुत्तको पीछे देखके निर्ज्जन स्थानमें उन्हें पांशु, कर्द्दम, श्लेष्मा और ष्ठीवनके सहारे समाच्छन्न किया। पृथ्वीनाथ मरुत्तने सम्वर्त्तके द्वारा इस प्रकार बाधित होके भी हाथ जोड़के उन्हें प्रसन्न करते हुए उनका अनुगमन किया। कुछ समयके अनन्तर सम्वर्त्त थककर अनेक शाखाओंसे युक्त न्यग्रोध वृक्षकी शीतल छायामें बैठ गये।

६ अध्याय समाप्त।

सम्वर्त्त बोले, तुमने मुझे किस प्रकार जाना और किस पुरुषने तुमसे मेरा परिचय कह दिया? यदि तुम मेरे प्रिय होनेके अभिलाषी हो; तो इसे यथार्थ रीतिसे मेरे निकट कहो। यदि तुम इस विषयमें सत्य कहोगे, तो तुम्हारा मनोरथ सफल होगा; झूठ बोलनेसे तुम्हारा सिर एक सौ टुकड़े हो जायगा।

मरुत्त बोले, आप मेरे गुरुपुत्र हैं, यह वृत्तान्त मैंने मार्गके बीचमें भ्रमण करनेवाले नारद मुनिके समीप सुना है, तभीसे आपके विषयमें मेरी उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई है।

सम्वर्त बोले, वह नारद मुनि मुझे यज्ञिक जानते हैं, यह वचन तुमने मेरे समीप सत्य कहा है, अच्छा मुझसे बताओ, कि अब वह इस समय कहां हैं?

मरुत्त बोले, उस देवर्षिसत्तम नारदमुनिने मुझसे आपका परिचय कहके तथा आपके निकट गमन करनेको अनुमति देकर अग्निमें प्रवेश किया है।

वेदव्यास मुनि बोले, सम्वर्त्त पृथ्वीपति मरुत्तका ऐसा वचन सुनके अधिक सन्तुष्ट होकर उनसे बोले, "मैं भी ऐसा कार्य्य करनेमें समर्थ हूं।" हे राजन्! अनन्तर सम्वर्त्त उन्मत्त होकर कठोर वचनसे मरुत्तकी बार बार निन्दा करते हुए बोले, मैं वायु रोगग्रस्त हूं, इसलिये मेरे चित्तमें जिस समय जो उदय होता है, उस समय वही किया करता हूं; तब तुम ऐसे स्वभाववाले ब्राह्मणके द्वारा क्यों यज्ञ करनेकी अभिलाष करते हो? यज्ञकार्य्यमें समर्थ मेरे भाई बृहस्पति इन्द्रके सङ्ग मिलकर उनके याज्य-कर्म्ममें नियुक्त हैं, तुम उन्होंके सहारे अपना कार्य्य सिद्ध करो। मेरे पूर्व्वज बृहस्पतिने मेरे इस शरीरके अतिरिक्त जो कुछ गृहमें स्थित सामग्री गुप्त देवता और यजमान थे, वह सब हर लिया है। हे अविक्षितपुत्र! वह मेरे पूज्य हैं, उनकी अनुमतिके बिना मैं किसी प्रकार

तुम्हारा यज्ञ न कर सकूंगा। इसलिये यदि तुम यज्ञ करनेकी इच्छा करते हो, तो उस बृहस्पतिके निकट जाकर उनकी अनुमति लेकर आओ, तब मैं तुम्हारा याजनकर्म्म करूंगा।

मरुत्त बोले, हे सम्वर्त्त! मैं आपके समीप बृहस्पतिका वृत्तान्त कहता हूं, आप उसे सुनिये। मैं पहलेही वृहस्पतिके निकट गया था, वह इन्द्रको यजमान करनेकी कामनासे मुझे यजमान करनेके अभिलाषी नहीं हैं। हे विप्र! मैंने वृहस्पतिके निकट जाकर पहले यज्ञका वृत्तान्त कहा था। वह मुझसे बोले, कि इन्द्रने मुझसे कहा है, कि मरुत्त पृथ्वीपति होकर सदा मेरे सङ्ग स्पर्द्धा किया करता है, इसलिये आप उसका याज्यकर्म्म न करने पावेंगे। ऐसा कहके उन्होंने मुझे निषेध किया है, इसलिये मैं देवता यजमान पाकर मनुष्यका याज्यकर्म्म न करूंगा। हे मुनिपुङ्गव! इन्द्रने आपके भ्राता वृहस्पतिको मेरा यज्ञकर्म्म करनेके लिये निषेध किया है, वह उसमें ही स्वीकृत हुए हैं। हे मुनिवर! आप यह निश्चय जानिये, कि उन्हें देवराजका सहारा मिला है, इसीसे मैं प्रीतिपूर्व्वक उनके निकट गया था, तथापि वह मुझे यजमान करनेमें अभिलाषी नहीं हुए। उसही हेतु मैं सर्व्वस्व व्यय करके भी आपके द्वारा यज्ञ कराने तथा आपके गुणोंके सहारे इन्द्रको अतिक्रम करनेकी इच्छा करता हूं। हे ब्रह्मन्! जब मैं बिना अपराधके ही उस बृहस्पतिके द्वारा प्रत्याख्यात् हुआ हूं, तब मेरा मन फिर उनके निकट जानेके लिये प्रवृत्त नहीं होता है।

सम्वर्त्त बोले, हे पार्थिव! यदि तुम मेरी सब अभिलाष पूरी कर सको, तो मैं तुम्हारे अभिलषित कार्य्योंको निश्चयरूपसे करनेकी इच्छा करता हूं। परन्तु मुझे एक संशय उपस्थित हुआ है, कि मैं जब तुम्हारा याजनकर्म्म करनेमें प्रवृत्त होऊंगा तब वृहस्पति और इन्द्र दोनों ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर तुमसे द्वेष करेंगे। इसलिये इस विषयमें जिस प्रकार मेरी स्थिरता रहे, तुम उसका निश्चय करो, यदि किसी प्रकारसे उसमें अन्यथा होगी, तो मैं उसी समय तुम्हें बान्धवोंके सहित भस्म करूंगा।

मरुत्त बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं आपका सङ्ग छोड़ूं तो जबतक सूर्य्य प्रकाशित रहेगा तथा समस्त पर्व्वत विद्यमान रहेंगे, तबतक मुझे उत्तम लोक न प्राप्त होवे और यदि मैं आपका सङ्ग परित्याग करूं, तो मैं कदापि शुभबुद्धि लाभ न कर सकूं तथा विषयोंके सहित मेरी आसक्ति होवे।

सम्वर्त्त बोले, हे अविक्षित पुत्र! सुनो। जिस प्रकार कर्म्ममें तुम्हारा सुन्दर मनोयोग हुआ है, मेरे अन्तःकरणमें भी उस ही प्रकार याजन विद्यमान है। हे महाराज! मैं कहता हूं, कि तुम्हारी सब उत्कृष्ट सामग्री अक्षय होंगी और तुम गन्धर्व्वों तथा देवताओंके सहित इन्द्रको अभिभव करोगे। परन्तु याज्य वा धनमें मेरी स्पृहा नहीं है, मैं केवल उस भ्राता वृहस्पति और इन्द्र दोनोंका ही विप्रिय कार्य्य करूंगा। मैं तुमसे यह सत्य वचन कहता हूं, कि निश्चय ही मैं तुम्हें इन्द्रके सहित समता लाभ कराऊंगा।

७ अध्याय समाप्त।

सम्वर्त्त बोले, हिमालय पर्व्वतके पृष्ठमें मुञ्जवान नाम एक पर्व्वत है, भगवान् उमानाथ वहां नित्य तपस्या किया करते हैं। शूलपाणि महातेजस्वी महेश्वर अनेक भूतगणोंसे घिरकर उमाके सहित उस शैलराजकी गुहा, विषम शृंग और वहांके बनस्पतियों तथा वृक्षोंके तले सदा इच्छानुसार सुखपूर्व्वक निवास करते हैं। वहां रुद्रगण, वसुगण, यम, वरुण, सहचरोंके सङ्ग कुबेर, भूत, पिशाच, दोनों अश्विनीकुमार नासत्य, गन्धर्व्व, अप्सरा, यक्ष, देवर्षि, आदित्य मरुत और यातुधान सब कोई महात्मा बहु-

रूपी उमापतिकी उपासना किया करते हैं। हे पृथ्वीपति! भगवान् शङ्कर विकृत और विकृताकार क्रीड़ा करनेवाले कुवेरके अनुचरोंके सहित वहां क्रीड़ा करते हैं। बालादित्य सदृश द्युतिशाली वह शैलपर निज सौन्दर्य्यसे प्रज्वलित अग्निकी भांति लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता हैं। मांसलोचन युक्त कोई प्राकृत प्राणी उसके रूप तथा अवयवोंको किसी प्रकार निर्द्दिष्ट करनेमें समर्थ नहीं होता। हे महाराज! वहां गर्म्मी, सर्दी, वायु, सूर्य्य, जरा, भूख, प्यास, मृत्यु और भय नहीं है। हे विजयी प्रवर! उस पहाड़के चारों ओर सूर्य्यकिरण सदृश प्रभाशाली सुवरणकी बहुतसी आकर (खान) विद्यमान हैं। हे महाराज! महात्मा कुवेरके प्रियचिकिर्षु उद्यत शास्त्रधारी सहायवृन्द उन आकरोंको रक्षा करते हैं। तुम वहां जाकर उस भगवान् शर्व्व, विधाता, रुद्र, शितिकण्ठ, सुरूप, सुवर्च्च, कपर्द्दी, कराल, हर्य्यक्ष, वरद, त्रिलोचन, सूर्य्यदण्डभेदी, वामन, शिव, दक्षिणामूर्त्ति, अव्यक्तरूपी, सद्वृत्त, शङ्कर मङ्गल्य, हरिकेश, स्थाणु, पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, कृश, उत्तर, भास्वर, सुतीर्थ, देवदेव, रंहस, उष्णीषी, सुवक्र, सहस्राक्ष, मीढ़्वान, गिरीश, प्रशान्त, यतिचीरवासा, बिल्वदण्ड, सिद्ध सर्व्वदण्डधारी, मृग, व्याध, महान्, धन्वी, भव, वर, सोमवक्त्र, सिद्धमन्त्र, नेत्रस्वरूप, हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पति, लेलिहान, गोष्ठ, सिद्धमन्त्र, सर्व्वव्यापी, पशुपति, भूतपति, वृष, मातृभक्त, सेनानी, मध्यम, स्रुवहस्त, यती, धन्वी, भार्गव, अज, कृष्णनेत्र, विरूपाक्ष, तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण, दीप्त, दीप्ताक्ष, महातेजा, कपालमाली, सुवरणमुकुटधारी, महादेव, कृष्ण, त्र्यम्बक, अनघ, क्रोधन, नृशंस, मृदु, बाहुशाली, दण्डी, तपस्वी, अक्रूर, कर्म्मा, सहस्रशिर, सहस्रपाद, स्वधास्वरूप, बहुरूप, दंष्ट्री, पिनाकी, महादेव, महायोगी, अव्यय, त्रिशूलहस्त, वरद, भुवनेश्वर, त्रिपुरघ्न, त्रिलोकेश, सर्व्वभूतप्रभव, सर्व्वभूताधार, धरणीधर, ईशान, शङ्कर, शर्व्व, शिव, विश्वेश्वर, भव, उमापति, विश्वरूप, महेश्वर, विरूपाक्ष, पशुपति, दशभुज, दिव्य, गोवृषभध्वज, उग्र, स्थाणु, शिव, रौद्र, गिरीश, ईश्वर, शितिकण्ठ, अज, शुक्र, पृथु, पृथुहर, विश्वरूप, विरूपाक्ष, बहुरूप, उमापति, अनङ्गाङ्ग, हर, शरण्य, चतुर्म्मुख, महादेवको सिर भुकाकार प्रणाम करके उनका शरणागत होना। हे पृथ्वीपति! उस महारंह महात्मा महादेवको इस ही प्रकार नमस्कार करके उनका शरणागत होनेसे तुम वह सुवर्ण पाओगे। जो सब मनुष्य ऐसा ही करके वहां जाते हैं, वेही सुवरण लाभ कर सकते हैं। अनन्तर कारन्धमपुत्र मरुत्तने सम्वर्त्तका ऐसा वचन सुनके वैसाही कार्य्य करते हुए अमानुषयज्ञीय संविधि सञ्चय की। शिल्पीगण वहांपर सुवरणमय भाण्ड बनाने लगे। अनन्तर वृहस्पति पृथ्वीनाथ मरुत्तकी देवताओंसे भी अधिक समृद्धि सुनके अत्यन्त सन्ताप करने लगे, बृहस्पति मनही मन "मेरा शत्रु सम्वर्त्त बसुमान् होगा" ऐसी चिन्ता करके सन्तप्त, वैवर्ण्य और कृशताको प्राप्त हुए; तब देवराज वृहस्पतिके सन्तापका वृत्तान्त सुनकर देवताओंके बीच घिरकर उनके समीप आके कहने लगे।

८ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, हे गीष्पति! आपको सुखपूर्व्वक नींद लगती है न? परिचारकगण आपके मनके अनुसार हुए तो हैं? हे विप्रवर! आप देवताओंके सुखकी कामना करते हैं न? देवगण आपको पालन करते हैं न?

वृहस्पति बोले, हे देवराज! मैं शय्यापर सुखसे सोता हूं, परिचारकगण मेरे मनके अनुसार हुए हैं, मैं सदा देवताओंके सुखकी कामना किया करता हूं और देवगण भी मुझे परम आदरसे पालन किया करते हैं।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! तब किस कारण आपको शारीरिक तथा मानसिक दुःख उपस्थित हुआ? आज किस निमित्तसे आप पाण्डु और विवर्ण हुए हैं? जिनसे आपको यह दुःख उत्पन्न हुआ है, आप मुझे बताइये, मैं इसी समय उन दुःख देनेवालोंका बध करूं।

बृहस्पति बोले, हे मघवन्! मैंने परम्परासे सुना है, कि मरुत्त उत्तम दक्षिणायुक्त एक महायज्ञ करेगा, सम्वर्त्त ही उस मरुत्तका यज्ञ करावेगा; इसलिये मेरी यह अभिलाष है, कि जिसमें सम्वर्त्त मरुत्तका यज्ञ न कराने पावे, आप वही उपाय करिये।

इन्द्र बोले, हे विप्र! जब आप देवताओंके मन्त्रज्ञ उत्तम पुरोहित हुए हैं और जरा तथा मृत्यु दोनोंको ही अतिक्रम किया है, तब सम्वर्त्त आपका क्या करेगा?

बृहस्पति बोले, हे देवेन्द्र! शत्रुओंके बीच किसीके समृद्धिसम्पन्न होनेसे वह दुःखकर बोध होता है। जैसे आप देवताओंके सहित असुरोंके वंशको खण्डन करके उनके बीच जिसे जिसे समृद्धिसम्पन्न देखते हैं उन्हीं असुरोंको मारनेकी इच्छा किया करते हैं, उस ही प्रकार मैं भी अपने शत्रु सम्वर्त्तको सम्बर्द्धित होते हुए सुनके दुःखसे विवर्ण हुआ हूं। हे इन्द्र! इसलिये आप सब भांतिसे उपायके सहारे उस मरुत्तको दमन करिये।

इन्द्र बृहस्पतिका बचन सुननेके अनन्तर अग्निको सम्बोधनपूर्वक आह्वान करके बोले, हे अग्निदेव! तुम मेरी आज्ञाके अनुसार बृहस्पतिको मरुत्तके समीप देनेके लिये उसके समीप जाकर कहो कि बृहस्पति तुम्हारा याजनकर्म्म करेंगे और अमर करदेंगे।

अग्निदेव बोले, हे भगवन्! मैं बृहस्पतिको मरुत्तके निकट देनेके लिये आपका दूत होकर इस समय उसके समीप जाता हूं, अग्निने इन्द्रसे ऐसा कहके बृहस्पतिका सम्मानबर्द्धन और पुरुहूतका बचन सत्य करनेके निमित्त मरुत्तके निकट गमन किया।

व्यासदेव बोले, तिसके अनन्तर महात्मा धूमकेतु अग्निदेव हिमके शेषमें इच्छानुसार धर्ष्यमान् महावेगशाली शब्दायमान वायुकी भांति समस्त बन और बृक्षोंको विमर्द्दित करके मरुत्तके निकट उपस्थित हुए।

मरुत्त समागत अग्निको रूपवान् देखके विस्मयपूर्व्वक बोले, हे मुनि! आज मैंने यह अत्यन्त विस्मययुक्त व्यापार अवलोकन किया, क्योंकि अग्निदेव निज रूप धारण करके आये हैं, इसलिये आप इन्हें आसन, जल, पाद्य और गऊ प्रदान करिये।

अग्निदेव बोले, हे अनघ! मैं तुम्हारा आसन, जल और पाद्य ग्रहण करता हूं, परन्तु तुम मुझे ऐसा जानो, कि मैं इन्द्रकी आज्ञानुसार उनका दूत होकर तुम्हारे निकट आया हूं।

मरुत्त बोले, हे धूमकेतु! श्रीमान् देवराज सुखसे तो हैं? वह हमारे विषयमें सन्तुष्ट तो हैं और देवगण उनके बशमें हैं न? हे देव! आप यह सब बृत्तान्त मुझसे यथार्थ रीतिसे कहिये।

अग्निदेव बोले, हे पार्थिवेन्द्र! देवराज परम सुखसे निवास करते हैं और देवगण भी उनके बशीभूत हुए हैं; परन्तु तुम देवराजका बचन सुनो। वह तुम्हारे सहित प्रीति तथा तुम्हें अमर करनेके अभिलाषी हुए हैं और बृहस्पतिका तुम्हें देनेके लिये उन्होंने मुझे तुम्हारे निकट भेजा है। हे राजन्! वह सुरगुरु बृहस्पति तुम्हारा याजनकर्म्म करेंगे।

मरुत्त बोले, ये द्विजसत्तम सम्वर्त्त ही मेरा याजनकर्म्म करेंगे, उस बृहस्पतिके निकट मैं हाथ जोड़ता हूं; उनसे अब मेरा प्रयोजन नहीं है और महेन्द्रका यज्ञ कराके इस समय मनुष्यका याजनकर्म्म करानेसे उनको वैसी प्रतिभा न रहेगी।

अग्निदेव बोले, यदि बृहस्पति तुम्हारा

याजनकर्म्म करें, तो देवराजकी कृपासे देवलोकके बीच तुम्हें सब उत्तम स्थान प्राप्त होंगे और तुम महायशस्वी होकर निश्चय ही स्वर्ग जय करोगे। हे नरेन्द्र! इसके अतिरिक्त यदि वृहस्पति तुम्हारा यज्ञकर्म्म करेंगे, तो तुम मनुष्यलोक, देवलोक, समस्त देवराज्य तथा प्रजापतिके बनाये हुए जितने लोक हैं, उन सबका जय कर सकोगे।

सम्वर्त्त बोले, हे पावक! तुम वृहस्पतिका मरुत्तके निकट देनेके लिये कदापि इस प्रकार फिर न आना। जो तुम फिर आओगे, तो निश्चय जान रखो, कि मैं क्रुद्ध होकर दारुण दृष्टिके द्वारा तुम्हें भस्म करूंगा। व्यासदेव बोले, अनन्तर धूमकेतु अग्निदेव जलनेके भयसे अश्वत्थपत्रकी भांति कांपकर देवताओंके निकट गये। तब महात्मा शक्र हव्य वाहक अग्निको वृहस्पतिके निकट देखकर उनसे कहने लगे।

इन्द्र बोले, हे जातवेद! तुम जो वृहस्पतिको मरुत्तके समीप देनेकेलिये मेरी प्रेरणासे उसके निकट गये थे; उस विषयमें क्या हुआ? वह यज्ञमान पृथ्वीपति मरुत्त क्या बोला? उसने उस वचनको स्वीकार किया है न?

अग्निदेव बोले, मैंने मरुत्तको बारम्बार आपका वचन सुनाया, परन्तु वह उसमें सम्मत न हुआ; बरन वह वृहस्पतिको हाथ जोड़के बोला, "सम्वर्त्त ही मेरा याजनकर्म्म करेंगे।" और उसने यह वचन कहा, कि मनुष्यलोक, स्वर्गलोक तथा प्रजापतिने जिन सब उत्कृष्ट लोकोंकी सृष्टि की है, मैं उन्हें पानेके लिये अभिलाष नहीं करता; यदि मेरे मनमें वैसी इच्छा होती, तो मैं उनके सङ्ग सम्भाषण करता।

इन्द्र बोले, तुम फिर उस पृथ्वीपति मरुत्तके समीप जाके मेरे इस अर्थयुक्त वचनसे उसे सावधान करो; यदि वह फिर तुम्हारे वचनको प्रतिपालन न करेगा तो मैं उसके ऊपर वज्रसे प्रहार करूंगा।

अग्निदेव बोले; हे वासव! यह गन्धर्व्वराज दूत होकर वहां जायं फिर वहां जानेमें मुझे भय होता है, क्योंकि उस ब्रह्मचर्य्यसम्पन्न तीक्ष्ण रोषसे युक्त सम्वर्त्तने सरम्भपूर्व्वक मुझे कहा है, कि यदि तुम वृहस्पतिको मरुत्तके समीप देनेके लिये फिर यहांपर आओगे, तो मैं क्रुद्ध होकर दारुण दृष्टिके सहारे तुम्हें जला दूंगा।

इन्द्र बोले, हे जातवेद! तुम सबको जलाया करते हो, तुम्हारे अतिरिक्त कोई भस्मकर्त्ता विद्यमान नहीं है और तुम्हारे संस्पर्शसे ही सब लोग भयभीत हुआ करते हैं। हे हव्यवाह! इसलिये तुमने जो कहा, वह मुझे अश्रद्धेय बोध होता है।

अग्निदेव बोले, हे देवेन्द्र! आपने निज बलसे स्वर्ग, मर्त्य और अन्तरिक्ष, इन तीनों लोकोंको वेष्टन किया है, परन्तु ऐसे त्रिलोकविहारी आपके यहांपर विद्यमान रहते भी पहले वृत्रासुरने किस प्रकार स्वर्गको हरण किया था।

इन्द्र बोले, हे अग्नि! मैं पर्व्वतोंको मशक प्रभृतिकी भांति सूक्ष्म कर सकता हूं, परन्तु मैं शत्रुओंका सोमपान नहीं करता—इससे वृत्रासुरने मेरी आराधना नहीं की और मैं निर्व्वल पुरुषके ऊपर वज्र नहीं चलाता,—इसीसे वह मेरे द्वारा निर्जित नहीं हुआ तथापि कोई मनुष्य मेरे ऊपर प्रहार करके सुखसे नहीं रह सकता। हे अग्नि! इसके अतिरिक्त मैं कालकेय असुरोंको पृथ्वीमें प्रव्राजित किया है, अन्तरिक्षसे दानवोंके दलको दूर किया है और प्रह्लादको स्वर्गमें बसाया है; इसलिये कौन मनुष्य सुखमें रहनेके लिये मुझपर प्रहार करेगा?

अग्निदेव बोले, हे महेन्द्र! पहले च्यवनने अश्विनीकुमारोंके सहित शर्य्यातिका यज्ञ कराके अकेले ही सोमपान कराया था; आपने उनके ऊपर क्रुद्ध होकर जो शर्य्यातिका यज्ञ निवारण किया था, उसे एक बार स्मरण करिये।

हे पुरन्दर ! आप वज्र ग्रहण करके च्यवनके ऊपर घोर प्रहार करनेके लिये उद्यत हुए थे, उस विप्रने क्रुद्ध होकर तपोबलसे वज्रके सहित आपकी भुजा ग्रहण की थी। अनन्तर उन्होंने क्रुद्ध होकर आपके लिये फिर एक ऐसा शत्रु उत्पन्न किया, कि आपने उस विश्वरूप भयङ्कर मद नाम असुरको देखते ही उस समय नेत्र मूंद लिया था। उस दानवका एक बड़ा ओठ पृथ्वी और दूसरा स्वर्गमें व्याप्त था, एक सौ योजन पर्य्यन्त उसके तीक्ष्ण दांत थे; उनमेंसे चार दांत वृत्त और स्थूल रजतस्तम्भकी भांति सफेद दो सौ योजन लम्बे थे; वह मद आपको मारनेकी इच्छासे दांतोंको कटकटाता हुआ घोरशूल उठाके तुम्हारी ओर दौड़ा था। उस समय उस घोररूपवाले असुरको देखकर आप ऐसे हुए थे, कि सब कोई दर्शनीयकी भांति तुम्हारी ओर देखने लगे। अनन्तर आप उससे डरके हाथ जोड़कर उस महर्षि च्यवनके शरणागत हुए। हे शक्र ! क्षत्रबलसे ब्रह्मबल श्रेष्ठ है, ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, इसलिये मैं ब्रह्मतेजको विशेष रीतिसे जानके सम्वर्त्तको जय करनेकी इच्छा नहीं करता।

८ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, यह सत्य है, कि सब बलोंसे ब्रह्मबल गरीयान् और ब्राह्मणोंसे दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है, परन्तु अविक्षितपुत्र मरुत्तके बलको मैं कदापि न सहूंगा; उसके ऊपर घोर वज्रसे प्रहार करूंगा। हे धृतराष्ट्र ! इसलिये तुम मेरे भेजनेसे सम्वर्त्तके सहित मिलके उस मरुत्तसे यह वचन बोलो, कि महाराज ! तुम वृहस्पतिके निकट शिक्षित हो, यदि तुम ऐसा न करोगे, तो इन्द्र तुम्हारे ऊपर घोर वज्रसे प्रहार करेंगे। व्यासदेव बोले, तिसके अनन्तर गन्धर्व्व धृतराष्ट्र पृथ्वीपति मरुत्तके समीप जाकर उनसे इन्द्रका वचन कहने लगा।

धृतराष्ट्र बोले, हे नरेन्द्र ! आप मुझे धृतराष्ट्र गन्धर्व्व जानिये, मैं आपसे इन्द्रका वचन कहनेकी इच्छासे तुम्हारे समीप आया हूं। हे राजन् ! इसलिये लोकाधिपति महात्मा महेन्द्रने आपको जो कहा है, उसे सुनिये। आपको इतना ही कहा है, कि "तुम वृहस्पतिको यज्ञमें याजकरूपसे वरण करो, यदि इस वचनको प्रतिपालन न करोगे, तो मैं तुम्हारे ऊपर घोर वज्रसे प्रहार करूंगा।"

मरुत्त बोले, आप पुरन्दर, विश्वदेव, वसुगण और अश्विनीकुमार, ये सब कोई जान रखें, कि इस लोकमें मित्रद्रोही पुरुषको निष्कृति नहीं होती। मित्रद्रोह महापाप और वह ब्रह्महत्याके सदृश है। हे राजन् ! इस समय वृहस्पति और इन्द्रके वचनमें मेरी अभिरुचि नहीं होती है; वृहस्पति उस वज्रधारी महेन्द्रका याजनकर्म्म करें और मेरा यज्ञकर्म्म सम्वर्त्त करेंगे।

गन्धर्व्व बोला, हे राजसिंह ! आप नभस्थलमें गर्ज्जनेवाले इन्द्रका घोर शब्द सुनिये। सहस्रलोचन स्पष्टरूपसे ही आपके ऊपर वज्र छोड़ेंगे। हे राजन् ! इसलिये अब आप अपने कुशलका विचार करिये।

व्यासदेव बोले, पृथ्वीपति मरुत्त धृतराष्ट्र गन्धर्व्वका ऐसा वचन सुनके नभस्थलमें उत्कट शब्दायमान इन्द्रका शब्द सुनकर धर्म्मवित् पुरुषोंमें वरिष्ठ सम्वर्त्तको शक्रका कार्य्य सुनाने लगे।

मरुत्त बोले, हे विप्रेन्द्र ! आज समीपमें ही मेघ उदय होनेसे निकटमें ही इन्द्र दीख पड़ते हैं, इसलिये अपने सुखलाभकी सम्भावना नहीं देखता। हे विप्रवर ! आप इन्द्रसे मुझे अभयदान करिये। यह वज्रधारी पुरन्दर भयङ्कर अमानुषरूपसे दशों दिशाओंको प्रकाशित कर मेरे सदस्योंको त्रासित करते हुए आ रहे हैं।

सम्वर्त्त बोले, हे राजसिंह ! तुम्हें शक्रसे भय न होगा; मैं शीघ्र ही स्तम्भनी विद्याके

सहारे तुम्हारे इस घोर भयको खण्डन करूंगा; इसलिये तुम धीरज धरो; इन्द्रके अभिभवसे कदापि भयभीत न होना। हे नरनाथ! तुम इन्द्रसे मत डरो, मेरे स्तम्भन करनेसे ही देवताओंके सब अस्त्र निष्फल होंगे। बज्र दिशा दिशामें गमन करे, वायु बादल होकर इस स्थानमें आकर वनके बीच जलकी वर्षा करे और समस्त जल आकाशमें प्लावित होवे। हे महाराज! यह जो बिजली दीख पड़ती है, वह व्यर्थ है, उससे तुम मत डरो। हे महाराज! इन्द्रने जो तुम्हारे बधके निमित्त जल समूहसे प्लवमान घोर अशनि यथा स्थानमें स्थापित किया है, उसे करे, उससे तुम भयभीत न होना; क्यों कि अग्निदेव तुम्हारी सब भांतिसे रक्षा करेंगे तथा समस्त कामना पूर्ण करेंगे।

मरुत्त बोले, हे विप्रवर! वायुके सहित अशनिका यह महास्वनयुक्त भयङ्कर शब्द मेरे श्रवण-बिबिरमें प्रविष्ट होनेसे मेरा आत्मा बार बार व्यथित होता है, इसलिये किसी प्रकार भी मेरा स्वास्थ्य नहीं होता है।

सम्वर्त बोले, हे नरनाथ! इस उग्र बज्रसे तुम्हारा भय दूर होवे, मैं इसी समय वायु होकर बज्रको निरस्त करता हूं, इसलिये तुम भय परित्याग करो और तुम्हारे मनमें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो; मैं उसे सिद्ध करूंगा।

मरुत्त बोले, हे विप्रवर! इन्द्र प्रत्यक्ष होकर यज्ञमें सहसा आके हवि प्रतिग्रह करें और देवगण अपना अपना यज्ञभाग ग्रहण करके सोमपान करें, मैं यही वर मांगता हूं।

सम्वर्त्त बोले, हे महाराज! आज मैं मन्त्रके द्वारा इन्द्रको सशरीर आकर्षण करता हूं, शीघ्रताके सहित देवताओंके द्वारा स्तूयमान वह इन्द्र मेरे मन्त्रके द्वारा आकर्षित होकर घोड़ोंके सहारे इस यज्ञमें आ रहा है, तुम प्रत्यक्ष इन्द्रको अवलोकन करो। तिसके अनन्तर देवराज उन सर्व्वोत्कृष्ट घोड़ोंको रथमें युक्त करके देवताओंके सहित अचिन्तितपुत्र अप्रमेयात्मा मरुत्तके यज्ञमें आके सोमपान करने लगे। मरुत्तने पुरोधा सम्वर्त्तके साथ देवताओंके सहित समागत इन्द्रको देखके उठकर अभिवादन करके प्रसन्न चित्तसे शास्त्रके अनुसार देवराजको उत्तम रीतिसे कुशल आदि पूंछके पूजा की और सम्वर्त्त देवराजसे स्वागत प्रश्न करने लगे।

सम्वर्त बोले, हे पुरुहूत! आपका कुशल है न? हे विद्वन्! आज आपके यहां आनेसे यह यज्ञ अत्यन्त ही शोभित हुआ। हे बलवृत्तघ्न! इसलिये आज आप मेरे द्वारा तैयार हुए, यह सोम फिर पान करिये।

मरुत्त बोले, हे सुरेन्द्र! आपको नमस्कार है, आप कुशलनेत्रसे मुझे देखिये; इस यज्ञमें आपके आनेसे मेरा जीवन सफल हुआ। हे सुरराज! बृहस्पतिके भाई यह विप्रश्रेष्ठ सम्वर्त्त मेरा यज्ञ करते हैं।

इन्द्र बोले, हे नरनाथ! तुम्हारे गुरु बृहस्पतिके भ्राता तिग्म तेजस्वी तपोधन सम्वर्त्तको मैं जानता हूं, इनके आह्वानसे ही मुझे आना पड़ा है। आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ, तुम्हारे विषयमें जो मेरा कोप था, वह नष्ट हुआ।

सम्वर्त्त बोले, हे देवराज! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो स्वयं यज्ञका विधान कहिये और स्वयं समस्त करिये। हे देव! इन सब लोकोंको देवराजकृत जानिये।

व्यासदेव बोले, इन्द्रने आङ्गिरापुत्र सम्वर्त्तका ऐसा वचन सुनकर स्वयं देवताओंको आज्ञा दी, कि तुम लोग चित्रितकी भांति सुन्दर अत्यन्त उत्कृष्ट एक हजार गृह और सभा तैयार करो। गन्धर्व्वों और अप्सराओंके चढ़नेके लिये शीघ्र ही समस्त सामान स्थूल तथा दृढ़ करो; यज्ञ बाटके जिस स्थानमें अप्सरावृन्द नृत्य करेंगी, उसे स्वर्गकी भांति सुसज्जित करो। हे नरेन्द्र! स्वर्गवासी देववृन्द इन्द्रकी आज्ञानु-

सार शीघ्र ही उस कार्य्यमें नियुक्त हुए। अनन्तर इन्द्र पृथ्वीपति मरुत्तसे बोले, हे महाराज! मैं तुम्हारी पूजासे परम प्रसन्न हुआ। हे नरेन्द्र! इस स्थानमें तुम्हारे सङ्ग मेरे मिलनेसे आपके सब पूर्व्वपुरुषों और देवताओंने सन्तुष्ट होकर तुम्हारी हवि प्रतिग्रह की है। हे महाराज! इस समय ब्राह्मणश्रेष्ठगण, अग्निदेव सम्बन्धीय लोहितवर्ण और विश्वदेव सम्बन्धीय बहुरूप तथा नीलवर्ण चलच्छिश्न पवित्र विधिबोधित वृषभ बध करें।

हे महाराज! तिसके अनन्तर पृथ्वीपति मरुत्तका यज्ञ बर्द्धित होने लगा। उस यज्ञमें स्वयं देवगण अन्न ग्रहण करने लगे और हरिमान् देवराज उस यज्ञमें सदस्य हुए। अनन्तर प्रज्वलित अग्निसदृश महात्मा सम्वर्त्तने चैत्यगत होकर ऊंचे स्वरसे देवताओंको आवाहन करके प्रसन्नचित्तसे अग्निमें घृताहुति प्रदान की। अनन्तर बलसूदन इन्द्रने पहले सोमपान किया और अन्य सब सोमपीनेवाले देवताओंने इन्द्रकी आज्ञानुसार पृथ्वीपति मरुत्तके सहित सुखपूर्व्वक सोमपान करके प्रसन्न और प्रीतियुक्त होकर प्रस्थान किया। अनन्तर शत्रुनाशन राजा मरुत्त कई स्थानोंमें सुवर्णका ढेर लगाकर ब्राह्मणोंको बहुतसा धन बांटते हुए धनाध्यक्ष कुवेरकी भांति विराजने लगे। अनन्तर उन्होंने उत्साहपूर्व्वक विविध वित्त खजानेमें अर्पित करके गुरुकी आज्ञानुसार वहांसे निवृत्त होकर समुद्र सहित वसुन्धराका शासन किया। हे नरेन्द्र! जिसके यज्ञमें बहुतसा सुवर्ण सञ्चित हुआ था, इस पृथ्वीपर वह ऐसे गुण सम्पन्न राजा थे। तुम उस सुवर्णको मंगाकर विधि विधान पूर्व्वक देवताओंका तर्पण करते हुए यज्ञको करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर सत्यवतीसुत वेदव्यासका वचन सुनकर प्रसन्न होके उस धनसे यज्ञ करनेका निश्चय करके मन्त्रियोंके सङ्ग फिर विचार करने लगे।

१० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिर अद्भुत कर्म्मा वेदव्यासका ऐसा वचन सुन चुके, तब महातेजस्वी वासुदेव कहने लगे। वृष्णिकुलोद्वह कृष्ण धर्म्मपुत्रपृथानन्दन राजा युधिष्ठिरको बन्धु तथा स्वजनोंके मारे जानेसे धुएंयुक्त अग्नि और राहुग्रस्त सूर्य्यकी भांति निष्प्रभ दीनचित्त तथा खिन्नमन देखकर आश्वास वचनके सहारे आश्वासित करते हुए कहनेको उद्यत हुए।

श्रीकृष्ण बोले, हे राजन्! सब भांतिकी कुटिलता मृत्युको आस्पद और सब प्रकारकी सरलता ब्रह्मपद है; इतना ही ज्ञानका विषय है, मनुष्यगण विशेष रीतिसे इसे जाननेसे कुछ भी प्रलाप नहीं कर सकते। हे महाराज! आपके कर्म्म निःशेषित और शत्रुगण पराजित नहीं हुए, क्योंकि आप निज शरीरमें रहनेवाले शत्रुको नहीं जान सकते हैं। इसलिये मैं आपके समीप यथाधर्म्म तथा यथाश्रुत इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धका वृत्तान्त वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! पहले समयमें वृत्रासुरके द्वारा पृथ्वी व्याप्त होनेसे गन्धका विषय हृत तथा पृथ्वी हरणजनित दुर्गन्ध उत्पन्न हुई; उसे देखकर इन्द्र वृत्रके ऊपर क्रुद्ध हुए। अनन्तर इन्द्रने क्रुद्ध होकर उसके ऊपर बज्र चलाया, वृत्र उस अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रके बज्रसे बहुत ही घायल होकर जलमें प्रविष्ट हुआ वृत्रके द्वारा जल संगृहीत तथा जलका विषय रस अपहृद होनेपर इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर बज्र छोड़ा। तब वृत्र उस अमिततेजस्वी इन्द्रके बज्रसे अत्यन्त घायल होकर सहसा अग्निके बीच प्रविष्ट हुआ। अनन्तर वृत्रने अग्निके बीच प्रवेश करके तेजग्रहण तथा तेजके विषय रूपको

हरण किया ; तब इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र छोड़ा। अनन्तर वृत्रासुरने अमित-पराक्रमी बलसूदनके वज्रसे बध्यमान होकर सहसा वायुके बीच प्रवेश किया। उस समय वृत्रासुरके द्वारा वायु व्याप्त और वायुका विषय स्पर्श अपहृत होनेपर फिर इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र चलाया। अनन्तर वृत्रासुर अमित-तेजस्वी इन्द्रके वज्रसे घायल होकर आकाशमें गया। उसके अनन्तर वृत्रासुरके द्वारा आकाश व्याप्त और आकाशका विषय शब्द अपहृत होनेपर इन्द्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर वज्र चलाया। तब वृत्रासुरने अमिततेजस्वी इन्द्रके वज्रसे घायल होकर सहसा उन्हें ही ग्रहण किया और इन्द्र वृत्रासुरके द्वारा पकड़े जानेपर महान् मोहको प्राप्त हुए। हे तात भरतर्षभ! हमने ऐसा सुना है, कि जब इन्द्र वृत्रासुरके द्वारा पकड़े जानेपर अत्यन्त विमोहित हुए उस समय वसिष्ठने उन्हें सावधान किया, तब उन्होंने अदृश्य वज्रके सहारे निज शरीरस्थ उस वृत्रासुरका बध किया। हे जननाथ! तुमने जिस विषयको सुना, इस धर्म्म रहस्यको इन्द्रने पहले महर्षियोंके निकट और महर्षियोंने मेरे समीप वर्णन किया था।

११ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज! शारीरिक और मानसिक, ये दो प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होती हैं, परन्तु परस्परके सहयोगसेही उनकी उत्पत्ति हुआ करती है। जो व्याधि शरीरसे उत्पन्न होती है, वह शारीरिक और जो मनसे उत्पन्न होती है, वह मानसिक कहाती है। हे राजन्! सर्द्दी, गर्म्मी, अर्थात् कफ और पित्त, तथा वायु, ये शरीरके गुण हैं, इन गुणोंको साम्यावस्थाको ही पण्डित लोग स्वस्थ शरीरका लक्षण कहा करते हैं। परन्तु शर्द्दी-गर्म्मी अर्थात् कफ और पित्त, इन दोनोंके बीच एकको अधिकता होनेसे इतरवर्द्धक औषधादिके सहारे उससे उत्पन्न हुए दोषोंको दूर करे। सत, रज और तम, ये तीनों ही आत्म-गुण कहके वर्णित हुए हैं, इन तीनों गुणोंको साम्यावस्थाको ही पण्डित लोग स्वास्थ्य कहा, करते हैं, परन्तु इनके बीच अन्यतमको वृद्धि होनेपर उसके शान्तिको उपाय करना चाहिये। हे महाराज! शोकसे हर्ष और हर्षसे शोकमें बाधा हुआ करती है। कोई दुःखमें वर्त्तमान रहके सुखको स्मरण और कोई सुखमें वर्त्तमान रहके दुःखको स्मरण करनेकी इच्छा करते हैं, हे कौन्तेय! परन्तु आप सुखदुःखरूपी दोनों व्याधियोंसे रहित होकर सुख वा दुःख किसीकी भी इच्छा नहीं करते हैं, तब क्या आप दुःखविभ्रमसे और कुछ इच्छा करते हैं? हे पृथापुत्र! अथवा यह दुःखित्वादिही आपका स्वभाव है, क्यों कि इसहीके द्वारा आप आकर्षित होते हैं। हे महाराज! आपने जो पाण्डवोंके सम्मुखमें रजस्वला एकवस्त्रवाली द्रौपदीको सभाके बीच आती हुई देखा था; इस समय उसे स्मरण करना आपको उचित नहीं है। नगरसे प्रवासित होना, मृगछाला, पहरना महावनके बीच निवास, जटासुरसे क्लेश मिलना चित्रसेनके सङ्ग संग्राम, सैन्धवके द्वारा क्लेश भोगना, अज्ञातबासमें कीचकका द्रौपदीको लात मारना और भीष्म तथा द्रोणके सङ्ग युद्ध, इन विषयोंका अब आप स्मरण न करिये। हे अरिंदमन! अकेले मनके सङ्ग युद्ध करना होता है ; इस समय आपके लिये वही युद्ध उपस्थित हुआ है। हे भरतर्षभ! इसलिये आप युद्धके निमित्त मनके सम्मुख होकर याग और निज कर्म्मोंके सहारे उस अव्यक्तरूप मनको जीतकर उससे पार होइये। हे महाराज! जिस युद्धमें बाण, सेवक और बान्धवोंकी आवश्यकता नहीं है, केवल मनके सङ्ग युद्ध करना होता है, इस समय आपके लिये वही युद्ध उपस्थित हुआ

है। उस युद्धको न जीतनेसे आपको दुःखको बाहुल्यता प्राप्त होगी। हे कुन्तीनन्दन! इसलिये आप इसे जानकर कार्य्य करनेसे कृतकार्य्य होंगे, हे महाराज! आप इस बुद्धि और प्राणियोंकी गति तथा अगतिको विशेष रीतिसे निश्चय करते हुए पितृ पितामह वृत्तिके अनुवर्ती होकर यथा उचित राज्यशासन करिये।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे भारत! बाह्यराज्यादि परित्याग करनेसे सिद्धि अर्थात् मोक्ष नहीं होती; शारीरिक कामादिको परित्याग करनेसे ही मोक्ष हुआ करती है; परन्तु शुष्क वैराग्ययुक्त विवेकविहीन मनुष्योंका मोक्ष विषयमें निश्चय नहीं है। बाह्यवस्तु राज्यादिमें विरक्ति और शारीरिक वस्तु कामादिमें आसक्तियुक्त पुरुषोंको जो धर्म्म और सुख होता है, शत्रुओंको वही प्राप्त होवे। संसार विषयमें ममतारूप द्व्यक्षर मृत्यु कहके वर्णित हुआ है और संसार विषयमें निर्म्ममतारूप त्र्यक्षर शाश्वत ब्रह्म कहा गया है। हे महाराज! वह ब्रह्म और मृत्यु दोनोंही अदृश्य भावसे मनुष्यचित्तके बीच विद्यमान रहके प्राणियोंको युद्धमें प्रवर्त्तित किया करते हैं। हे भारत! यदि इस जगत्‌में अविनाश, निश्चित होता तो कोई किसी प्राणीका शरीर भेद करनेसे उसे हिंसाजनित पाप न भोगना पड़ता। हे पृथापुत्र! यदि कोई स्थावर जङ्गमोंके सहित समस्त पृथ्वीको पाके उसमें ममता न करता, तो यह पृथिवी उसके लिये फलदायिनी न होती और जो लोग वनवासी होकर वनके फलमूलोंसे जीविका निर्व्वाह करते हुए, बाह्यवस्तु राज्यादिमें ममता करते हैं, वे मृत्युमुखमें वास किया करते हैं। हे भारत! आप ध्यानयोगसे बाह्य तथा आन्तरिक शत्रु, राज्य और कामादिक मायामयस्वरूप स्वभाव अवलोकन करिये। जो लोग इस अनादि मायामय स्वभावको विशेष रीतिसे जान सकते हैं, वेही महाभयङ्कर संसारसे मुक्त हुआ करते हैं, लोकसमाज कामनावान् पुरुषको प्रशंसा नहीं करता और इसलोकमें कामना सबके मनको अङ्गभूत होनेसे कामनाके विना किसी विषयमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिये योगवित् पण्डित लोग बार बार जन्मके अभ्यासयोगसे शुद्धचित्त होकर सदा श्रेष्ठ मोक्षमार्गका ध्यान करते हुए समस्त कामना संहार किया करते हैं। जो मनुष्य "ये जो कामना करते हैं, वह धर्म्म नहीं है," इसे विशेष रीतिसे जानके कामनापूर्व्वक व्रत, यज्ञ और ध्यान योगका अनुष्ठान नहीं करते, वे कामनानिग्रहको ही धर्म्म और मोक्ष मूल समझते हैं। हे युधिष्ठिर! परन्तु इस विषयमें कामके दुरुच्छेद्यत्ववादी पुराण जाननेवाले पण्डित लोग कामगीत बहुतसी गाथा कहा करते हैं। मैं आपके समीप गाथा पूरी रीतिसे कहता हूं सुनिये।

काम कहता है, निर्म्ममता और योगाभ्यासरूपी उपायके अतिरिक्त कोई प्राणी भी मुझे जीतनेमें समर्थ नहीं होता, जो कामवान मनुष्य मनके बीच मेरे बलको मालूम करके वागादि इन्द्रियसाध्य जपादिरूपी शस्त्रसे मुझे नष्ट करनेके लिये यत्नवान होता है, मैं उसके चित्तमें "मैंही सबसे उत्कृष्ट और जपकर्त्ता हूं,—इसही प्रकार अभिमान रूपसे प्रकट होकर उसके जपादिको विफल किया करता हूं। जो पुरुष विविध दक्षिणायुक्त यज्ञके सहारे मुझे जीतनेमें प्रयत्नवान होता है, उत्तम योनिमें उत्पन्न हुए धर्म्मात्मा मनुष्यकी भांति मैं उसके चित्तमें दक्षादि रूपसे फिर प्रकट हुआ करता हूं। जो पुरुष वेद और वेदाङ्ग साधनके द्वारा मुझे विनष्ट करनेके लिये प्रयत्नवान होता है, स्थावरयोनिमें अनभिव्यक्त रूपसे उत्पन्न हुए जीवोंकी भांति मैं उसके चित्तके बीच प्रकट हुआ करता

हूं । जो सत्यपराक्रम मनुष्य धैर्य्यके सहारे मुझे जीतनेके लिये यत्नवान् होता है, मैं उसके समीप चित्तरूपसे प्रकट होता हूं; इसलिये वह मुझे नहीं जान सकता। जो संशितव्रत मनुष्य तपस्याके द्वारा मुझे जीतनेके निमित्त यत्नवान होता है, मैं उसके चित्तमें तपरूपसे उत्पन्न होता हूं, इसलिये वह मुझे नहीं जान सकता, जो पण्डित पुरुष नित्य मुक्त आत्माको न जानकर मोक्षके निमित्त मोक्षमार्ग अवलम्बन करके मुझे नष्ट करनेके लिये यत्नवान होता है, मैं सब प्राणियोंसे अवध्य सनातन अद्वितीय उस मोक्षरतिस्थ मूर्ख पुरुषकी उपहास करते हुए उसके समीप नृत्य किया करता हूं।”

हे महाराज! जब निष्कामपूर्व्वक योगाभ्यासके अतिरिक्त कामजय करनेका दूसरा उपाय नहीं दीखता है, तब उस कामको परित्याग करके विविध दक्षिणायुक्त यज्ञका अनुष्ठान करनेसे ही आपकी कल्याणसिद्धि होगी; इसलिये आप निष्काम होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त वाजिमेध तथा दूसरे प्रकारके सदक्षिणा यज्ञका अनुष्ठान करिये। आप युद्धमें मरे हुए बान्धवोंको बार बार स्मरण करके वृथा दुःखित न होइये। जो लोग इस रणभूमिमें मारे गये हैं, आप अब उन्हें फिर न देख सकेंगे। इसलिये आप शोक सम्वरण करके दक्षिणायुक्त महायज्ञके द्वारा देवताओंकी पूजा करनेसे इसलोकमें अनुत्तम यश पाके उत्कृष्ट गति लाभ कर सकेंगे।

१३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हतवन्धु राजर्षि युधिष्ठिर उन तपोधन मुनियोंके द्वारा ऐसे ही अनेक प्रकारके वाक्यके सहारे पूरी रीतिसे आश्वासित हुए। हे पार्थिव! विभु धर्म्मराजने भगवान विष्टरश्रवा, द्वैपायन, कृष्ण, देवस्थान, नारद, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, बुद्धिमान् अर्ज्जुन तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों और शास्त्रदर्शी ब्राह्मणोंके द्वारा अनुनीत होकर मानसिक शोकसन्ताप और दुःख परित्याग किया। अनन्तर धर्म्मात्मा युधिष्ठिरने बान्धवोंका मासिक प्रभृति प्रेतकार्य्य पूरा करके देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा करते हुए समुद्र सहित पृथ्वीको अपने वशमें किया। कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर निज राज्य पाकर प्रशान्तचित्तसे व्यास नारद तथा अन्यान्य मुनियोंसे कहने लगे, कि आप लोग मुनियोंके बीच प्रधान, पुरातन और प्राचीन हैं, इसलिये आप लोगोंके द्वारा आश्वासित होनेसे अब मुझे अणुमात्र भी दुःख नहीं है। विशेष करके जिसके सहारे देवताओंकी पूजा करना होगी, वह महान् अर्थ भी मुझे प्राप्त हुआ है; इससे आज हम आप लोगोंको अगाड़ी करके यज्ञ करेंगे। हे द्विजसत्तम पितामह! हमने सुना है, कि वह स्थान अत्यन्त ही आश्चर्य्ययुक्त है; इसलिये जिस प्रकार हम आप लोगोंके द्वारा रक्षित होकर हिमालय पर्व्वतपर जा सकें वैसा ही उपाय करिये। हे विप्रर्षि! हमारा वह यज्ञ आप लोगोंके ही अधीन होरहा है और भी भगवान देवस्थान तथा देवर्षि नारदने बहुतसा कल्याण युक्त वचन कहा है; कोई भाग्यहीन मनुष्य व्यसनमें पड़के साधुसम्मत सुहृत् तथा इस प्रकार गुरु लाभ नहीं कर सकता। अनन्तर वे महर्षिगण राजा युधिष्ठिरका ऐसा वचन सुनके उन्हें और कृष्ण अर्ज्जुनको हिमालय पर्व्वतपर जानेकी आज्ञा देकर सबके सम्मुखमें वहीं अन्तर्द्धान हुए और धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर उस स्थानमें बैठे। उस समय पाण्डवगण भीष्मकी मृत्यु होनेपर उनका शोचकर्म्म करने लगे, उन लोगोंका वह अत्यन्त दीर्घसमय अतिवाहित न हुआ। कुरुसत्तम युधिष्ठिरने भीष्म और कर्ण आदि कौरवोंके ऊर्द्ध्वदैहिक कार्य्य पूरा करके ब्राह्मणोंको महत् दान प्रदान किया और फिर

उन्होंने धृतराष्ट्रके सहित और्द्ध्वदैहिक कार्य्य करके ब्राह्मणोंको बहुतसा धन दान किया। अनन्तर वह प्रश्चात् पिता धृतराष्ट्रको अगाड़ी करके धौरज देते हुए हस्तिनापुरमें प्रवेश करके भाइयोंके सहित पृथिवी शासन करने लगे।

१४ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजयने वैशम्पायन मुनिसे पूंछा, हे द्विजसत्तम! पाण्डवोंके द्वारा राष्ट्र विजित और प्रशान्त होनेपर महावीर वासुदेव और धनञ्जयने क्या किया?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! पाण्डवोंके द्वारा राष्ट्र जित और प्रशान्त होनेपर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अत्यन्त हर्षित होकर सुरपुरमें प्रविष्ट दो सुरपति तथा नन्दन काननविहारी दोनों अश्विनीकुमारोंकी भांति हृष्ट अन्तःकरणसे विचित्रवन, पर्व्वत सानु, उत्तमपुण्ययुक्त तीर्थ, पल्वल तथा नदीके बीच विचरते हुए विहार करने लगे। हे भारत! महात्मा कृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुन दोनोंने इन्द्रप्रस्थमें अनेक प्रकार क्रीड़ा करते हुए सभाके बीच प्रविष्ट होकर विहार करने लगे। उस सभाके बीच वे लोग अनेक प्रकारकी वार्त्ता करते हुए युद्धके क्लेशोंको वर्णन करने लगे। उस समय पुराण ऋषिसत्तम महात्मा कृष्ण अर्जुन दोनोंही परम प्रसन्न होकर ऋषियों तथा देवताओंका वंश कहने लगे। निश्चयज्ञ केशिनिसूदन कृष्ण सहस्रों स्वजनों और पुत्रशोकसे सन्तापित पृथा पुत्र अर्जुनकी विचित्र अर्थप्रद और निश्चययुक्त मधुर वचनसे सान्त्वना की, विज्ञानज्ञ महातपस्वी कृष्ण अर्जुनको विधिपूर्व्वक आश्वासित करके मानो शरीरका बोझा हरकर विश्राम करने लगे।

तिसके अनन्तर वाक्यकी समाप्ति होनेपर गोविन्द गुड़ाकेश अर्जुनका मधुरवचनके सहारे सान्त्वना करते हुए हेतुयुक्त वचन कहना आरम्भ किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे शत्रुतापन सव्यसाचिन्! राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे बाहुबलके अवलम्बनसे इस समुद्र सहित पृथ्वीको जय किया है। हे नरोत्तम! भीमसेन और यमज नकुल सहदेवके प्रभावसे धर्म्मराज असपत्न पृथ्वीभोग करते हैं। हे धर्म्मज्ञ! धर्म्मराजने धर्म्मबलसे ही अकण्टक राज्य पाया है और धर्म्मबलसे ही युद्धमें राजा सुयोधनको मारा है। हे कुरुद्वह! अधर्म्माभिलाषी सदा अप्रिय वचन कहनेवाले लोभी दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्रोंके बान्धवोंके सहित युद्धभूमिमें सोनेपर धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर अखिल प्रशान्त भूमण्डल भोग करते हैं और मैं भी तुम्हारे सङ्ग वनके बीच क्रीड़ा करता हूं। हे अमित्रकर्षण! मैं तुमसे अधिक क्या कहूं,—तुम पृथा, धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, महाबली भीम और माद्रवतीपुत्र नकुल-सहदेव तुम लोग जहांपर रहते हो, उसही स्थानमें मेरा अत्यन्त ही अनुराग हुआ करता है। हे अनघ! स्वर्गतुल्य रमणीय पुण्यजनक सभाओंके बीच मुझे तुम्हारे सङ्ग रहते हुए बहुत समय बीत गया। वसुदेव, बलदेव और वृष्णिपुङ्गव पुरुषोंको बहुत कालतक न देखनेसे मुझे द्वारकापुरीमें जानेके लिये अत्यन्त ही अभिलाष हुई है; हे पुरुषश्रेष्ठ! इसलिये मेरे जानेमें तुम्हें सम्मत होना योग्य है। जब राजा युधिष्ठिर अत्यन्त शोकार्त्त हुए, तब उस शोककी निवारण करनेके लिये भीष्मके सहित हम लोगोंने उन्हें अनेक प्रकारकी युक्तियुक्त उपदेश वचन कहे थे। महात्मा युधिष्ठिर हम लोगोंके शास्ता और पण्डित होनेपर भी हमने उन्हें जो अनुशासन वाक्य कहा था, उन्होंने उस वाक्यमें अवहेला न करके पूरी रीतिसे ग्रहण किया है। धर्म्मपुत्रके अत्यन्त धर्म्मज्ञ कृतज्ञ तथा सत्यवादी होनेसे उनका धर्म्म तथा उत्कृष्ट बुद्धि और मर्य्यादा कभी भी विचलित न होगी।

हे अर्ज्जुन ! यदि तुम मेरे जानेमें सम्मत हो, तो महात्मा प्रजानाथ युधिष्ठिरके निकट जाकर उनसे मेरे जानेकी बात कहो । हे महाबाहो ! उनकी सम्मतिके अतिरिक्त मैं किसी कार्य्यको नहीं कर सकता, द्वारकापुरीमें जाना तो दूर रहे, मेरे प्राणत्यागका समय उपस्थित होनेपर भी मैं उनके अनभिलषित कार्य्यको नहीं कर सकता । हे पृथापुत्र ! मैं तुम्हारा प्रीतिकर तथा हिताभिलाषी होनेसे यह सब सत्य वचन कहा है, इसे कदापि मिथ्या न समझना । हे अर्ज्जुन ! देखो, सबल, सपद और अनुयाइयोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्र सुयोधनके मारे जानेसे इस समय यहांपर मेरे वास करनेका प्रयोजन निवृत्त हुआ है । हे तात ! पर्व्वत, बन और काननयुक्त अनेक भांतिके रत्नोंसे परिपूर्ण समुद्र सहित पृथ्वी धर्म्मपुत्र धीमान् धर्म्मज्ञ राजा युधिष्ठिरके वशमें हुई है ; इस समय वह अनेक भांतिसे महानुभाव सिद्धोंके द्वारा उपासित और बन्दिजनोंसे सदा स्तुत होकर धर्म्मपूर्व्वक इस समस्त पृथिवीको पालन करें । आज तुम मेरे सङ्ग कुरुबर्द्धन राजा युधिष्ठिरके समीप चलके उनसे मेरे द्वारकागमनका विषय पूछो । हे पार्थ ! वह कुरुपति महाबुद्धिमान युधिष्ठिर मेरे माननीय और प्रिय हैं, मैंने यह अपना शरीर तथा गृहस्थित सारा धन उन्हें अर्पण किया है । हे नृपनन्दन ! जब यह पृथ्वी तुम्हारे और उत्तम चरितवाले गुरु युधिष्ठिरके वशमें हुई है, तब तुम्हारे अतिरिक्त यहांपर मेरे रहनेका कुछ भी कारण वा प्रयोजन नहीं है । हे पार्थिव ! उस समय अमितपराक्रमी अर्ज्जुनने महात्मा कृष्णका ऐसा वचन सुनके उनका पूरी रीतिसे सत्कार करके दुःखपूर्व्वक कहा कि "ऐसा ही होगा ।"

१५ अध्याय समाप्त ।

अनुगीतापर्व्व आरम्भ ।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्र ! महात्मा केशव और अर्ज्जुनने शत्रुओंको मारके उस सभाके बीच निवास करते हुए कौनसी कथा कही थी ?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज ! पृथापुत्र अर्ज्जुन निज राज्य पाकर हर्षपूर्व्वक कृष्णके सङ्ग उस सभामें बिहार करने लगे । अनन्तर प्रहृष्टचित्त केशव और अर्ज्जुनने स्वजनोंमें घिरकर इच्छानुसार स्वर्गस्थानसदृश किसी सभामण्डपमें गमन किया । अनन्तर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन कृष्णके सहित उस रमणीय सभाको देखके अधिक सन्तुष्ट होकर उनसे यह वचन बोले । हे महाबाहो देवकीतनय ! उपस्थित संग्रामके समयमें आपका वह ईश्वरस्वरूप और माहात्म्य मुझे विशेष रीतिसे विदित हुआ है । हे केशव ! पहले आपने सुहृदता पूर्व्वक मुझसे जो सब कथा कही थी, मेरा चित्तभ्रंश होनेसे वे सब विषय भूल गये हैं । हे माधव ! आप भी शीघ्र द्वारकामें जायेंगे, परन्तु उन विषयोंको फिर सुननेकी मुझे अभिलाष होती है ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी वाग्मिवर श्रीकृष्ण फाल्गुन अर्ज्जुनका ऐसा वचन सुनके उन्हें आलिङ्गन करके कहने लगे ।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ ! तुमने मेरे समीप समस्त गुप्तविषयोंको सुना है और स्वरूपयुक्त सनातन धर्म्म तथा शाश्वत लोकोंको जाना है । तुमने भूलतासे जो मेरे कहे हुए वचनको ग्रहण नहीं किया, वह मुझे अत्यन्त अप्रिय हुआ है ; क्यों कि आज मेरी वह स्मृति फिर न प्रकट होगी । हे पाण्डुपुत्र ! इसलिये मुझे निश्चय बोध होता है, कि तुम दुर्म्मेधा तथा श्रद्धाहीन हो ; अब मैं उन विषयोंको तुमसे अशेषरूपसे कहनेमें समर्थ नहीं होता हूं । हे धनञ्जय ! ब्रह्मपद बिज्ञानमें वह धर्म्म ही यथेष्ट है, मैं फिर तुमसे पहलेकी भांति उसे

अशेष रूपसे नहीं कह सकता हूं। पहले मैंने योगयुक्त होकर तुमसे उस परब्रह्मका विषय कहा था; अब उस विषयमें पुरातन इतिहास कहता हूं। हे धार्म्मिकवर! तुम वैसी बुद्धि अवलम्बन करनेसे श्रेष्ठ गति लाभ कर सकोगे; इसलिये तुम सावधान होकर मेरा समस्त वचन सुनो।

हे अरिदमन! एक बार कोई दुर्धर्ष ब्राह्मण स्वर्ग और ब्रह्मलोकसे मेरे पास आया, मैंने उसकी पूजा करके धर्म्मविषय पूछा। उसने दिव्यविधिके अनुसार मुझसे जो कहा था, तुम विचार न करके उसे सुनो।

ब्राह्मण बोला, हे कृष्ण! तुम प्राणियोंके विषयमें अनुकम्पा करके मोक्षधर्म्म अवलम्बन पूर्व्वक मोहच्छेद करो; तुमने मुझसे जो विषय पूछा, है, उसे मैं यथावत् कहता हूं, सावधान होके सुनो। तपस्वी धर्म्मवित्तम काश्यप नाम किसी विप्रने धर्म्मसमूहके आगमज्ञ किसी द्विजवरको पाया था। मेधावी विप्रवर काश्यपने गतागत विषयोंमें अधिक ज्ञानविज्ञान-पारग, लोकतत्वार्थ कुशल, सुख दुःखके तात्पर्य्य और जन्ममरणके तत्त्वज्ञ, पाप-पुण्य कोविद, ऊंच-नीच द्रष्टा, कर्म्मविद देहधारियोंके गतिज्ञ, मुक्तवत् विचरणशील, सिद्ध, प्रशान्त, संयतेन्द्रिय ब्रह्मतेजसे दिप्यमान, सर्व्वत्रगामी और अन्तर्द्धान गतिज्ञ उस द्विजवरको यथार्थ रीतिसे जानकर तथा अन्तर्हित चक्रधर सिद्धगणके सहगामी, एकान्तमें सम्भाषमाण उन लोगोंके सङ्ग समासीन, पवनकी भांति यदृच्छाचारी धर्म्मकाम उस द्विजवरके वैसे अत्यन्त महत् अद्भुत कार्य्यको अवलोकन करके विस्मित होकर रहती परि-चर्य्याके सहारे उनका परितोष किया। हे परन्तप! काश्यपके विशुद्ध चित्तसे शास्त्र और सच्चरित्रयुक्त सिद्ध द्विजवरको गुरुभक्तिके सहारे सन्तुष्ट करनेसे उसका वह कार्य्य युक्तियुक्त हुआ था। हे जनार्द्दन! वह सिद्ध द्विजवर शिष्य काश्यपकी परमा सिद्धिकी पर्य्यालोचना करते हुए उसपर परितुष्ट होकर प्रसन्नचित्तसे उससे जो विषय कहा था, उसे तुम मेरे समीप सुनो।

सिद्ध बोला, हे तात! मनुष्य विविधकर्म्मोंके सहारे इस लोकमें गति और केवल पुण्ययोगके द्वारा देवलोकमें संस्थिति लाभ किया करते हैं। परन्तु कहीं उन लोगोंको किसी प्रकारका अत्यन्त सुख वा शाश्वती स्थिति-लाभ नहीं होता, बल्कि दुःखसे प्राप्त हुए अत्युच्च स्थानसे बार बार उनका पतन ही होता है।

हे अनघ! मैंने विषयतृष्णासे मोहित, काम तथा मन्युयुक्त होकर बहुतसे पापकार्य्योंका अनुष्ठान करते हुए अनेक प्रकारकी कष्टाकरी अशुभगति पाई है; बार बार जन्म-मरणकी दुःख पीड़ा सही है, विविध आहार भोजन, अनेक प्रकारके स्तनपान, विविध माता और पृथग्विध पितादर्शन तथा विचित्र सुख और दुःख भोग किये हैं। मैंने बहुतेरे प्रियजनोंके सहित विवास तथा अप्रियजनोंके सहित संवास किया है, बहुत कष्टसे जो सब धन अर्ज्जन किया था, उसे भी नष्ट किया है। राजा और स्वजनोंसे अवमान, क्लेश, शारीरिक और मानसिक दारुण वेदना, अत्यन्त विमानता तथा दारुण बधबन्धनको प्राप्त कर चुका हूं। मैं नरकगमन, यमगृहकी यन्त्रणा और मैंने इस लोकमें सदा जरा, रोग विविध व्यसन प्रभृति अनेक प्रकारके द्वन्द्वज दुःखोंको अनुभव किया है। उसके अनन्तर किसी समयमें मैंने दुःखसे अत्यन्त आर्त्त होकर वैराग्य और निराकार ब्रह्मभाव अवलम्बन करते हुए इस लोकतन्त्रको परित्याग किया है। मैंने इस लोकमें सब विषयोंको भोगकर अन्तमें इस योगमार्गका अनुष्ठान करते हुए मनके प्रसादसे ऐसी अन्तर्द्धान आदि सिद्धि लाभ की है; इसलिये अब मैं इसलोकमें न आऊंगा और सब लोकोंको अवलोकन करूंगा। हे द्विजश्रेष्ठ! समस्त प्रजाकी सृष्टिसे

मोक्ष पर्य्यन्त आत्माकी शुभगति प्राप्त होनेसे मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हुई है, इसके अनन्तर मैं ब्रह्माका परमपद पाऊंगा, इसमें तुम कुछ भी सन्देह मत करो। हे परन्तप! मैं अब इस लोकमें आके मर्त्यलोकका दर्शन न करूंगा। हे महाप्राज्ञ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये कहो, तुम्हारे निमित्त क्या करूं, यदि तुम्हें कुछ अभिलाष हो, तो वह सिद्ध होगो; उसका यही समय उपस्थित हुआ है। तुम जिस लिये मेरे समीप आये हो, उसे मैंने जाना है; मैं थोड़े ही समयके बीच चला जाऊंगा, इसी लिये तुम्हें आदेश करता हूं। हे बिचक्षण! मैं तुम्हारे स्वभावसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं; इसलिये मैं यह बचन कहता हूं, कि तुम्हारी जिसमें कल्याणकामना हो, मुझसे तुम वही पूछो। हे काश्यप! जब तुम मुझे जान सके हो, तब मैं तुम्हारी बुद्धिकी बड़ाई और प्रशंसा करता हूं और तुम्हें ही मेधावी बोध करता हूं।

१६ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण ब्राह्मणसे बोले, अनन्तर धार्म्मिकप्रवर काश्यपने उस सिद्ध द्विजवरके दोनों चरण ग्रहण करके उनसे सुदुर्व्वच प्रश्न किया; तब उन्होंने उससे सब धर्म्म कहा था।

काश्यप बोले, आत्मा किस प्रकार शरीर परित्याग करता है? किस प्रकार शरीर पाता और कष्टकर संसारमें आगमन करते हुए किस प्रकार उससे मुक्त होता है? प्रकृतिको परित्याग करके किस प्रकार उस शरीरको छोड़ता है और शरीरसे छूटनेपर किस भांति दूसरा शरीर ग्रहण करता है? यह मनुष्य किस प्रकार शुभाशुभ कर्म्मोंको भोग करता है और जब मनुष्य देहरहित होता है, तब उसके कर्म्म कहां निवास करते हैं?

ब्राह्मण बोला, हे वार्ष्णेय! सिद्धने काश्यपके पूछनेपर इन प्रश्नोंका जो उत्तर दिया था, उसे बिस्तारपूर्व्वक तुमसे कहता हूं, सुनो।

सिद्ध बोला, जीव वर्त्तमान शरीरसे आयु और कीर्त्तिकर जो सब कार्य्य करता है, अन्य शरीर ग्रहण करनेपर उन कार्य्योंके क्षय होनेसे क्षीणायु होकर बिपरीत कार्य्य करनेमें प्रवृत्त होता है और उसका बिनाश समय उपस्थित होनेपर बिपरीत बुद्धिके अनुवर्त्ती हुआ करता है; उस समय अपना सत्त्व बल तथा कालको न जानके आत्मज्ञानसे रहित होकर निजबिरुद्ध कर्म्मोंका पूर्ण रीतिसे आचरण करता है। जब जीवको अनेक प्रकारके बहुतेरे क्लेश उपस्थित होते हैं, उस समय उसे उन क्लेशोंको पूर्ण रीतिसे भोगना पड़ता है, कदापि नहीं भी भोगना पड़ता। अत्यन्त जीर्ण न होनेपर दुष्ट अन्न, मांस पीनेकी वस्तु तथा अन्यान्य बिरोधी गुरुतर बस्तुओंको अधिक परिमाणसे भोजन करता है। अधिक कसरत तथा व्यायाम सेवन करता है और सदा कर्म्मलोभसे उपस्थित वेगोंको धारण किया करता है। भोजन किये हुए अन्नका परिपाक समय उपस्थित न होनेपर रससे अभियुक्त अन्न तथा दिनमें स्वप्नकी सेवा करके स्वयं सब दोषोंको प्रकोपित किया करता है। इस ही प्रकार निज दोषोंको प्रकोपित करनेसे मरणान्तिक रोग लाभ करता तथा उद्बन्धन आदि बिपरीत कार्य्योंका अनुष्ठान किया करता है। इन्हीं कारणोंसे उस समय जीवके शरीरका नाश होता है, परन्तु जीवितका विषय मैं पूरी रीतिसे कहता हूं, उसे सुनो।

उष्मा तीव्र वायुके द्वारा सञ्चालित होकर शरीरमें प्रविष्ट होकर प्राणोंको रोध करती है, इसही प्रकार वह शरीरके बीच प्रकोपित और अत्यन्त बलवान होकर जीवस्थानके सब मर्म्मोंको भेद किया करती है; अनन्तर जीव उस समय पीडायुक्त होकर प्रकृतिसे च्युत

हुआ करता है। हे द्विजसत्तम! मर्म्मस्थानोंके काटनेसे जीव पीड़ासे व्यथित होकर शरीर परित्याग किया करता है। हे द्विजश्रेष्ठ! जीवगण जन्म मरणसे सदा संविग्न होनेपर भी शरीरको त्यागते हैं। गर्भका संक्रमण और मर्म्मोंका अत्यन्त विसर्पण होनेसे पुरुषको फिर उस ही प्रकार पीड़ा प्राप्त होती है, सन्धिस्थानोंके भिन्न होनेपर वह शरीरस्थ जलके सहारे क्लेशित होता है; इसलिये उस समय पञ्चभूतोंका मेल निराकृत होजाता है; तब शीतनिबन्धनसे वायु शरीरके बीच अत्यन्त कुपित हुआ करता है। पञ्चभूतोंके बीच जो वायु प्राण और अपान वायुके सङ्ग स्थित होता है, वह अत्यन्त कष्टसे शरीरको परित्याग करनेके निमित्त ऊर्द्धगामी हुआ करता है। जीव इसही प्रकार शरीर परित्याग कर उच्छ्वास, उष्मा, श्री और चेतरहित होकर लोगोंका दर्शनीय होता है। जब मनुष्य पूरी रीतिसे आत्मासे परित्यक्त होता है, तब लोग उसे मृतक कहा करते हैं। मनुष्य शरीर धारण करनेपर जिन स्रोतोंके द्वारा इन्द्रियार्थ समूह विदित होते हैं, उन्हीं स्रोतोंके सहारे आहारसम्भूत प्राण मालूम हुआ करता है। जो जीव उस शरीरमें प्राणको रक्षा कर सके उसे ही सनातन जानो। उस ही प्रकार किसी किसी सन्निपातमें जो जो युक्त रहता है, शास्त्रदृष्टिके अनुसार उसे ही मर्म्म जानना चाहिये। उन मर्म्मोंके भिन्न होनेपर जीव बाहर होकर जन्तुके हृदयमें प्रवेश करते हुए शीघ्र ही सत्त्वको निरोध किया करता है; उसके अनन्तर जीव सचेतन होनेपर कुछ भी नहीं जान सकता, मर्म्मोंके संवृत्त होनेपर तमके द्वारा संवृतज्ञान वही जीव निरधिष्ठान होकर वायुके सहारे सञ्चालित होता है। अनन्तर अत्यन्त उच्छ्वास परित्याग करते हुए निकलकर उस अचेतन शरीरको शीघ्र ही कम्पित किया करता है। जीव शरीरसे च्युत होकर अपने शुभकर्म्म, शुभ पुण्य तथा पापसे परिवृत हुआ करता है। पूरी रीतिसे शास्त्र निश्चयवान ज्ञानयुक्त ब्राह्मणगण उस कृतपुण्य कर्म्म और पापोंको लक्षणसे जानते हैं। ज्ञाननेत्रवाले सिद्धगण दिव्यनेत्रके द्वारा अन्धकारमें इधर उधर विलीयमान खद्योतकी भांति विलय प्राप्त जायमान यानिप्रविष्ट जीवका दर्शन किया करते हैं। शास्त्रके अनुसार वह जीव इसलोकमें विविध स्थानोंमें दीखता है। जन्तुगण जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, वह स्थान ही उनकी कर्म्मभूमि कहके वर्णित हुआ है। जीवगण उस ही कर्म्मभूमिसे निज कर्म्मके सहारे शुभ, अशुभ और उच्चावचभोगोंको प्राप्त करते हैं पापी मनुष्योंका निज कर्म्मसे इस लोकमें ही नरक प्राप्त होता है, जिस स्थानमें वे लोग क्लेशभोग करते हैं, वह अधोगति ही उनके लिये कष्टकर होती है। इस ही निमित्त मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है, उससे आत्माको सब भांतिसे रक्षा करनी चाहिये। इसलोकमें जीवगण ऊर्द्धगामी होकर जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उन स्थानोंका मैं तुमसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करता हूं, उसे सुनो।

जिस स्थानमें यह चन्द्रमण्डल और तारा विद्यमान हैं और जहांपर सूर्य्यमण्डल निज तेजसे प्रकाशित होता है, उन स्थानोंका मेरे समीप सुनके नैष्ठिकीबुद्धि अवलम्बन करके कर्म्मोंका निश्चय करो। पुण्यवान लोग कर्म्मके अनुसार इन सब स्थानोंमें गमन करते हैं, कर्म्म क्षय होनेपर वहांसे फिर पतित होते हैं, उस स्वर्गलोकमें भी ऊंचा, मध्यम और नीच, ऐसी ही विशेषता है; वहांपर जीवगण प्रकाशमान श्री देखकर सन्तुष्ट नहीं होते। यह सब गति पृथक् रीतिसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे द्विज! इसके अनन्तर मैं तुमसे गर्भकी उत्पत्ति कहता हूं, तुम सावधान होकर उसे सुनो।

१७ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, इसलोकमें शुभ और अशुभ कर्म्मोंका नाश नहीं होता, उस ही हेतुसे जीव गण कर्म्मोंके अनुसार वैसे ही देहको प्राप्त होकर सुख-दुःख भोग किया करते हैं। जैसे फलनेवाला वृक्ष बहुतसा फल प्रदान करता है, वैसे ही शुद्धमनसे किया हुआ पुण्य विपुल पुण्य प्रदान करता है और पापचित्तसे कृतपाप बहुत सा पाप प्रदान किया करता है; क्यों कि आत्मा मनको अगाड़ी करके कर्म्ममें प्रवृत्त होता है। मनुष्य काम और मन्युसे समावृत होकर कर्म्मके अनुसार जिस प्रकार गर्भमें प्रविष्ट होता है, उसे सुनो। शुक्र शोणितके सङ्ग मिलके स्त्रियोंके गर्भाशयमें जाकर शुभ कर्म्मज देहको प्राप्त होता है। परन्तु, वह जीव ब्रह्मवित् होनेपर उस शरीरसे शाश्वत ब्रह्मको जानके अभिलषित सिद्धि लाभ करते हुए सूक्ष्म और अव्यक्तभाववशसे किसी विषयमें ही संसक्त नहीं होता। वह शाश्वत ब्रह्म सब प्राणियोंका बीजस्वरूप है, इसलिये जीवगण उसहीके द्वारा जीवन धारण किया करते हैं। वह ब्रह्म जीवरूपसे गर्भके सब अवयवोंको विभागपूर्व्वक सञ्चार करते हुए चित्तउपाधि ग्रहण करके प्राणस्थानमें स्थित होकर अभिमान धारण करता है; अनन्तर वह गर्भ चेतनायुक्त होकर अङ्गोंको स्पन्दित किया करता है। जैसे लोहा द्रव ताम्र आदि आधारमें निषिक्त होकर बिम्बरूप विग्रह धारण करता है, जीवोंके गर्भ-प्रवेशको भी वैसा ही जानो। जैसे अग्नि लोहपिण्डमें प्रविष्ट होके उसे अत्यन्त ही तापित करती है, वैसे ही जीव गर्भमें प्रविष्ट होकर उस गर्भको चेतनायुक्त किया करता है। जैसे दीपक गृहके बीच प्रज्वलित होकर गृहको प्रकाशित करता है, वैसे ही जीव समस्त शरीरको चेतनायुक्त किया करता है। जीव इस शरीरसे जो कुछ शुभ वा अशुभ कर्म्म करता है, अन्य शरीर ग्रहण करनेपर भी उसे पूर्व्व देहकृत सब कर्म्मोंको अवश्य ही भोगना पड़ता है। परन्तु, उपभोगसे उन कर्म्मोंका नाश होनेपर जबतक मोक्ष योगस्थ धर्म्म परिग्रह नहीं होता, तबतक फिर अन्य कर्म्म प्रवर्द्धित हुआ करते हैं। हे सत्तम! जीव अन्यान्य योनिमें आवर्त्तमान रहके जिन कर्म्मोंसे सुखी होता है, उसे कहता हूं। दान, व्रत, ब्रह्मचर्य्य, यथोक्त ब्रह्मधारण, दम, प्रशान्तता, प्राणियोंके विषयमें अनुकम्पा, संयम अनृशंसता, परधन ग्रहण न करना, पृथ्वीके बीच प्राणियोंके अन्तःकरणसे दुःख दूर करना, माता-पिताकी सेवा, देवता तथा अतिथि पूजन, गुरुपूजा, करुणा, शौच, सदा इन्द्रियसंयम और शुभ कर्म्मोंका प्रवर्त्तन, ये सब साधुओंके वृत्त कहके वर्णित हुए हैं; जो धर्म्म शश्वती प्रजा प्रतिपालन करता है, वही धर्म्म इन सबके सहारे बर्द्धित हुआ करता है। जिस समय साधुओंके बीच सदा ऐसे कार्य्य दीखते हैं, उस ही समयमें वे लोग नित्य स्थिति लाभ करते हैं, इसके अतिरिक्त जिसमें शान्तगुण सदा निवास करते हैं, पण्डित लोग उसे आचार धर्म्म कहा करते हैं, वह कर्म्म साधुओंमें ही निक्षिप्त हुआ है। जो सनातन धर्म्म कहके वर्णित है, वह धर्म्म जिस पुरुषको सब भांतिसे प्राप्त होसकता है, उसकी दुर्गति नहीं होती। इसलिये सब लोग धर्म्ममार्गके पथिक होनेके लिये सदा संयत रहें, क्यों कि जो लोग योगमार्ग अवलम्बन करते हैं, वे मुक्त होकर सबसे श्रेष्ठ हुआ करते हैं। धर्म्ममार्गानुसारी मनुष्य जिस शरीरसे जिस किसी प्रकारका शुभकर्म्म क्यों न करे, बहुत समयके अनन्तर उसकी संसारसे मुक्ति होगी। जीव इस ही प्रकार पूर्व्वकृत कर्म्मोंको सदा भोगता है, आत्मा जिसके द्वारा विकृत होकर जीवत्वको प्राप्त होता है, उस विषयमें कर्म्म ही उसके कारण है।

इसके अतिरिक्त पहले किसने आत्माके शरीर ग्रहणकी कल्पना की है? यदि लोकके

बीच ऐसा संशय उपस्थित हो, इसलिये उसे भी मैं विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। सर्व्वलोक पितामह ब्रह्माने पहले आत्माके शरीरकी कल्पना करके स्थावर और जङ्गमकेसहित जगत्की सृष्टि की। अनन्तर जिसके द्वारा यह समस्त जगत व्याप्त होरहा है, लोग जिसे श्रेष्ठ समझते हैं, देहधारियोंकी अभिव्यक्त स्थान देहादिके आकार स्वरूप उस प्रधान प्रकृतिको उन्होंने उत्पन्न किया। उस जड़स्वभाववाली प्रकृतिको लोग चर कहा करते हैं, परन्तु शुद्ध ब्रह्म चैतन्य उसमें प्रतिबिम्बित होकर जीव तथा ईश भावसे आक्रान्त होनेसे अमृत अचर कहके वर्णित होता है। वह चर अचर तथा शुद्धके बीच चर वा अचर प्रतिपुरुषोंमें मिथुनभावसे निवास करते हैं। इस प्रकार पुरातनी जनश्रुति है, कि प्रजापतिने स्थावर और जङ्गमोंके सहित सब प्राणियोंके विषयादि भूतोंकी सृष्टि की। अनन्तर उस प्रजापति पितामहने शरीर ग्रहणका समय और परिमाण निर्दिष्ट करके भूत गणके बीच सुर, नर और तिर्य्यगादि रूपसे परिवृत्ति तथा प्राणियोंकी पुनरावृत्ति सृजन की। जैसे कोई मेधावी मनुष्य इस जन्ममें परमात्माका दर्शन करनेसे पूर्व्वजन्मके वृत्तान्त और संसारकी अन्तवत्ताका विषय कहा करता है, वैसे ही मैं भी जातिस्मर होकर जो कहूंगा, वह सब यथावत् उत्पन्न होगा। जो लोग सुख और दुःखको पूरी रीतिसे अनित्य जानके बुद्धिसञ्जात कर्म्मोंके सहित शरीरको विनष्टप्राय जानते हैं और थोड़े सुखको दुःखरूपसे स्मरण करते हैं, वेही घोर दुस्तर संसारसागरसे पार होसकते हैं। हे सत्तम! प्रधानवित् पुरुष जरा मृत्यु और रोगसे आक्रान्त होकर चेतनाविशिष्ट प्राणियोंके बीच चैतन्यका एकत्व अवलोकन करते हुए परमपद अन्वेषण करनेसे जिस प्रकार निर्व्वेद लाभ करता है, उस विषयमें यथावत् उपदेश वचन कहता हूं। हे विप्र! शाश्वत अव्यय ब्रह्मके विषयमें जो ज्ञान उत्तम है, वह मैं तुमसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो।

१८ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, जो मनुष्य पहलेके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरको परित्याग करके सबके एकमात्र अधिष्ठानभूत परब्रह्ममें लीन होकर दूसरी किसी प्रकारकी चिन्ता न करते हुए मौनभावसे निवास करता है, वही संसारबन्धनसे छूटता है। सब लोगोंका मित्र, सर्व्वसह, चित्त निग्रहमें अनुरक्त जितेन्द्रिय पुरुष जबतक योग सिद्ध न हो, तबतक उस विषयमें दैन्य वा द्वेषरहित तथा जितचित्त होनेसे मुक्त होता है। जो मनुष्य संयत, पवित्र, अहङ्कार तथा अभिमानसे रहित होकर सब प्राणियोंके विषयमें आत्मवत् आचरण करता है, वह सब प्रकारसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग जीना, मरना, सुख, दुःख, लाभ, हानि, प्रिय और अप्रियमें समभावसे ज्ञान करते हैं, वे मुक्त होते हैं। जो मनुष्य निर्द्वन्द्व और निस्पृह होकर किसीके धनमें अभिलाष नहीं करता तथा किसीकी भी अवज्ञा नहीं करता, वह सब भांतिसे मुक्तिलाभ किया करता है। मनुष्य किसी प्रकारके शत्रुओंसे रहित, बन्धुविहीन, अनपत्य, धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंसे रहित तथा निराकांक्षी होनेसे मुक्त होसकता है। पुरुष धर्म्मसे रहित एकमात्र प्रारब्धकर्म्मका प्रापक शरीरात्मक धातुओंके चयनिबन्धनसे प्रशान्तचित्त और निर्द्वन्द्व होनेसे मुक्त हुआ करता है। निराकांक्षी सन्न्यासी पुरुष जगत्को अनित्य अश्वत्थ, अवश अचैतन्य और जन्म-मृत्यु तथा जरायुक्त देखता है। वैराग्य बुद्धियुक्त मनुष्य सदा आत्मदोषदर्शी होकर शीघ्र ही आत्माको बन्धनसे विमुक्त किया करता है। जो मनुष्य गन्ध, स्पर्श, रूप, रस, शब्द और परिग्रहरहित अनभिज्ञ आत्माका दर्शन करता है,

वही मुक्त होता है। पुरुष पञ्चभौतिक स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीरसे रहित, निर्गुण तथा सत्त्व, रज, तमरूपसे विषयभोक्ता परमात्माका दर्शन करके मुक्ति लाभ करता है। मनुष्य ज्ञानपूर्व्वक शारीरिक और मानसिक सङ्कल्पोंको परित्याग करनेसे अग्निकी भांति धीरे धीरे निर्व्वाण लाभ किया करता है। जो मनुष्य सब संस्कारोंसे निर्म्मुक्त निर्द्दन्द्व और निष्परिग्रह होकर तपस्याके सहारे इन्द्रियोंको निग्रह करता है, वही मुक्त होता है। योगी लोग योगयुक्त होकर चित्त निग्रहरूपी उपायके बीच चित्तको अन्तर्म्मुख करते हुए जिस प्रकार नित्यसिद्ध परमात्माका दर्शन करते हैं, इसके अनन्तर मैं उस अनुत्तम योगशास्त्र तथा उसका उपदेश तुम्हारे निकट यथावत् वर्णन करता हूं, सुनो। हे विप्र! पुरुष इन्द्रियोंको निज निज विषयोंसे निवृत्त करके चित्तको चैतन्य जीवात्मामें धारण करें; अनन्तर तीव्र तपस्या करके मोक्षयोग आचरण करे। मनीषी तपस्वी सदा तपमें निष्ठावान होकर योगशास्त्राचरण करते हुए मनके द्वारा देहके बीच आत्माका दर्शन करें। परन्तु यदि वे साधु तपस्वी एकान्तचित्तसे आत्माको देहके बीच करनेमें समर्थ हों, तो वह शरीरमें आत्माका दर्शन पाते हैं। संयत, सदा योगयुक्त जित चित्त जितेन्द्रिय पुरुष पूरी रीतिसे प्रयुक्त होनेसे मनके सहारे आत्माका दर्शन करता है। जैसे पुरुष स्वप्नावस्थामें किसी अदृष्टगोचर पुरुषको देखकर जागनेपर फिर उसे देखनेसे 'यह वही पुरुष है,' ऐसा ही बोध करता है; उस ही प्रकार समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें आत्माको देखकर व्युत्थित होकर उसका विश्वात्मस्वरूपसे दर्शन किया करता है। जैसे कोई मनुष्य मुञ्जसे सींक निकालकर लोगोंको दिखाता है, वैसेही योगी देहसे आत्माको निकालके दर्शन किया करता है। पण्डित लोग शरीरको मुञ्ज और "आत्मनिष्ठ जगदाकारसे भासमान मायाको इषीका कहते हैं, योगवित् पण्डितजन भी ऐसा ही अनुत्तम निदर्शन कहा करते हैं। मनुष्य देह धारण करके शरीरके बीच आत्माका पूरी रीतिसे दर्शन करनेसे इस लोकमें कोई पुरुष ही उसका प्रभु नहीं होसकता; ऐसा ही नहीं बरन त्रिलोकाधिपति भी उसके ईश्वर नहीं हो सकते। वह मनुष्य इच्छा करनेसे देव, गन्धर्व्व और मनुष्य प्रभृतिका शरीर धारण करनेमें समर्थ होता है; और जरामृत्युको अतिक्रम करके उससे शोकार्त्त वा हर्षित नहीं होता। चित्तको वशमें करनेवाला मनुष्य योगयुक्त होकर देवताओंका भी दैवल विधान करनेमें समर्थ होता है और अनित्य देह परित्याग करके नित्य ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है। प्राणियोंके विनष्ट होनेसे वह भीत नहीं होता और प्राणियोंके किसीके सहारे क्लेशित होनेसे वह दुःखी नहीं होता। युक्तात्मा निस्पृह प्रशान्तचित्त मनुष्य सङ्ग और स्नेहसे उत्पन्न भयङ्कर भय, शोक तथा दुःखसे विचलित नहीं होता। समस्त शस्त्र ऐसे मनुष्यका विनाश करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये जगत्के बीच कहीं भी इस योगसे बढ़के सुखकर अन्य कुछ नहीं है तथा मृत्यु भी इसके निकट विद्यमान नहीं रह सकती; वा कुछ भी नहीं दिखाई देता। योगी पुरुष मनको आत्मामें पूरी रीतिसे नियुक्त करके निवास करते हैं और जरा, दुःख तथा सुख, इन सबसे विशेषरूपसे निवृत्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं। वे इच्छानुसार इस मनुष्य शरीरको परित्याग करके अन्य शरीर धारण कर सकते हैं, परन्तु जब वे योगबलसे ऐश्वर्य्योंको भोगेंगे, उस समय कदापि उससे विरत न होंगे। जिस समय वे मनको आत्मामें पूरी रीतिसे संयुक्त करके चित्तके बीच परमात्माका दर्शन करेंगे उस समय साक्षात् शतक्रतुके ऐश्वर्य्यको भी स्पृहा न करेंगे।

परन्तु पुरुष जिस प्रकार ध्यानशील होकर योग लाभ करता है, उसे सुनो। पुरुष वेदान्त सुनकर गुरुउपदिष्ट उपदेशको पर्य्यालोचना करके देहके बीच बास करे। मनको उस शरीरके बाहिरी भागमें न रखके अभ्यन्तरमें ही स्थापन करे। स्वयं उसके अभ्यन्तरमें रहके मूलधारादि अन्यतम जिस किसी चक्रमें बास करते हुए उसके सहित मनकी धारणा रखे। जिस समय वह चक्रके बीच रहके सर्व्वात्मक ब्रह्मका ध्यान करेगा, उस समय उसका मन कदापि वहिर्मुख न होने पावेगा। निर्ज्जन, शङ्कारहित वनके बीच इन्द्रियोंको निग्रह करते हुए एकाग्र होकर देहके बाहिर तथा भीतरमें परिपूर्ण ब्रह्मका ध्यान करे। और योगके साधनस्वरूप दांत, तालू, जिह्वा, गला, हृदय वा हृदयमें बंधी हुई नाड़ियोंका ध्यान करे अर्थात् दांतसे भोजनकी सब सामग्रियोंको शुद्ध करे, जिह्वाको तालूके सङ्ग संयुक्त करे, गला तथा ग्रीवांको भूख प्याससे निवृत्त करे और हृदय तथा हृदयस्थित नाड़ियोंको परिष्कृत् कर रखे। हे मधुसूदन! वह मेधावी शिष्यने मेरे द्वारा इतनी कथा सुनके फिर मुझसे सुदुर्व्वच मोक्षधर्म्म पूछा।

शिष्य बोला, हे अनघ! कोष्ठके बीच किस प्रकार भोजन किया हुआ अन्न परिपाक होता है? किस प्रकार वह रसत्व तथा शोणितत्वको प्राप्त होता है और किस भांतिसे वह जीवोंके समस्त शरीर मांस, मेद स्नायु और हड्डियोंको पुष्ट करता है? वर्द्धमान वा बली-पुरुषोंके शरीर तथा बल किस प्रकार बर्द्धित होते और किस प्रकारसे निर्ब्बल पुरुषके मल पृथक् पृथक् भावसे बाहिर होते हैं? यह पुरुष द्वारा निश्वास अश्वास करता है तथा यह आत्मा किस स्थानको अवलम्बन करके शरीरके बीच निवास करता है? जीव नाड़ीमार्गमें चेष्टमान होकर किस सूक्ष्म शरीरको वाहन करता है? नाड़ीमार्गका कैसा वर्ण है और उससे फिर किस प्रकार शरीर प्राप्त हुआ करता है। हे भगवन्! यह सब मेरे निकट आपको यथार्थ रीतिसे वर्णन करना उचित है।

हे महाबाहो माधव! मैंने उस ब्राह्मणका इस विषयमें प्रश्न सुनके उससे यह समस्त यथाश्रुत विषय कहा। जैसे पुरुष निज धन गृहके घड़ेमें डालकर घरमें प्रवेश करके विवेचनाके द्वारा घड़ेको खोजकर उसे पाता है, वैसे ही निज शरीरमें मनको डालकर प्रमाद परित्यागके अनिश्चल इन्द्रियोंके द्वारा उस शरीरके बीच आत्माको खोज करे। इस ही प्रकार सदा उद्योगी होकर प्रसन्नचित्तसे खोज करनेसे मनुष्य जिसके दर्शनसे प्रधानधित् होता है, थोड़े ही समयके बीच उस ब्रह्मको पाता है। नेत्रसे परमात्माको देखा नहीं जाता, वह किसी इन्द्रियसे भी ग्राह्य नहीं है; केवल मन रूपी दीपकके द्वारा ही मनुष्यके दृष्टिगोचर हुआ करता है। वह सर्व्वग्राही, सर्व्वत्रगामी सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन और सर्व्वश्रोता है; इसलिये समस्त जगतको परिपूरित करके निवास किया करता है। जब वह शरीरसे निकले, तब जीव उसका दर्शन कर सकता है। जीव सब लक्षणोंसे आक्रान्त सब वस्तुओंको परित्याग करके मनको निजरूपमें धारण करनेसे मानो मनहीमन हंसते हुए निर्गुण परब्रह्मका दर्शन किया करता है। जीव इस ही प्रकार उस परमात्माको अवलम्बन करके मुझमें लीन होता है।

हे द्विजोत्तम! मैंने तुम्हारे निकट इस रहस्यको यथावत् वर्णन किया; अनन्तर मैं तुम्हें अनुमति प्रदान करता हूं, कि तुम यथासुखसे गमन करो, मैं तुम्हें साधन कराऊंगा। हे कृष्ण! मेरे शिष्य वह महातपस्वी संशितव्रती विप्रने मेरे ऐसे बचनको सुनके इच्छानुसार गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ! मोक्षधर्म्मावलम्बी वह द्विजवर मुझसे यह सब विषय पूरी रीतिसे

कहके अन्तर्हित हुए। हे पार्थ! तुमने तो एकाग्रचित्तसे एक बार मेरे निकट यह विषय सुना था; वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं होता। हे अर्ज्जुन! इसमें मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि जो पण्डित पुरुष व्यग्रचित्त तत्त्वविद्याविहीन और अकृतात्मा है, वह इसे भली भांति नहीं जान सकता। हे भरतश्रेष्ठ! मैंने तुमसे जो कहा है, वह देवताओंके निकट भी गोपनीय है; इस लोकमें किसीने कभी इसे नहीं सुना। हे अनघ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य इसे सुननेके उपयुक्त नहीं है। जिसका अन्तरात्मा अत्यन्त व्यग्र है, वह पुरुष उत्तम रीतिसे इसे नहीं जान सकता। हे कुन्तीनन्दन! देखो क्रियावान मनुष्योंके द्वारा देवलोक समावृत है, मर्त्यरूप निवर्त्तन करना देवताओंको अभिलषित नहीं है। मनुष्य देह परित्यागकर जिससे अमरत्व लाभ करके सर्व्वदा सुखभोग करता है, वह सनातन परब्रह्म ही परम गति है।

हे पार्थ! स्वधर्म्ममें रत, ब्रह्मलोकपरायण ब्राह्मण और बहुश्रुत क्षत्रियोंकी तो बात ही क्या है, पापयोनिमें उत्पन्न हुए पुरुष, स्त्री, वैश्य और शूद्र लोग भी इस मोक्षधर्म्मको अवलम्बन करनेसे परम गति पाते हैं। जिससे सिद्धि फल मोक्ष और दुःखका विनिर्णय होता है, मेरे द्वारा उस मोक्षधर्म्म साधनका उपाय और ऐसी हेतुयुक्त कथा कही गई। हे भरतश्रेष्ठ! इससे बढ़के सुखकर और कुछ भी नहीं है। जो सब बुद्धिमान् श्रद्धावान् और पराक्रान्त मनुष्य इस ही उपायके सहारे इस लोकके सारभूत धनादिको तृणादिकी भांति परित्याग करते हैं, वे शीघ्र ही परम गति प्राप्त करते हैं। हे पार्थ! मैं इतना कह सकता हूं, कि इसके अनन्तर और कुछ भी नहीं है; क्यों कि जो पुरुष छः महीनेतक सदा इसमें नियुक्त रहता है, उसमें ही योग सम्यक्‌रूपसे प्रवृत्त होता है।

१९ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, हे पार्थ! इस प्रश्न विषयमें पण्डित लोग दम्पतीके सम्वादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। कोई ब्राह्मणी ज्ञानविज्ञानपारग निज स्वामीको निर्ज्जन स्थानमें बैठे हुए देखकर बोली। हे स्वामी! आप अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंसे विहीन मेरे सदृश भार्य्याके विषयमें निर्दय तथा मेरे अनन्य गतित्वमें अनभिज्ञ हैं; तब मैं आपके सदृश पतिका आसरा करके किस लोकमें गमन करूंगी? मैंने ऐसा सुना है, कि भार्य्या पतिकृत लोकोंको पाती है, मैं आपको पति पाकर कौनसी गति लाभ करूंगी?

प्रशान्तचित्त ब्राह्मण भार्य्याका ऐसा वचन सुनके हंसके बोला, हे सुभगे पुण्यशीले! मैं तुम्हारे इस वचनकी असूया नहीं करता। दीक्षा और व्रतादिग्राह्य द्रव्य तथा सत्य प्रभृति जो सब कर्म्म विद्यमान हैं, कर्म्म करनेवाले इसे ही कर्त्तव्य कर्म्म कहके व्यवहार किया करते हैं। परन्तु ज्ञानहीन मनुष्य इस लोकमें शरीरायास साध्य कर्म्मके द्वारा केवल मोहका निग्रह करते हैं, एक मुहूर्त्तके लिये नैष्कर्म्म लाभ नहीं कर सकते। कर्म्म, मन और वचनसे सञ्चित शुभाशुभ, जन्मस्थिति भङ्ग और अनेक योनियोंमें भ्रमणरूपी कर्म्म सर्व्व भूतोंमें विद्यमान हैं। द्रव्य वस्तु सोम तथा घृतादिविशिष्ट सब कर्म्ममार्ग दुर्ज्जनोंके द्वारा श्रेष्ठ कहे गये हैं; मैं उन कर्म्ममार्गोंसे विरत होकर निज शरीरस्थ भौं और नासिकाके मध्यवर्त्ती अविमुक्ताख्य स्थानका दर्शन किया करता हूं। जिस स्थानमें वह अद्वैत ब्रह्म विद्यमान रहता है और जहां ईड़ा तथा पिङ्गलानाड़ी निवास करती हैं, वहां बुद्धिप्रेरक और वायु सब भूतोंको धारण करते हुए सदा सञ्चार किया करता है। ब्रह्मादियुक्त योगीगण और सुव्रत प्रशान्तचित्त, जितेन्द्रिय विद्वान् मनीषीवृन्द जिस ब्रह्मकी उपासना करते हैं; उस प्रकार ब्रह्मकी

नासिकासे सूंघा नहीं जाता, जीभसे आस्वादन नहीं किया जाता और त्वचासे स्पर्श नहीं किया जाता; केवल मनसे ही जाना जाता है। वह दर्शन तथा श्रवणेन्द्रियसे अतीत है; गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शब्द और लक्षणविहीन है। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान प्रभृति सृष्टि व्यापार जिससे प्रवर्त्तित होकर जिसमें प्रतिष्ठित हुआ करता है, वे प्राणादि वायु उससे प्रवर्त्तित होकर उसमें ही प्रवेश करते हैं। प्राण, अपान, समान और व्यानके बीच विचरण किया करता है। उस अपानके सहित प्राणके प्रसुप्त अर्थात् भौं और नासिकाके बीच निरुद्ध होनेपर समान और व्यान विलीन होते हैं और उदान, अपान तथा प्राणके बीच निवास करते हुए दोनोंमें व्याप्त रहता है, इसीसे प्राण अपान सोये हुए पुरुषको परित्याग नहीं कर सकते, प्राणादिके अधिकारत्व तथा चेष्टाजनकत्व निबन्धनसे पण्डित लोग उसे उदान कहा करते हैं; उस एकमात्र उदानमें प्राणादिका अन्तर्भाव होता है, इसीसे ब्रह्मादि विप्रगण सहत परात्मप्रापक तपस्याका निश्चय किया करते हैं। परस्पर भक्षक शरीरमें रहनेवाले प्राणादि वायुके बीच समान वायुके निवासस्थान नाभिमण्डलमें वैश्वानर नाम अग्नि निवास करती है, वह अग्नि सात हिस्सेमें बटके उसके बीच प्रकाशित हुआ करती है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये सातो उस वैश्वानर अग्निकी जिह्वा हैं। सूंघना, देखना, पीना, सुनना, मनन और बोध करना, ये सातो समिध हैं। सूंघनेवाला, खानेवाला, देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला और बोद्धा—ये सात ऋत्विक हैं। हे सुभगे! घ्रेय, पेय, दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, मन्तव्य और बोधव्य, इन सात विषयोंको सर्वदा हवि बोध करनी चाहिये। पहले कहे हुए सात प्रकारके विद्वान् होतागण सात प्रकारकी ब्रह्माग्निमें सात भांतिके हवि डालकर पृथिव्यादि उत्पन्न किया करते हैं। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन और बुद्धि, ये सात योनि कहके वर्णित हुई हैं। हविभूत गुण घ्रेयादि विषय अग्निके गुणगन्धादि ज्ञानरूप धीवृत्तिमें प्रविष्ट होकर संस्कारात्मक अन्तर्व्वास चित्तके बीच वास करते हुए निज योनिभूत घ्राणादिमें उत्पन्न होता और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर भीतर ही लीन हुआ करता है। अनन्तर उस अन्तर्व्वाससे गन्ध, गन्धसे रस, रससे रूप, रूपसे स्पर्श, स्पर्शसे शब्द, शब्दसे मन और मनसे बुद्धि उत्पन्न होता है; पण्डित लोग इस ही प्रकार सात भांतिकी उत्पत्तिको मालूम किया करते हैं। प्राचीन पण्डितगण इस ही प्रकार वेदसे घ्राणादिरूप ग्रहण करते हैं; सब लोग प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता इस त्रिविध पूर्णाहुति अर्थात् पूर्ण यज्ञके ज्ञापक आह्वानके द्वारा परिपूर्ण होकर निज तेजके सहारे परिपूर्ण हुआ करते हैं।

२० अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भामिनि! इस स्थलमें पण्डित लोग दश प्रकारके होता-विधानसंयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसे तुम सुनो। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पांव, पायु और उपस्थ, ये दश होता हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्य, क्रिया, गति, रेत, मूत्र-पुरीषका त्याग,—ये दश हवि हैं। दिशा, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और मित्र,—ये दश अग्नि हैं। हे भामिनि! पहले कहे हुए श्रोतादि दशेन्द्रिय रूप होतागण इन्द्रियोंके अधिष्ठात्र देवता दिगादि रूप दश प्रकारकी अग्निमें हवनीय शब्दादि दश प्रकारके विषयरूप समिधकी आहुति प्रदान किया करते हैं। उस यज्ञमें चित्तरूप स्रुवाके सहारे घृतरूप इन्द्रियार्थोंको

आहुति देकर दक्षिणार्थ अग्निमें चित्तरूप स्रुवा और सुकृत दुष्कृतको डालनेपर केवल पवित्र उत्तम ज्ञान शेष रहता है; मैंने ऐसा सुना है, कि यह जगत् उस ज्ञानसे पृथक् भूत होकर स्थित है। सब ज्ञेय वस्तु ही चित्त है, ज्ञान उस चित्तको केवल प्रकाश करता है, उसमें संसक्त नहीं होता। जीव वीर्य्य हेतुसे स्थूल शरीरधारी षाकत्कौशिक शरीरमें ही सूक्ष्म शरीराभिमानी होकर निवास करता है। वह सूक्ष्म शरीराभिमानी जीव गार्हपत्य और उससे अन्यमन आवहनीय नामसे विख्यात् होता है; उसमें ही हवि डाली जाती है। उससे पहले वाचस्पति वेद उत्पन्न होता है, जिसके अनन्तर मन उत्पन्न होकर उस वाचस्पतिको पर्य्यवेक्षण करता है, अनन्तर काला पीला प्रभृति वर्णविहीनरूप अर्थात् प्राणवायु उत्पन्न होकर मनका अनुगामी हुआ करता है।

ब्राह्मणी बोली, जब वचन मनके द्वारा सोचके कहा जाता है, तब किस निमित्त पहले वचन और पीछे मन उत्पन्न हुआ? किस प्रमाणके अनुसार प्राण मनका अनुगामी होता है और सुषुप्ति समयमें उदित होकर विषयभोग न करनेपर भी कौन उसकी ज्ञानशक्तिको हरण करता है।

ब्राह्मण बोला, अपान प्राणका प्रभु होकर उस प्राणको मनका अनुगामी करता है; इस ही हेतु पण्डित लोग प्राणकी उस अपानता गतिको मनकी गति कहा करते हैं। और तुमने मुझसे मन तथा वचन विषयमें प्रश्न किया है, मैं तुमसे उस वाक्य और मनका सम्वाद कहता हूं, सुनो।

एक बार वाक्य और मन दोनों ही भूतात्माके निकट जाकर उससे बोले, हे विभु! हम दोनोंके बीच श्रेष्ठ कौन है; आप उसे कहके हमारा सन्देह दूर करिये। मन भगवान वाग्देवी सरस्वतीसे बोले, मैं ही श्रेष्ठ हूं; अनन्तर वाग्देवीने उनसे कहा, कि तुम जो सोचते हो, मैं उसे प्रकाश करती हूं; तब मैं तुम्हारी कामधुक् हुई इसलिये तुमसे मैं श्रेष्ठ हूं। वाक्य और मन जब इसी भांति आपसमें विरोध करने लगे, तब मन ब्राह्मणीरूपी होकर दोनोंके विषय विभाग द्वारा समता सम्पादन करते हुए कहने लगा।

ब्राह्मणीरूपी मन बोला, स्थावर वाह्य इन्द्रियोंके विषय तथा जङ्गम अतीन्द्रिय स्वर्गादि विषय, दोनोंको ही मेरा मन जानो; परन्तु, स्थावर मेरे निकट और जङ्गम तुम्हारे समीप विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्र वर्ण और स्वरके द्वारा प्रकाशित वह जङ्गम स्वर्गादि विषय मनको प्राप्त होकर जङ्गम हुआ करते हैं; उस ही निमित्त तुम मनसे श्रेष्ठ हो। हे शोभने! जब वाग्देवी स्वयं कामधुक् होकर मनके निकट आती हैं, तब मन उच्छ्वासको प्राप्त होकर वाक्य कहा करता है। हे महाभागे! वाग्देवी प्राणके द्वारा प्रेरित होकर मनोवृत्ति विशेष प्राण और अपानके भीतर सदा निवास किया करती है; परन्तु जब वह प्राणकी सहायताके बिना अत्यन्त नीच होती है, तब प्रजापतिके निकट जाकर ऐसा वचन कहा करती है, कि "हे भगवन्! मुझपर प्रसन्न होइये।" अनन्तर जब प्राण वाक्यको अप्यायित करके प्रकट होता है, तब वाग्देवी प्राणसे उच्छ्वास लाभ करके मौनावलम्बन किया करती है। घोषिणी और अघोषा वाक्य सदा प्रवर्त्तित होती है, उसके बीच घोषिणी वाग्देवी प्राणके अप्यायनकी अपेक्षा करती है; इस मन्त्रस्वरूपिणी अघोषा वाग्देवी प्राणके अप्यायनकी अपेक्षा नहीं करती, इस ही निमित्त वह घोषिणीसे श्रेष्ठ है। जैसे गऊ उत्तम रस प्रदान करती है, वैसे ही उत्तम अक्षरशालिनी ब्रह्मवादिनी घोषिणी वाग्देवी सदा शाश्वत मोक्ष और सब अर्थोंको प्रकट किया करती है। हे

शुचिस्मिते! गोरूपी वाग्देवी दिव्य देवताद्या-कर्षण और अदिव्य व्यवहार प्रकटरूप दोनों भांतिके प्रभावसे प्रकाशित होती है, सूक्ष्म और स्पन्दमान इन दोनों भांतिके वाक्योंका इतना ही अन्तर जानो।

ब्राह्मणी बोली, वाक्य उत्पन्न न होनेपर बिवक्षासे प्रेरित वाङ्मयी सरस्वती देवी उस समय कैसी अवस्थामें निवास करती है?

ब्राह्मण बोला, वह वाग्देवी शरीरके बीच प्राणवायुके सहयोगसे प्रस्फुरित होकर प्राणसे अपानको प्राप्त होती है; अनन्तर उदानभूत होकर प्राण छोड़के व्यानके सहित सारे आकाशकी आवरण किया करती है। तिसके अनन्तर वह समानमें प्रतिष्ठित होकर पहलेकी भांति सबको विदित होती है। उक्त कारणसे स्थावरत्व निबन्धन मन विशिष्ट और जङ्गमत्व निबन्धनसे वाग्देवी श्रेष्ठ होती है।

२१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे! इस वाक्य और मनके सम प्राधान्य बिषयमें पण्डित लोग जिस प्रकार सप्तहोताके बिधानसंयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो। नासिका, नेत्र, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि,—येही सात होता हैं, ये पृथक् पृथक् स्थानमें निवास किया करते हैं। हे शोभने! ये सातो होता सूक्ष्म अवकाशमें निवास करते हुए परस्परमें परस्परका दर्शन नहीं करते तुम इन स्वभावसिद्ध सातों होताओंको विशेष रीतिसे मालूम करो।

ब्राह्मणी बोली, हे भगवन्! वे सातो होता सूक्ष्म अवकाशमें निवास करते हुए किस निमित्त परस्परमें परस्परका दर्शन नहीं करते और उनका स्वभाव कैसा है? यह बिषय आप बिस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोला, घ्राण आदि सातों होताओंको निज निज गुणको ग्रहण करनेकी अनभिज्ञता है, इसलिये वे परस्परमें परस्परके गुण कदापि नहीं जान सकते। जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये गन्धको ग्रहण नहीं करते, केवल नासिका ही गन्धको ग्रहण किया करता है। नासिका, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रसको नहीं जानते, केवल जिह्वासे ही उसका बोध होता है। नासिका, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रूपको ग्रहण नहीं करते, केवल नेत्र ही रूपको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, मन और बुद्धि, ये स्पर्शगुणको ग्रहण नहीं करते, केवल त्वचा ही उस स्पर्शगुणको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, मन और बुद्धि, ये शब्दगुणको ग्रहण नहीं करते, केवल कान ही उस शब्दगुणको ग्रहण किया करता है, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और बुद्धि, ये संशय गुणको ग्रहण नहीं करते, केवल मन ही उस संशयगुणको ग्रहण किया करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और मन ये निष्ठागुणको ग्रहण नहीं करते; केवल बुद्धि ही उस निष्ठागुणको ग्रहण किया करती है। हे भामिनि! इस बिषयमें पण्डित लोग मन और इन्द्रियोंके सम्बाद युक्त पुरातन इतिहास कहा करते हैं, उसे सुनो।

मन बोला, मेरे बिना नासिका गन्ध, नेत्ररूप, जिह्वा, रस, त्वचा स्पर्श और कान शब्दको ग्रहण करनेमें किसी प्रकार समर्थ नहीं होते; इसलिये सब भूतोंके बीच में ही प्रधान तथा नित्य हूं। इन्द्रियां मुझसे रहित होनेपर शून्य गृह तथा शान्तार्चिष अग्निकी भांति प्रकाशित नहीं होती। सब जन्तु मुझसे रहित होनेसे यतमान इन्द्रियोंके द्वारा आर्द्र तथा सूखे हुए काष्ठकी भांति गुणार्थोंको ग्रहण नहीं कर सकते।

इन्द्रियोंने कहा, आप जैसा समझते हैं, यदि सत्य ही यह इसी प्रकार हो, यदि आप हम लोगोंके बिना हमारे बिषयोंको भोग कर सकें,

हमारे प्रलीन होनेपर यदि आप तर्पण प्राण धारण तथा अपनी इच्छानुसार विषयोंको भोग करें, अथवा हमारे प्रलीन होने तथा विषयोंके विद्यमान रहनेपर यदि आप यथार्थमेंही सङ्कल्प मात्रसे विषयोंको भोगकर सकें और हमारे विषयमें आप अपने मनकी अभिलाष सिद्ध करनेमें समर्थ हों; तो आप नासिकासे रूप, नेत्रसे रस, कानसे गन्ध, जिह्वासे स्पर्श, त्वचासे शब्द तथा बुद्धिसे स्पर्श ग्रहण करिये। निर्व्व-लोंके पक्षमें ही नियम निर्द्धारित होता है बल-वान लोगोंमें कुछभी नियम विहित नहीं होता, आप जूठे भोजनके योग्य नहीं हैं, इसलिये आप यह सब अपूर्व्व भोग ग्रहण करिये।

जैसे शिष्य वेदका अर्थ जाननेके लिये गुरुके समीप जाकर उसके निकट श्रुतिको ग्रहण करके उसके अर्थको अनुभव करता है, वैसे हो स्वप्न और जाग्रत अवस्थामें अतीत और अनागत विषय हम लोगोंके द्वारा दर्शित होनेपर आप उन विषयोंको अनुभव किया करते हैं। और ऐसा देखा जाता है, कि हम लोगोंके निज निज अर्थ शब्दादि ग्रहण करनेपर अल्पचित्त वैमनस्य जन्तुओंका प्राणधारण होता है। जन्तुगण सङ्कल्पनिबन्धन बहुतसे स्वप्नोंको मन-नपूर्व्वक उसको उपासना करते हुए बुभुक्षासे पीड़ित होकर विषयोंकी ओर दौड़ते हैं। प्राणिगण द्वाररहित गृहकी भांति विषयोंसे निबद्ध सङ्कल्प भोग समूहमें प्रविष्ट करते हुए जिस प्रकार काष्ठ क्षय होनेसे प्रज्वलित अग्नि शान्त होजाती है, उस ही प्रकार प्राण क्षय होनेसे शान्तिको प्राप्त हुआ करते हैं। इच्छा-नुसार हम लोगोंको निज निज गुणोंमें आसक्ति होती है, परन्तु परस्परके गुणोंकी उपलब्धि नहीं होती और तुम्हारे अतिरिक्त हम लोगोंको हर्ष उत्पन्न नहीं होता।'

२२ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे! इस विषयमें पण्डित लोग पञ्च-होताके सम्वादयुक्त यह पुरा-तन इतिहास कहा करते हैं। बुद्धिमान लोग प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—इस पञ्च वायुको पञ्चहोत्व समझते तथा इनके परम तत्वको जानते हैं।

ब्राह्मणी बोली, पहले मैंने आपके समीप स्वभाव सिद्धसप्तहोताओंका विवरण मालूम किया है। अब इस समय पञ्च होताओं और उनके परम तत्वोंको विस्तारपूर्व्वक कहिये।

ब्राह्मण बोला, वायु प्राणसे उत्पन्न होनेपर अपानरूपसे परिणत होता है, अनन्तर अपा-नसे प्रकट होके व्यान और व्यानसे उत्पन्न होकर उदान तथा उदानसे उत्पन्न होके समान रूपसे परिणत हुआ करता है।

एक समय उन प्राणादि पञ्चवायुने एकत्रित होकर पूर्व्वजात पितामह ब्रह्मासे इस प्रकार पूछा। हे ब्रह्मन्! आप बताइये, हम लोगोंके बीच श्रेष्ठ कौन है? आप जिसे श्रेष्ठ कहेंगे, वही हम लोगोंमें श्रेष्ठ होगा।

ब्रह्मा बोले, प्राणियोंके शरीरमें जिस प्राणके प्रलीन होनेसे सब प्राणही प्रलयको प्राप्त होते हैं और जिस प्राणके प्रचोर्ण होनेसे फिर प्रकाशित होते हैं, वही तुम लोगोंमें श्रेष्ठ है, इस समय तुम लोगोंकी जहां अभिलाष हो, वहां जाओ।

प्राण बोला, प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राण ही प्रलीन होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं। इसलिये मैं ही श्रेष्ठ हूं; इस समय मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब कोई अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, हे शुभे! प्राण प्रलीन होके पनर्व्वार प्रचीर्ण होनेपर समान और उदान कहने लगे। हे प्राण! तुम हमारी भांति इस शरीरमें सर्व्वत्र व्याप्त रहनेमें अक्षम हो, इसलिये हमसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते, अपान तुम्हारे वशमें है, इसलिये अपानके ही प्रभु हो सकते

हो। प्राण इतनी बात सुनके फिर प्रचीर्ण हुआ, तब अपान उससे कहने लगा।

अपान बोला, प्राणियोंके शरीरमें मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही पलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीर्ण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान और उदान अपानसे बोले, हे अपान! तुम हम लोगोंसे श्रेष्ठ नहीं हो; प्राणही तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम प्राणहीके निकट श्रेष्ठ हो सकते हो। अनन्तर अपानके प्रकाशित होनेपर व्यान उससे फिर कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सब प्राणही प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रचीण होनेसे सभी प्रकाशित हुआ करते हैं, इसलिये मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं; अब मैं प्रलीन होता हूं, तुम सब कोई अवलोकन करो।

ब्राह्मण बोला, अनन्तर व्यान प्रलीन होके पुनर्व्वार प्रकाशित हुआ, तब प्राण, अपान, उदान और समान उससे कहने लगे। हे व्यान! तुम हमारे प्रभु नहीं हो सकते, परन्तु समान तुम्हारे वशमें है, इसलिये तुम उसके हो प्रभु हो। व्यान ऐसा सुनके फिर प्रकाशित हुआ, तब समान कहने लगा, जिस लिये मैं सबसे श्रेष्ठ हूं उसे तुम लोग सुनो।

प्राणियोंके शरीरके बीच जब मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सभी प्रादुर्भूत होते हैं, तब मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं, इस समय मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग अवलोकन करो। अनन्तर समानके प्रकाशित होनेपर उदान उससे कहने लगा, कि मैं जिस निमित्त सबसे श्रेष्ठ हूं, उसे सुनो। प्राणियोंके शरीरके बीच मेरे प्रलीन होनेसे सभी प्रलयको प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होनेपर सब फिर प्रादुर्भूत हुआ करते हैं, इसलिये मैं प्रलीन होता हूं, तुम लोग देखो। तिसके अनन्तर उदानके प्रलीन होकर फिर प्रकट होनेपर प्राण, अपान, समान और व्यान उससे बोले, हे उदान! व्यान तुम्हारे वशवर्त्ती है, इसलिये तुम व्यानके हो प्रभु हो, हम लोगोंके प्रभु नहीं हो सकते।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर प्रजापति ब्रह्मा उन प्राणादि वायुसे बोले, कि तुम सब निज निज विषयमें श्रेष्ठ हो और परस्परमें परस्परके धर्म्मावलम्बी हो; परन्तु परस्परमें कोई किसीसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। जैसे एक प्राणही स्थिर और अस्थिर होकर आत्माको अधिकार करते हुए उपाधिभेदसे पञ्चवायु रूपसे परिणत होता है, उसही भांति एक आत्मा ही उपाधिभेदसे बहुरूपी हुआ करता है। परस्परमें परस्परके सुहृत होकर परस्परको धारण करनेसे तुम लोगोंका मङ्गल है; तुम लोग इस समय आपसका विरोध त्यागके गमन करो, तुम लोगोंका मङ्गल हो।

२३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, इस विषयमें पण्डित लोग देवमत ऋषि और नारदके सम्वाद युक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

देवमत बोले, हे नारद! उत्पन्न होनेवाले, जीवके विषयमें प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान, इन पञ्चवायुके बीच प्रथम कौनसा प्रवृत्त होता है?

नारद मुनि बोले, जीव जिस कारणसे उत्पन्न होता है, उत्पत्तिके पहले उसी कारणसे अन्य कोई वस्तु संयुक्त होती है, इसही निमित्त तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध और प्राणद्वन्द्वको विशेष रीतिसे जानना उचित है।

देवमत बोले, जीव कहांसे उत्पन्न होता है उससे भिन्न कौन पहले प्राप्त होता है और

तिर्य्यक्, ऊर्द्ध, अध इन सबका रूप तथा प्राण इन्द्र क्या है? यह तुम सब मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

नारद मुनि बोले, ईश्वरके आलोचनार्थ ज्ञानसे जीव प्रकट होनेपर पहले भूतसृष्टि होती है, फिर वैदिक शब्दके अनुसार रसरूप अर्थात् तत्व विषयिणी वासनासे प्रजापतिके द्वारा भौतिकसृष्टि होती है। अनन्तर शोणित संसृष्ट अर्थात् वासनामिश्रित शुक्ररूप अदृष्टसे पहले प्राण प्रवृत्त होता है, फिर, शुक्ररूप अदृष्टके प्राणसे विकृत होनेपर अपान प्रवृत्त होता है। रस स्वरूप वासना संसृष्ट शुक्ररूप अदृष्टसे हर्ष स्वरूप उदानका रूप उत्पन्न होता है; इस हर्षरूप और कार्य्यके बीच आनन्द स्वरूप ब्रह्म निवास करता है। कामसे शुक्ररूप अदृष्ट और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। सामान्य शुक्र तथा शोणित समान और व्यानसे उत्पन्न हुआ करते हैं। प्राण और अपान इस काम प्रवृत्त्याख्य इन्द्रको प्राप्त होकर जीव उपाधि ग्रहण करते हुए ऊपर और नीचे गमन करते हैं, उक्त रीतिके अनुसारही व्यान और समान तिर्य्यक् भाव तथा द्वैतभावको प्राप्त होते हैं। वेदज्ञानुसार अग्निही सर्व्वदेवता है, उस परमात्मरूप अग्निसे ब्राह्मणीय बुद्धियुक्त ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। उस उत्तम तेजयुक्त अग्निका तमोरूप धूम और रजोरूप भस्म, जिसमें हविरूपी भोग वस्तुएं डाली जाती हैं, उसही अग्निसे सबकी उत्पत्ति हुआ करती है। समान और व्यान बुद्धिबलसे उत्पन्न होते हैं, यह यशस्वी ऋषियोंका अनुभवसिद्ध है। प्राण और अपान आज्यभाग हैं, उस प्राणापानके बीच वह परमात्मरूप अग्नि विद्यमान रहती है। ब्राह्मण लोग उदानको इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं, परन्तु यह जो अद्वैत है, उसे मैं कहता हूं, तुम सावधानतासे मेरे निकट सुनो। विद्या और अविद्यारूपी यह अहोरात्र ही इन्द्र है, उसके बीच वह परमात्मारूप अग्नि विद्यमान रहती है; ब्राह्मणगण उस उदानके रूपको परब्रह्म बोध करते हैं। (सत्) कार्य्य, (असत्) कारणरूप इन्द्र इसके बीच परमात्मारूपी अग्नि विद्यमान रहती है, ब्राह्मणगण उदानके इस हर्षरूपको परब्रह्म बोध करते हैं। वह अद्वैब्रह्म जो सङ्कल्पाख्य हेतुके द्वारा समान और व्यानरूपसे उत्पन्न होता है, उस सङ्कल्पसे ही सब कर्म्म विस्तृत हुआ करते हैं; तृतीय सुषुप्तिरूप समान और व्यानके द्वारा फिर निश्चित होता है। शान्तिके निमित्त समान, व्यान, सनातन ब्रह्म ये तीनों एक मात्र शान्ति-शब्दसे वर्णित होते हैं; ब्राह्मणगण उदानको इस हर्षरूपको परब्रह्म कहके बोध किया करते हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! इस विषयमें पण्डित लोग चातुर्होत्र विधानकी विधि संयुक्त पुराने इतिहासको जिस प्रकार कहा करते हैं, मैं वह सब विधान विधिपूर्व्वक वर्णन करता हूं, तुम मेरे समीप यह अद्भुत रहस्य सुनो। हे भामिनि! कर्त्ता, कर्म्म, करण और मोक्ष, ये चारों होता हैं, इनके द्वारा यह जगत् आवृत्त हो रहा है। पहले घ्राणादि यद्यपि दश और सात होताओंके बीच वर्णित हुए हैं, परन्तु उनके बीच कौन किसके हेतु हैं, वह नहीं कहा गया है; इस समय युक्तिबल अवलम्बन करके हेतुओंके साधनको विशेषरूपसे कहता हूं, सुनो। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि इन सातोंका हेतुगुण अर्थात् अविद्या है। गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श मन्तव्य और बोधव्य, ये सात हेतुकर्म्म है। घ्राता भक्षयिता, द्रष्टा, वक्ता, श्रोता, मन्ता और बोद्धा, ये सात कर्त्तृत्वादिके हेतु हैं। ये घ्राता प्रेरित सातों उपाधिरूप घ्रात्तृत्वादि धर्म्मविशिष्ट होकर

निज निज गन्ध आदि गुणोंको भोग किया करते हैं; परन्तु गन्धादिका प्रमाता अखण्ड शब्द वाच्यमें निर्गुण और अनन्त हूं, और ये घ्राणादि निजनिज उपाधि तथा घ्रातत्वादि अभिमान परित्याग करके चिन्मात्रस्वरूपसे स्थित होनेपर मोक्षके हेतु होते हैं। बुद्धिमान तत्वज्ञानियोंके नासिका प्रभृति इन्द्रियोंके निज निज अधिष्ठान अविद्या आदि सर्व्व-देवताभूत होकर नियमानुसार सदा घ्रेयादि विषयोंको भोग किया करते हैं। जैसे पुरुष अपने लिये अन्नपाक कराके ममतासे नष्ट होता है, वैसेही अज्ञ पुरुष घ्रेय आदि विषय-भोगमें लिप्त होकर ममतासे विनष्ट हुआ करते हैं, अभक्ष्य भक्षण और मद्यपानके विषय वैसेही पुरुषको नष्ट किया करते हैं, जो विद्वान इस अन्न अर्थात् घ्रेयादि विषयोंको भोग करता है, वही ईश्वर होकर फिर उन्हें उत्पन्न किया करता है, यथार्थमें वह उक्त अन्नोंसे उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि वह यदि अन्नसे उत्पन्न हो, तो उसमें कार्य्य कारणभाव विपरीतता होजाय। मन आदि छः इन्द्रियोंको निग्रह करनेपर जो मनसे जाना जाता है, जो वाक्यसे प्रकाशित होता, जो कानसे सुनाजाता है, जो नेत्रसे देखा जाता, जो स्पर्शसे स्पृष्ट होता और जो नासिकासे सूंघा जाता है, वह सभी हवि अर्थात् अन्नरूपसे परिगणित हुआ करता है। गुणविशिष्ट पावक कारण ब्रह्म मेरे शरीरके बीच प्रकाशित है। योग ही मेरा यज्ञ, ज्ञान अग्नि, प्राण स्तोत्र, अपान शस्त्र और सर्व्वस्वत्याग ही दक्षिणा है। योगियोंका कर्त्ता (अहङ्कार) अनुमन्ता (मन) और आत्मा (बुद्धि) ये तीनों ब्रह्म होकर क्रमसे होता, अध्वर्य्यु और उद्गाता हुआ करते हैं; सत्यवाक्य ही उनका शास्त्र और कैवल्य-दक्षिणा हुआ करती है। नारायणवित् पुरुष इस ही यज्ञमें ऋक् पाठ करते हैं, और नारायण, देवके उद्देश्यसे घ्रेयादि अन्न तथा सब विषयोंको पशुरूपसे प्रदान किया करते हैं। हे भीरु! इस यज्ञमें योगी लोग जिसके उद्देश्यसे सामगान करते हैं और जिसमें दृष्टान्तस्वरूपसे जिसका कीर्त्तन करते हैं, उस सर्व्वात्मा नारायणदेवको तुम मालूम करो।

२५ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भामिनि! जो प्राणियोंके हृदयके बीच अन्तर्य्यामी रूपसे वास करता है, वह नारायणदेव ही एक मात्र शास्ता है, उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई भी शास्ता नहीं है, मैं उसका ही विषय तुमसे कहता हूं। जैसे जल प्रवणभूमिमें गमन करता है, वैसे ही मैं उस नारायणदेवके द्वारा जिस प्रकार उक्त तथा नियुक्त होता हूं, वैसा ही किया करता हूं। जो जीवोंके हृदयके बीच वास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र गुरु है, उसके अतिरिक्त दूसरा गुरु और कोई भी नहीं है; मैं उसका ही विषय तुमसे कहता हूं, उस गुरुसे ही सब कोई शिक्षित होवें, जो लोग लोकद्वेषी हैं, वे सर्पसदृश हैं। जो प्राणियोंके हृदयकमलमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र बन्धु है, जिसके अतिरिक्त दूसरा बन्धु और कोई भी नहीं है, मैं उसहीका विषय तुमसे कहता हूं। हे पार्थ! बन्धुवन्त बान्धव, सप्तर्षि तथा सभी उसके द्वारा शिक्षित होकर आकाश मण्डलमें प्रकाशित हुआ करते हैं, जो सब भूतोंके हृदयकमलमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एक मात्र श्रोता है, उसके अतिरिक्त दूसरा श्रोता और कोई भी नहीं है, मैं उसका ही विषय तुम्हारे समीप कहता हूं। इन्द्रने उस गुरुके निकट सदा वास करके सब लोगोंके बीच अमरत्व लाभ किया है। जो सब प्राणियोंके अन्तरमें निवास करता है, वह नारायणदेव ही एकमात्र द्वेष्टा है, उसके अतिरिक्त दूसरा और कोई भी द्वेष्टा नहीं है, मैं उसहीका विषय तुमसे कहता हूं; उस गुरुके

द्वारा सब कोई सदा शिक्षित होवें, जगत्में दोषवान् पुरुष सर्प्पतुल्य कहके परिगणित हुआ करते हैं ।

पन्नग और देवर्षियोंने प्रजापतिके निकट जो कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें उसी ही सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं । देवता, ऋषि, नाग और असुरवृन्द प्रजापतिके निकट जाकर बैठके उनसे बोले । हे भगवन् ! हम लोगोंका जिससे कल्याण हो, आप हमारे लिये वही विषय कहिये ।

भगवान् प्रजापति कुशल पूछनेवाले उन आदिदेव असुरोंसे बोले, कि ओंकार स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ही एकमात्र कल्याणकारी है ; वे लोग इतना वचन सुनके अनेक दिशामें भाग गये । निज उपदेश ओंकारात्मक एकाक्षर ब्रह्मका यथार्थ अर्थ ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर भागनेवाले उन आदिदेव असुरोंके बीच पहले सर्प्प वृन्द ओंकार उच्चारणसे निज मुख उन्मीलन और निमीलन होनेसे अपने स्वभावज मुखोन्मीलन साध्य दंशनको ही कल्याणकारी समझकर दंशन विषयमें ही प्रवृत्त हुए । अनन्तर दानवदल ओंकार उच्चारणमें ओष्ठचालन होनेसे दम्भको ही कल्याणकारी समझके दम्भभाव ; देवताओंने ओंकारका अर्थ प्रार्थित वस्तुका स्वीकार जानके दान व्यवसाय और महर्षियोंने ओंकारके उच्चारणमें ओष्ठ प्रभृत्तिका उपसंहार देखकर सब प्रवृत्तियोंके उपसंहारके हेतु दमको कल्याणकारी जानके दमको ही अवलम्बन किया, देव, ऋषि, दानव और सर्प्प वृन्दने एकमात्र गुरुसे एक शब्दसे उपदिष्ट होकर अनेक व्यवसायमें प्रवृत्त हुए । शिष्यगण इस गुरुसे जो पूछते हैं, यह उस विषयको शिष्योंको सुनाता तथा यथार्थ रीतिसे ग्रहण कराता है ; इससे इनके अतिरिक्त दूसरा गुरु और कोई भी विद्यमान नहीं है ; इसलिये इसकी आज्ञानुसार सब कर्म्म प्रवृत्त तथा सम्पादित हुआ करते यह गुरु ही वोद्धा, श्रोता और द्रष्टा है, यही सबके हृदयके बीच निवास किया करता है । यह गुरु इस लोकमें पापपथसे विचरनेसे पापाचारी शुभमार्गसे चलनेपर शुभाचारी इन्द्रियसुखमें रत होकर कामपथसे विचरनेपर कामचारी और इन्द्रियोंको जीतनेमें रत होकर ब्रह्मपथसे विचरनेसे ब्रह्मचारी हुआ करता है । जो लोग इस लोकमें व्रतादि कर्म्मोंको परित्याग कर केवल ब्रह्ममार्गमें निवास करते हुए ब्रह्मचारी और ब्रह्मभूत होकर जगत्के बीच विचरते तथा ब्रह्ममें समाहित होते हैं ; उनके लिये ब्रह्म ही समिध, ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म ही जल और ब्रह्म ही गुरु हुआ करता । पण्डित लोग ऐसे कार्य्यको ही सूक्ष्म ब्रह्मबोध करते हैं और वे तत्त्वदर्शी गुरुके द्वारा इस ही प्रकार शिक्षित होकर ब्रह्मज्ञान लाभ करके ब्रह्मको पाते हैं ।

२६ अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मण बोला, हे सुभगे ! सङ्कल्प जिस पथमें दंश और मशक है, शोक और हर्ष जिसमें शर्दी तथा गर्म्मी है, मोह जिसमें अन्धकार, लोभ और व्याधि जिसमें सर्प्प, विषय जिसमें एकमात्र नाशक और काम क्रोध जिसमें प्रतिबन्धक हैं ; मैं उस संसारमार्गको अतिक्रम करके महादुर्गम ब्रह्मरूपी महावनमें प्रविष्ट हुआ हूं ।

ब्राह्मणी बोली, हे महाप्राज्ञ ! वह वन कहां है और उस बनके वृक्ष, नदी, गिरि, पर्व्वत और पथ कितने हैं ।

ब्राह्मण बोला, वह वन स्वतन्त्र वा अस्वतन्त्र रूपसे कहीं भी नहीं है, उसकी अपेक्षा दूसरा और कुछ भी सुख नहीं है और उससे बढ़के दूसरा कोई दुःखतारक कर्म्म भी नहीं है । इससे सूक्ष्म, महत् वा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म

कुछ नहीं है और उसके समान दूसरा कोई सुख नहीं है। द्विजगण उस बनके बीच प्रविष्ट होनेपर शोकार्त्त, नष्ट वा किसीसे भीत नहीं होते और दूसरे किसीको उनके समीप भय प्राप्त नहीं होता। उस बनके बीच महत् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र, ये सात महावृक्ष हैं, यागादि अपूर्व्व सात फल हैं, यज्ञकर्म्मके देवता सात अतिथि हैं, उस यागक्रियाका कर्त्ता सप्ताश्रम है, रागादि सात समाधि और धर्म्मान्तर परिग्रह लक्षणादि सप्तदीक्षा हैं, येही अरण्यरूपसे विद्यमान हैं; जीव और वृत्तिभेदसे अनेक प्रकार मलरूपी प्रीति प्रभृति वृक्ष, उस बनमें शब्दादि पञ्चरूपसेयुक्त मनोहर पुष्प और शब्दादि अनुभवरूपी पांच प्रकारके फलोंको उत्पन्न करते हुए वह बन व्याप्त होकर स्थित है। नेत्र प्रभृति सब वृक्ष उस बनके बीच श्वेत, पीत, उत्तम वर्ण तथा सुख दुःखरूपी दोनों वर्णोंसे युक्त फूल और विधिपूर्व्वक फलोंको उत्पन्न करतेहुए व्याप्त होकर स्थिति करते हैं। यज्ञादि वृक्ष उस महा बनके बीच स्वर्गादि रूप सुरभि और सुख दुःखरूपी दोनों वर्णोंसे युक्त सब फलोंको उत्पन्न करते हुए वह बन व्याप्त होकर विद्यमान है। ध्यानादि वृक्ष उस बनके बीच स्वर्गादि रूप सुरभि और सुखरूपी एक वर्णयुक्त अनेक फूल तथा फलोंको उत्पन्न करते हुए उस बनमें व्याप्त हैं। बुद्धि और मनरूपी दो महावृक्ष अतीत, अनागत और वर्त्तमान स्वरूप अव्यक्त वर्ण, पुष्प तथा फलोंको परित्याग करते हुए उस बनमें व्याप्त हैं। उस बनमें उत्तम मनवाला ब्राह्मण, एक मात्र परमात्मारूपी अग्निमें मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय समाधि होमके काष्ठ होम करता है; उस हवनीय काष्ठरूप पञ्चइन्द्रियोंसे मुक्ति होती है; मुक्त पुरुषोंके उपदेश दीक्षागुणभूत अपूर्व्व रूपवाले फल उत्पन्न होते और देवतारूपी अतिथि उन फलोंको भोजन किया करते हैं। इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवतारूपी महर्षिवृन्द उस बनमें आतिथ्य प्रतिग्रह किया करते हैं; उन लोगोंके आतिथ्यसे सत्कृत होकर प्रलीन होनेपर वह अद्वैतरूप प्रतिभासमान हुआ करता है। जो साधु लोग प्रज्ञारूपी वृक्ष, मोक्षरूपी फल, शान्तिरूपी छाया, ज्ञानरूपी आश्रय, तृप्तिरूपी जल और अन्तःक्षेत्रज्ञरूपी सूर्य्यसे युक्त उस बनको जानके प्रज्ञावृक्षपर आरूढ़ होते हैं, उन्हें भय नहीं होता; क्यों कि उस प्रज्ञावृक्षका ऊपर नीचे और तिर्य्यक् किसी दिशामें भी अन्त नहीं मिलता। मन और बुद्धिके सहित नासिका प्रभृति इन्द्रियोंका वृत्तिरूप, पुरुषोंको वशमें करनेमें असमर्थ होनेसे अधोमुखी चिज्ज्ञातिर्म्मयी सङ्कल्पादिक सात स्त्रियें उस प्रज्ञावृक्षपर बास करती हुई प्रजासमूहके लिये अनित्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट नित्यकी भांति, विषयज्ञानजनित आनन्दरूप अत्यन्त उत्कृष्ट समस्तरस भोग किया करती हैं और उस वृक्षपरही मन और बुद्धिके सहित पञ्चइन्द्रिय रूपी सिद्ध सप्तर्षि वसिष्ठ प्रभृति ऋषियोंके सहित अर्थात् अत्यन्त-तेजके सहित उद्धतभावसे बास करते हैं। वहां यश, वर्च्च, भय, विजय, सिद्धि और तेज प्रभृति सातों ज्योति क्षेत्रज्ञ सूर्य्यको अनुवर्त्ती हुआ करती है। वहां गिरि तथा समस्त पर्व्वत एकत्र निवास करते हैं और नदियें ब्रह्मसे उत्पन्न हुए जलसे युक्त होकर बहा करती हैं। जहांपर सब नदियोंका सङ्गम होता है, उस अत्यन्त गूढ़ हृदयाकाशके बीच स्वभाविक सन्तुष्टचित्त सिद्ध यतियोंको पितामहका दर्शन मिला करता है। वहांपर कृशाश, सुव्रतांश और तपस्याके सहारे पापोंको जलानेवाले सिद्ध यतिवृन्द हृदयाकाशमें परमात्मा ब्रह्माको संस्थापित करके उपासना किया करते हैं। विद्यारण्यवित् ब्रह्मज्ञ पुरुष धीरकी भांति उस बनको पाके शमगुणहीको प्रशंसा करते हैं। ब्राह्मण लोग ऐसे बनको पुण्यरूपसे

बोध करते और चेत्रज्ञके द्वारा शिचित होकर उस स्थानमें निवास किया करते हैं।

२७ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, मैं न गन्धको सूंघता, न रसको चखता, न रूपको देखता, सर्दी गर्म्मी आदि स्पर्श नहीं करता, किसी प्रकारके शब्दको नहीं सुनता और मनके बीच किसी प्रकार सङ्कल्पभी नहीं करता। जैसे प्राण और अपान वायु इच्छा अनिच्छाके वशमें न होकर स्वाभाविक जीवोंके शरीरमें प्रविष्ट होकर निज कार्य्य अन्नादि पाकक्रिया सम्पादन करती हैं, वैसेही मेरे इष्टवस्तुमें इच्छा और अनिष्ट वस्तुमें अनिच्छा न करनेपर भी बुद्धि स्वभावके वशवर्त्ती होकर इष्ट वस्तुमें इच्छा और अनिष्ट वस्तुमें अनिच्छा किया करती है। योगी लोग बाह्य घ्राण घ्रेयादि विषयोंसे विभिन्न स्वप्नजनित वासनामय घ्राण घ्रेयादि विषयोंमें नित्य अनुगत जो सब विषय हैं, उनसे भी अतिरिक्त जिस भूतात्माको शरीरके बीच लक्ष्य किया करते हैं, मेरे उसही भूतात्मामें निवास करनेसे काम, क्रोध, जरा और मृत्यु किसी प्रकारभी आक्रमण नहीं कर सकती इसलिये मैं असङ्गरूपसे निवास करता हूं। मैं सब प्रकारसे काम्य वस्तुओंमें कामना और दूषित वस्तुओंमें द्वेष नहीं करता, इसीसे पद्मपत्रमें निर्लिप्त जलकी बूंद समान काम और द्वेष मुझमें स्वाभाविक लिप्त नहीं हो सकते। यह नित्य परिदृश्यमान असङ्ग पुरुषको सब कामना नित्य हैं, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें लिप्त नहीं होती, वैसेही पुरुषके कृतकर्म्मोंके भोग समूह शरीरादिके स्वभावभूत होकर पुरुषमें संसक्त नहीं हो सकते।

हे यशस्विन! परम पुरुष परमात्माके असङ्ग विषयमें पण्डित लोग अध्वर्य्यु और यतिके सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं, उसे तुम सावधान होकर सुनो। यज्ञस्थलमें बैठे हुए किसी यतीने अध्वर्य्युको पशुप्रोक्षण करते देखकर निन्दा उसकी करते हुए बोला, कि "आप ऐसे हिंसा कार्य्यमें प्रवृत्त हुए हैं?" ऐसा वचन सुनके अध्वर्य्यु उससे बोला, वेदके अनुसार यज्ञकर्म्ममें जन्तु हिंसित होनेसे कल्याणयुक्त होते हैं; इसलिये बकरा विनष्ट न होगा। यह बकरा यज्ञमें हिंसित होनेसे इसका जो पार्थिवभाग है, वह पृथ्वीमें मिल जायगा, जलीयअंश जलमें प्रविष्ट होगा, नेत्रके तैजस अंश सूर्य्यमें शब्द आकाशभाग दिशाओंमें और प्राणवायु आकाशमें प्रविष्ट होगा; इसीलिये इसमें मुझे कुछ दोष नहीं है।

यति बोला, यदि यज्ञकर्म्ममें जन्तुओंके प्राण वियोग होनेसे उनका मङ्गल देखते हो, तो बकरेके निमित्तही यज्ञ वर्त्तमान है, उसमें तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है? और इस यज्ञमें बकरा आपको पिता, माता, भ्राता तथा सखा जाने और आपभी इस परोधान बकरेको ऊर्द्धगामी करनेको उपाय करिये; जब जन्तुगण आपको पित्रादिरूपसे बोध करेंगे, तब आप उनको रक्षा करनेमें समर्थ होंगे, तथा उनका मत सुनके विचार करेंगे। परन्तु मुझे ऐसा बोध होता है, कि यह बकरा यज्ञमें विनष्ट होनेसे इसका प्राण छागयोनिमें प्रविष्ट होगा, केवल अचेतन शरीर मात्र अवशिष्ट रहेगा। जो लोग चेतनाविहीन काष्ठसदृश शरीरके द्वारा हिंसामय यज्ञ करनेके अभिलाषी होते हैं, पशु ही उनके यज्ञीय काष्ठ हुआ करते हैं। वृद्धोंकी ऐसी आज्ञा है, कि सब धर्म्मोंमें अहिंसा ही प्रशंसनीय है; परन्तु हम लोग ऐसी विवेचना किया करते हैं, कि यदि कर्म्म हिंसायुक्त हो, तो वह कर्त्तव्य है। इसके अनन्तर यदि कहना पड़े, तो कदापि मैं हिंसा करनेको नहीं कह सकता; क्योंकि अहिंसा ही हमारा प्रतिश्रुत धर्म्म है, जो मैं हिंसा करनेके लिये कहूंगा,

तो आप अनेक प्रकारके दूषित कर्म्म करनेमें उद्यत होंगे। सब भूतोंको अहिंसा ही हम लोगोंकी चिर अभिलषित है, हम लोग प्रत्यक्ष वस्तुकी ही साधन किया करते हैं, अप्रत्यक्षकी उपासना नहीं करते।

अध्वर्य्यु बोला, हे द्विज! आप जो भूमिके गन्धगुणको भोजन करते जलके रस गुणको पीते, अग्निके रूप गुणको देखते, वायुके स्पर्श-गुणको स्पर्श करते और आकाशके शब्दगुणको सुनते हैं तथा मनके द्वारा मनन करते हैं, इन सब भूतोंको ही प्राणबोध करते हैं; तो आप किस प्रकार प्राणदानसे निवृत्त होंगे? आप तो हिंसामें ही नियुक्त होरहे हैं; क्यों कि बिना हिंसाकी चेष्टा नहीं हो सकती; इसलिये आप अहिंसा किस प्रकार समझते हैं?

यति बोला, आत्माकी क्षर और अक्षर दो प्रकारकी अवस्था है, उसके बीच सद्भाव अक्षर और स्वभाव क्षर कहके वर्णित हुआ है। मायाके सहित अवस्थित प्राण, जिह्वा, मन और सत्त्व, ये सद्भाव कहाते हैं; आत्मा इन सब भावसे विमुक्त होनेसे निर्द्वन्द्व और आशावर्जित है। जो पुरुष सर्व्वभूतोंमें समभाव, निर्म्मम, जितात्मा और सब भांतिसे मुक्त है, वह कहीं भी भयभीत नहीं होता। अध्वर्य्यु बोला, हे द्विजवर! आपका मत सुनके मुझे ऐसा बोध होता है, कि इस लोकमें साधुओंके सङ्ग सहवास करना ही उचित है। हे भगवन्! मैं भागवतबुद्धिसे युक्त होकर कहता हूं, कि मैं मन्त्रकृत व्रत किया करता हूं; इसलिये इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर यतिने उपपत्तिके अनुसार मौनावलम्बन किया और अध्वर्य्यु भी मोहविहीन होकर महायज्ञका प्रचार करने लगा। ब्राह्मण लोग इसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म मोक्षको जानके अर्थदर्शी क्षेत्रज्ञके सङ्ग निवास करते हैं।

२८ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भाविनि! इस विषयमें पण्डित लोग कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुन और समुद्रके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, जिन्होंने शरासनके सहारे समुद्रके सहित वसुन्धराको औरसे छोरतक जीता था, वह कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुन नाम विख्यात राजा था। हमने सुना है, कि उसने किसी समय निज तेजसे दर्पित होकर समुद्रके तीर बिचरते हुए एक सौ बाणोंसे समुद्रको समाच्छन्न किया, तब समुद्र हाथजोड़के उन्हें नमस्कार करके बोला, हे वीर! आप मुझपर बाण न चलाइये। कहिये मुझे आपका कौनसा कार्य्य करना होगा। हे राजेन्द्र! मेरे आश्रित प्राणिवृन्द आपके द्वारा छोड़े हुए महाशरोंसे मर रहे हैं। हे विभु! आप उन्हें अभय प्रदान करिये।

अर्ज्जुन बोले, यदि युद्धमें मेरे समान शरासनधारी कोई विद्यमान हो और वह मेरे सङ्ग युद्धमें खड़ा होनेमें समर्थ हो; तो मुझसे तुम उसका वृत्तान्त कहो।

समुद्र बोला, हे महाराज! यदि आप जमदग्नि महर्षिको विशेष रीतिसे जानते हैं, तो उनके पुत्रके निकट जाइये; वह विधिपूर्व्वक आपका आतिथ्य करनेमें समर्थ होंगे।

तिसके अनन्तर राजा कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके आश्रममें जाकर उस परशुरामके निकट उपस्थित हुआ। राजाने बान्धवोंके सहित महात्मा रामके प्रतिकूल कार्य्य करके उन्हें क्रोधित किया। हे कमललोचन! उस समय वह अमित तेजस्वी रामका क्रोधाग्नि शत्रुसेनाको जलाती हुई प्रज्ज्वलित हुई। अनन्तर रामने सहसा परशु लेकर बहुतसी शाखाओंसे युक्त वृक्षकी भांति सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य्यार्ज्जुनको काट डाला। बान्धवगण राजाको मरके गिरा हुआ देखकर सब कोई इकट्ठे होकर तलवार और शक्ति ग्रहण करके भृगुनन्दन रामकी ओर दौड़े। इधर रामने भी

धनुष लेकर रथपर चढ़के बाण बरसाते हुए राजाके समस्त बलको व्यथित किया। अनन्तर कितनेही चत्रिय जमदग्निपुत्र रामके भयसे भीत होकर सिंहार्द्दित मृगकी भांति गिरिकन्दरामें प्रविष्ट हुए। क्रमसे चत्रियोंको रामके भयसे निज विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान न करनेपर उनके पुत्रगण वेदज्ञानसे रहित होकर शूद्रत्वको प्राप्त हुए। इसही प्रकार चत्रधर्म्मावलम्बी शवरके सहित द्रविड़, आभीर और पुण्ड्र येभी निज धर्म्मका अनुष्ठान न करनेसे शूद्रत्वको प्राप्त हुए अनन्तर ब्राह्मणोंके द्वारा हतवीरा विधवा चत्रिय स्त्रियोंसे जो सब चत्रिय सन्तान उत्पन्न होने लगे, जमदग्निपुत्र राम उनकाभी वध करने लगे। रामने इसी भांति इक्कीसबार युद्धयज्ञ पूरा किया; अन्तमें वह सर्व्वजन परिश्रुत मधुर अशरीरिणी देववाणीने उनसे कहा। "हे राम! तुम बार बार इन चत्रबन्धुओंको विनष्ट करके कौनसा गुण अवलोकन करते हो? हे तात! तुम इस निठुर कार्य्यसे निवृत्त हो जाओ"। हे महाभागे! उस समय ऋचीक आदि पितामहोंने भी उस महात्मा रामको निवृत्त किया। परन्तु राम पितृवधसे शान्त न होकर ऋषियोंसे बोले। हे पितामहगण! इस विषयमें मुझे निवारण करना आप लोगोंको उचित नहीं है।

पितृगण बोले, हे विजयप्रवर! वे सब चत्रबन्धु तुम्हारे वधके योग्य नहीं हैं, विशेष करके ब्राह्मण होकर चत्रियोंको मारना तुम्हारे पक्षमें युक्तियुक्त नहीं होता है।

२६ अध्याय समाप्त।

पितृगण बोले, हे द्विजसत्तम! इस अहिंसा विषयमें पण्डित लोग जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं, उसे सुनकर तुम्हें वैसाही करना योग्य है। पहले समयमें महातपस्वी धर्म्मज्ञ सत्यवादी महात्मा दृढ़व्रती अलर्क नाम एक राजर्षि थे। उन्होंने शरासनसे समुद्रके सहित इस वसुन्धराको जीतते हुए अत्यन्त दुष्कर कर्म्म करके सूक्ष्म विचारमें मन लगाया, हे महाप्राज्ञ! वह एक बार निज उत्तम महत् कर्म्मोंको परित्याग करके वृक्षके मूलमें बैठकर सूक्ष्म परब्रह्मका विचार करने लगे। अलर्क मनही मन चिन्ता करके बोले, कि मेरे मनका बल अत्यन्त प्रबल होगया है; इसलिये मनको जीतनेसे मुझे नित्य जय प्राप्त होगी; इस समय मैं इन्द्रियरूपी शत्रुओंसे घिरा हुआ हूं; इन वाह्य इन्द्रियरूपी शत्रुओंके विषयमें हठयोगरूपी बाण चलाऊंगा। जब मनको चपलतासे ही ये कर्म्म मनुष्यको गिरानेकी इच्छा करते हैं, तब मनकी ओर ही मैं हठ योगरूपी इन बाणोंको छोड़ूंगा।

मन बोला, हे अलर्क! ये बाण मुझे कदापि छेदन न कर सकेंगे, ये तुम्हारेही मर्म्मोंको बेधेंगे, तब तुम मर्म्मोंके कटनेसे दुःखी होगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे मारोगे उसका अनुसन्धान करो।

अलर्क ऐसा सुनके सोचकर बोले, नासिका अनेक प्रकार गन्धको सूंघती हुई सुगन्धको ही अभिलाष किया करती है; इसलिये उस नासिकाके विषयमें मैं इन शाणित बाणोंको छोड़ूंगा।

नासिका बोली, हे अलर्क! तुम मेरी ओर जिन बाणोंको छोड़ोगे, वे कदापि मुझे भेद न कर सकेंगे। बल्कि वे बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करेंगे, तब तुम ही भिन्नमर्म्मा होकर मृत्युमुखमें पतित होगे। इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे नष्ट कर सकोगे, उसका अनुसन्धान करो।

अलर्क ऐसा वचन सुनकर चणभर सोचके बोले, कि यह जिह्वा सुस्वादु रसको भोजन करके उस रसकी ही अभिलाष किया करती है, इसलिये मैं जिह्वाके विषयमें ही यह शाणित बाण छोड़ूंगा।

जिह्वा बोली, हे अलर्क! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंको चलानेकी इच्छा करते हो, वे बाण कदापि मुझे स्पर्श न कर सकेंगे, वरन तुम्हारे ही मर्म्मोंको भेदकर तुम्हें नष्ट करेंगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणके सहारे तुम मुझे विनष्ट कर सकोगे, उसका ही अनुसन्धान करो। अलर्क ऐसा सुनकर क्षणभर सोचके बोले, कि त्वचा विविध स्पर्शको स्पर्शन् करके उस स्पर्शकी ही आकांक्षा किया करती है; इसलिये मैं कङ्कपत्रयुक्त विविध बाणोंसे त्वचाको नष्ट करूंगा।

त्वचा बोली, हे अलर्क! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंके चलानेकी इच्छा करते हो, वे कदापि मुझे भेद न कर सकेंगे, वे तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें विनष्ट करेंगे, इसलिये तुम इसके अतिरिक्त जिस बाणसे मुझे नष्ट कर सकोगे, उसकी खोज करो।

अनन्तर अलर्क ऐसा वचन सुनकर क्षणभर चिन्ता करके बोले, कि कान विविध शब्द सुनके शब्दकी ही आकांक्षा किया करता है; इसलिये मैं इन शाणित बाणोंको कानके ऊपर चलाऊंगा।

कान बोला, हे अलर्क! तुम मेरे ऊपर जिन बाणोंको छोड़नेकी इच्छा करते हो, वे शर कदापि मुझे भेदित न कर सकेंगे। बल्कि वे तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हारा जीवन नष्ट करेंगे, इसलिये इनके अतिरिक्त जिस बाणसे तुम मुझे विनष्ट करोगे, उसकी खोज करो।

अलर्क इतना वचन सुनके क्षणभर चिन्ता करके बोले, नेत्र अनेक भांतिके रूपको देखकर उस रूपकी ही आकांक्षा किया करता है, इसलिये मैं इन शिकल किये हुए बाणोंसे नेत्रको नष्ट करूंगा।

नेत्रने कहा, हे अलर्क! तुम इन बाणोंसे किसी प्रकार मुझे विनष्ट न कर सकोगे, बल्कि ये बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें विनष्ट करेंगे; इसलिये इसके अतिरिक्त जिस बाणके सहारे तुम मुझे विनष्ट कर सकोगे, उस ही बाणकी खोज करो।

अनन्तर अलर्क ऐसा वचन सुनकर क्षणभर चिन्ता करके बोले, यह बुद्धि प्रज्ञाके द्वारा अनेक प्रकारकी निष्ठा निष्पन्न किया करती है, इसलिये मैं शाणित बाणोंको बुद्धिके ऊपर छोडूंगा।

बुद्धि बोली, हे अलर्क! तुम इन बाणोंसे मुझे कदापि विनष्ट न कर सकोगे; वरन ये बाण तुम्हारे ही मर्म्मोंको छेदन करके तुम्हें नष्ट करेंगे; यदि मेरे विनाश करनेके लिये तुम्हें अत्यन्त अभिलाष हुई हो; तो तुम इसके अतिरिक्त और कोई बाण खोजो।

ब्राह्मण बोला, तिसके अनन्तर अलर्क उस स्थानमें घोर दुष्कर तपस्या करके भी पूर्व्वोक्त सातों इन्द्रियोंके विषयमें बलपूर्व्वक बाण न छोड सके। हे द्विजसत्तम! अनन्तर प्राज्ञवर प्रभु अलर्क समाहित चित्तसे बहुत समयतक सोचकर परम कल्याण लाभ न कर सकनेसे एकाग्रचित्त होकर निश्चलभावसे योगमार्ग अवलम्बनपूर्व्वक एक बाणसे शीघ्र ही उन इन्द्रियोंको विनष्ट किया और योगबलसे परमात्मामें प्रविष्ट होकर परम सिद्धि प्राप्त की। अनन्तर राजर्षि अलर्कने विस्मित होकर यह गाथा गाया, कि ओहो! कैसा कष्ट है!! क्यों कि पहले मैं भोगतृष्णासे आक्रान्त होकर उन बाह्यवस्तु राज्यादिकी उपासनामें नियुक्त था, अब मैंने निश्चय जाना, कि योगसे बढ़के सुखदायक और कुछ भी नहीं है।

हे राम! तुम इसी विशेष रीतिसे जानके क्षत्रियोंके बधसे निवृत्त होकर घोर तपस्याचरण करनेसे कल्याण लाभ कर सकोगे। महाभाग जमदग्निपुत्र रामने पितामह गणोंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कठोर तपस्याका अनुष्ठान करते हुए दुर्गम सिद्धि प्राप्त की।

३० अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, सतोगुणसे उत्पन्न प्रहर्ष, प्रीति और आनन्द ये तीनों ही लोकके बीच शत्रु रूपसे गिने गये हैं; येही वृत्तिभेदसे नव प्रकार हुआ करते हैं। तृष्णा, क्रोध तथा संरम्भ, ये तीनों रजोगुणसे और श्रम, तन्द्रा तथा मोह, ये तीनों तमोगुणसे उत्पन्न हुए हैं। धृतिमान, जितेन्द्रिय प्रशान्तचित्त पुरुष इन सबको छेदन करके तन्द्राविहीन होकर शरसमूहसे शत्रुओंको जीतनेके लिये उद्यत होवे। पहली समयमें प्रशान्तचित्त राजा अम्बरीषने जिस गाथाको गाया था, पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें वही गाथा कहा करते हैं; शमगुण अन्तर्हित और रजोगुणके पूरी रीतिसे उदित होनेपर महायशस्वी राजा अम्बरीषने सहसा राज्य ग्रहण किया। अनन्तर वह आत्माके रजोगुणको निग्रह करके शमगुणकी सम्माननना करनेसे महती श्री लाभ करके यह गाथा गाने लगे। मैंने शत्रुओंको जीता और दोषोंको विनष्ट किया है; परन्तु अवश्य बध्य एक महान् दोष है, उसे नष्ट नहीं कर सका। इस ही लिये इस जन्ममें प्रयुक्त होकर वैतृष्णा लाभ नहीं कर सका, तृष्णार्त्त होकर मूर्खकी भांति नीचकर्म्मोंकी ओर दौड़ रहा हूं। मनुष्य इसलोकमें इसहीके द्वारा प्रयुक्त होकर अकार्य्योंकी सेवा किया करता है, उसहीको तीक्ष्ण तलवारके सहारे नष्ट करे; क्यों कि लोभसे तृष्णा उत्पन्न होती है और उससे चिन्ता प्रवृत्त हुआ करती है; मनुष्य लिप्समान होकर प्रचुर परिमाणसे राजसगुण लाभ करता है परन्तु राजसगुण प्राप्त न होनेसे तामसगुण प्राप्त हुआ करता है। देहबन्धन उन गुणोंके सङ्ग मिलित होनेसे पुरुष बार बार जन्म ग्रहण करके कर्म्मकी आकांक्षा किया करता है और जीवन नष्ट होनेसे भिन्न तथा विक्षिप्त देह होकर जन्मके सहित मृत्युको प्राप्त हुआ करता है। इसलिये पूरी रीतिसे पर्य्यालोचना करते हुए लोभको देहके बीच रोकके राज्यकी इच्छा करे। आत्मा ही राजा और इसलोकमें लोभका रोकना ही राज्य है, इससे बढ़के अन्य राज्य और कुछ भी नहीं है; इस ही भांति यथावत जानना चाहिये। लोभको निग्रह करनेवाले राजा अम्बरीषने अधिराज्यके उपलक्ष्यमें यह गाथा गाई थी।

३१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भाविनि! इस लोभनिग्रह विषयमें पण्डित लोग ब्राह्मण और जनकके सम्वादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। राजा जनक किसी अपराधी ब्राह्मणको अनुशासन करनेके लिये बोले, कि तुम मेरे राज्यमें वास न करने पाओगे।

ब्राह्मण राजाका ऐसा वचन सुनके बोला, हे महाराज! जो आपके वशवर्त्ती हो, वही विषय आप मुझसे कहिये। हे विभु! मैं आपकी आज्ञानुसार अन्य राज्यमें वास करके शास्त्रके अनुसार आपके वचनको प्रतिपालन करनेकी इच्छा करता हूं। उस समय राजा यशस्वी ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके बार बार गर्म्म सांस छोड़ते हुए कुछ भी उत्तर न दे सके। अमित तेजस्वी राजा जनक बैठके चिन्ता करते हुए राहुग्रस्त सूर्य्यकी भांति सहसा मोहग्रस्त हुए। अनन्तर थोड़े समयके बाद आश्वासित होकर मुहूर्त्तभरके बीच मोह रहित होकर उठके उस ब्राह्मणसे कहने लगे।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम! पितृपितामह-राज्य और समस्त जनपद वशीभूत होनेपर भी मुझे पृथ्वीमें खोजनेपर यह विषय प्राप्त न हुआ, तब मिथिलामें खोजा, मिथिलामें भी न पाकर प्रजाके बीच अन्वेषण किया; फिर जब प्रजाके बीच भी न पाया, तब मुझे मोह उपस्थित हुआ। अनन्तर मोह शान्त होनेसे बुद्धि उदित होनेपर मुझे ऐसा बोध हुआ, कि कोई विषय

भी मेरा नहीं है और सब विषय ही मेरे हैं; आत्मा मेरा नहीं है और सारी पृथ्वी मेरी है। ये सब विषय जैसे मेरे हैं, वैसे ही दूसरोंके भी हैं। हे द्विजवर! इसलिये जहां आपकी इच्छा हो, वहां वास करो और जो अभिरुचि हो, वह भोग करो।

ब्राह्मण बोला, हे महाराज! पितृपितामह राज्य और जनपदके वशीभूत रहनेपर भी आपने कौनसी बुद्धि अवलम्बन करके उसकी ममता परित्याग की? और किस बुद्धिके सहारे ऐसी विवेचना की, "कि सब विषय मेरे तथा मेरे नहीं है।"

जनक बोले, इस लोकमें आढ्यत्व और दरिद्रत्व प्रभृति सब अवस्था नश्वर हैं, यह सब कर्म्म ही मुझे विदित है, इस ही निमित्त ऐसा नहीं समझता, कि 'यह मेरी होगी' यह विषय, यह धन किसीका भी नहीं है, इस वेद वाक्यके अनुसार मैं इसे अपना नहीं समझता हूं; इस ही बुद्धिको अवलम्बन करके मैंने ममता परित्याग किया है और जिस बुद्धिके सहारे मैं सब विषयोंको अपना कहा करता हूं, उसे सुनो। मैं अपने निमित्त नासिकामें गई हुई सुगन्धिको भी नहीं सूंघता, इसहीसे यह भूमि मेरे द्वारा परित्यक्त होकर सदा मेरे वश-वर्त्ती होकर निवास करती है, मैं सुखमें गये हुए रसको भी नहीं पीता, इस ही निमित्त जल मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर सदा निवास करता है। मैं अपने निमित्त नेत्रकी ज्योतिस्व-रूपको ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता, इसीसे ज्योति मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर सदा मेरे वशवर्त्ती होरही है। मैं अपने लिये त्वग्गत स्पर्शको स्पर्श करनेकी इच्छा नहीं करता, इसीसे वायु मुझसे निर्ज्जित होकर मेरे वश-वर्त्ती होरहा है। मैं अपने निमित्त कानमें गये हुए शब्दको नहीं सुनता, इसलिये शब्द मेरे द्वारा निर्ज्जित होकर निरन्तर मेरे वशवर्त्ती होरहा है। मैं अपने निमित्त अन्तरस्थित मनको मनन करनेकी इच्छा नहीं करता इस हेतु मन मुझसे निर्ज्जित होकर सदा मेरे वश-वर्त्ती है। मैं देवताओं, पितरों, प्राणियोंके और अतिथियोंके लिये समस्त द्रव्यादि संग्रह किया करता हूं। अनन्तर ब्राह्मण जनकसे हंस करके फिर बोले, कि आज मैं तुम्हें जाननेकी इच्छासे आया था, तुम मुझे धर्म्म कहके मालूम करो। तुम ही इस सत्त्वरूपनेमिसे निरुद्ध चक्र-स्वरूप अनिवर्त्ती दुर्व्वार ब्रह्मलाभके एकमात्र प्रवर्त्तक हुए हो।

३२ अध्याय समाप्त।

———

ब्राह्मण बोला, हे भीरु! तुम निज बुद्धिके अनुसार मुझे जैसा समझके तर्ज्जन करती हो, मैं जगत्के बीच उस प्रकार विचरण नहीं करता, मैं वनचारी, गृही व्रतवान ब्राह्मण जीवन्मुक्त हूं। हे सुन्दरि! तुम मुझे जैसा देखती हो, मैं वैसा नहीं हूं, इस जगत्में शुभ और अशुभ जो कुछ देखा जाता है, वह सब मेरे द्वारा व्याप्त होरहा है। इस जगत्के बीच स्थावर जङ्गम प्रभृति जितने जन्तु हैं, काष्ठको जलानेवाली अग्निकी भांति मुझे उनका अन्तक जानो। समस्त पृथ्वी और स्वर्गका जैसा राज्य है, वह इस बुद्धिके द्वारा विदित है; परन्तु बुद्धि ही मेरा राज्यधन है। ब्राह्मणोंके लिये ज्ञान ही एकमात्र पथ है, ब्रह्मवित् ब्राह्मण लोग उस पथसे ही गृह, वनवास गुरुवास और भिक्षु-वासके लिये गमन किया करते हैं। वे लोग अचञ्चल अनेक प्रकारके चिन्ह धारण करते हुए एकमात्र बुद्धिकी उपासना किया करते हैं, अनेक लिङ्ग तथा अनेक आश्रमवालोंकी बुद्धि शमगुणावलम्बिनी होनेसे एक ही समुद्रमें गमन करनेवाली नदियोंकी भांति वे लोग एक ही भावको प्राप्त होते हैं। यह पथ बुद्धिके द्वारा प्राप्त होता है, शरीरके द्वारा नहीं प्राप्त हो

सकता ; सब कर्म्म आदि और अन्त विशिष्ट हैं, शरीर कर्म्मके द्वारा बद्ध होता है। हे सुभगे! तुम्हें परलोकका भय नहीं है, मेरे भावमें रत होनेसे तुम्हें मेरा ही देह प्राप्त होगा।

३३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मणी बोली, इस विषयको अल्पात्मा तथा अकृतात्मा पुरुष जाननेमें समर्थ नहीं होता ; मेरा मत बहुत थोड़ा, संचिप्त और विप्लुत है। जिसके सहारे यह बुद्धि प्राप्त होती है, आप मुझसे उसका उपाय कहिये। परन्तु चाहे किसीके द्वारा यह बुद्धि क्यों न प्रवृत्त होवे, आपको ही मैं उसका कारण समझती हूं।

ब्राह्मण बोले, ब्राह्मणी अर्थात् ब्रह्मनिष्ठा बुद्धि अध अरणी और ब्रह्मज्ञानकी गुरु उत्तर अरणी जानो ; दोनों अरणी मनन निदिध्यासन और वेदान्त सुननेपर मथित होनेसे उनसे ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है।

ब्राह्मणी बोली, चेत्रज्ञ नामक यह ब्रह्म-लिङ्ग जिसके द्वारा जाना जाता है, उसका लक्षण क्या है?

ब्राह्मण बोला, ब्रह्म अलिङ्ग और निर्गुण है, इसलिये उसका कारण मालूम नहीं होता, तब जिसके द्वारा वह ग्रहीत हो, वा न हो, उसका उपाय कहता हूं। जैसे ऊपरमें उड़-नेवाले भौरोंके द्वारा सुराभगन्ध मालूम होते हैं, वैसे ही पूर्व्वोक्त श्रवण आदि उपाय पूरी रीतिसे मालूम होती है। जिसकी बुद्धि कर्म्मके द्वारा परिशोधित नहीं होती, वह पुरुष अबु-द्धिसे असङ्ग ब्रह्मको भी बुद्धिके अश्रित ससङ्ग कहके बोध किया करता है। मोच विषयमें "यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है,"—ऐसा उपदेश नहीं होसकता, क्यों कि देखने तथा सुननेवाले आत्माकी बुद्धि स्वयं ही मोचविष-यमें उत्पन्न होती है। इस संसारमें मोचका अंश अनेक अर्थयुक्त समस्त पदरूपी, अप्रत्यच आदि प्रमाणरूपी, अव्यक्त माया अविद्यारूपी और व्यक्त शब्दादिरूपसे सैकड़ों सहस्रों प्रका-रका है ; इतना ही नहीं बरन जितने प्रका-रके अंशोंकी कल्पना हो सके, उतने प्रकारके अंशोंकी कल्पना करे ; परन्तु शम आदि पूर्व्वो-रीतिसे अभ्यस्त होनेपर जिसके अनन्तर और कुछ भी नहीं है, वह वस्तु प्राप्त होगी।

श्रीभगवान् बोले, उसके अनन्तर चेत्रजीवके परमात्मामें लीन होनेपर उस ब्राह्मणीकी बुद्धि चेत्रज्ञके अनन्तर चेत्रज्ञस्वरूपमें प्रवृत्त हुई।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! जिन्होंने यह सिद्धि प्राप्त की है, वह ब्राह्मण और ब्राह्मणी कहां हैं।

श्रीभगवान बोले, हे धनञ्जय! मेरे मनको ब्राह्मण और मेरी बुद्धिको ब्राह्मणी जानो और जिसका चेत्रज्ञरूपसे वर्णन हुआ है, वह मैं हूं।

३४ अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, हे कृष्ण! जो परब्रह्म ज्ञेय है, उसकी तुम मेरे समीप व्याख्या करो, तुम्हारे ही प्रसादसे मेरी बुद्धि सूक्ष्म विषयोंमें रमण करती है।

श्रीकृष्ण बोले, इस विषयमें पण्डित लोग मोचसंयुक्त गुरु-शिष्यके सम्वादयुक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। हे परन्तप! किसी मेधावी शिष्यने बैठे हुए संशितव्रती ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्यसे पूछा, हे प्रभु! इस जगत्के बीच कल्याण क्या है? यह विषय आप मेरे समीप कहिये। मैं मोचपरायण होके आपका शर-णागत हुआ हूं ; मैं सिर झुकाके आपके निकट यही प्रार्थना करता हूं, कि आप मेरे प्रश्नका यथावत उत्तर दीजिये। हे पार्थ! शिष्यका ऐसा बचन सुनके गुरुने उससे कहा, हे द्विज! जिसमें तुम्हें संशय उपस्थित हुआ है, वह सब विषय तुमसे कहूंगा। हे महाबुद्धिमान! गुरुवत्सल शिष्यने गुरुका ऐसा बचन सुनके हाथ जोड़के गुरुसे जो पूछा था, उसे सुनो।

शिष्य बोला, हे विप्र ! मैं कहांसे उत्पन्न हुआ हूं ? आप किससे उत्पन्न हुए हैं ? चराचर स्थावर प्रभृति प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं ? वे सब किसके द्वारा जीवित रहते हैं ? उनकी परमायुकी क्या संख्या है ? सत्य क्या है ? तपस्या क्या है और पण्डितोंसे द्वारा कौनसे गुण वर्णित हुए हैं ? यह सब मुझसे सत्य ही कहिये। हे सुव्रत ! कौनसा पथ शुभकर है ? सुख क्या है ? पाप क्या है ? इन सब प्रश्नोंका आपको यथार्थ रीतिसे उत्तर देना उचित है। हे विप्रर्षि ! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन प्रश्नोंका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं है। हे धार्म्मिकश्रेष्ठ ! आप इसे विस्तारपूर्व्वक कहिये, इसमें मुझे कौतूहल हुआ है; आप लोकमें मोक्षधर्म्मार्थ कुशल कहके गिने गये हैं। आपके अतिरिक्त सब संशयोंको नष्ट करनेवाला और कोई भी नहीं है, हम लोग संसारभीरु और मोक्षके अभिलाषी हैं।

श्रीकृष्ण बोले, हे अरिदमन कुरुश्रेष्ठ पार्थ ! धृतव्रत मेधावी गुरु उस जिज्ञासु, सद्गुण सम्पन्न प्रतिपन्न, शान्त, दान्त, प्रियवर्त्ती, छायास्वरूप, यति, ब्रह्मचारी शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर यथार्थ रीतिसे देने लगा।

गुरु बोला; तुमने वेदविद्या अवलम्बन करके जो प्रश्न किया है, उस विषयमें ब्रह्माने ऋषियोंके द्वारा सेवित अबाधितार्थके विचारयुक्त यह वचन कहा था। जो पुरुष निश्चित रीतिसे ज्ञानरूपी परब्रह्म, संन्यास रूपी श्रेष्ठ तपस्या, बाधारहित ज्ञान तत्त्व और सर्व्वभूतस्थ आत्माको जान सकता है, वह सब प्रकारसे कामना भोग करनेमें समर्थ होता है। जो विद्वान मनुष्य ज्ञात-स्वभाव अविद्या और चिन्मय परमात्माका सहवास, पृथक् वास, एकत्व और अनेकत्व दर्शन करता है, वह महा घोर दुःखभोगसे मुक्त होता है। जो किसी विषयमें अभिमान नहीं करता, वह इस लोकमें रहकर अर्थात् सशरीरही मुक्त होता है। जो मनुष्य निर्म्मम और अहङ्काररहित होकर प्रधानमाया सत्वादि गुणों और सर्व्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारणको जान सकता है, वही मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है। अव्यक्त अज्ञान जिसका मूल है, बुद्धि स्कन्ध अहङ्कार पल्लव, इन्द्रियें कोटरस्थ पत्रांकुर, विषयादि पञ्च महाभूत पुष्पकोरक और स्थूलकार्य्य जिसकी उपशाखा हैं; पुरुष सदा गिरनेवाला पत्ता, कर्म्मरूपी पुष्प और सुखदुःखरूपी फलसे युक्त सब जीवोंका उपजीव्य संसारवृक्षकी बीजभूत इस सनातन ब्रह्मको विशेष रीतिसे जानकर ज्ञानरूपी तलवारके द्वारा इस वृक्षको अव्यक्तादिरूप मूल प्रभृति शाखा प्रशाखाओंको काटकर मनुष्य अमृतत्व लाभ करके जन्ममृत्युसे रहित होनेमें समर्थ होता है।

हे महाप्राज्ञ ! पहले मनीषी महर्षिगण इकट्ठे होकर निज निज बुद्धिके अनुसार जिस विषयको आपसमें पूंछकर सशरीर मुक्त हुए थे, सिद्धसमूहोंसे परिज्ञात, वर्त्तमान, भूत, भविष्यत्, धर्म्म-काम और अर्थके निश्चययुक्त वह अत्यन्त श्रेष्ठ सनातन मोक्षपद आज मैं तुमसे कहता हूं। पहले प्रजापति भरद्वाज, गौतम, भृगुनन्दन जमदग्नि, वसिष्ठ, काश्यप, विश्वामित्र और अत्रि आदि विप्रोंने मार्गोंमें परिभ्रमण करते हुए निज निज कर्म्मोंके द्वारा परिश्रान्त होकर अङ्गिरापुत्र वृहस्पतिको अगाड़ी करके ब्रह्मभवनमें जाकर निर्म्मल ब्रह्माका दर्शन किया। अनन्तर महर्षियोंने सुखसे बैठे हुए उस ब्रह्माको प्रणाम करके विनीतभावसे उनसे मुक्तिका विषय इस प्रकार पूंछा। हे ब्रह्मन् ! साधुलोग कैसा कर्म्म करेंगे ? किस प्रकार पापोंसे छूटेंगे, हमलोगोंके लिये कौनसे मार्ग मङ्गलजनक हैं ? सत्य क्या है ? दुष्कृत क्या है ? कर्म्मोंके दक्षिण और उत्तर दोनों मार्ग कौनसे हैं ? प्रलय किसे कहते हैं ? अपवर्ग क्या है और

भूतोंकी उत्पत्ति तथा विनाश किसे कहते हैं? यह सब मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। हे शिष्य! पितामह ब्रह्माने मुनियोंका ऐसा प्रश्न सुनके उनसे जो कहा था, मैं तुमसे वही विषय कहता हूं, सुनो।

ब्रह्मा बोले, हे सुव्रत द्विजगण! तुम लोग यह निश्चय जानो, कि सत्य अर्थात् त्रिकालावस्थायी ब्रह्मसे अव्यक्त प्रभृति सब भूत, विप्रयादि स्थावर और जरायुजादि चर समूह उत्पन्न होकर तपरूपी कर्म्मके द्वारा जीवित रहते हैं, परन्तु जब वे लोग निज योनिभूत ब्रह्मपथ अतिक्रम करते हैं, तब ध्यानसे च्युत होकर केवल निज कर्म्ममार्ग में ही स्थित रहते हैं, व्यवहारिक गुणयुक्त सत्य पांच हैं; परन्तु अकेला ब्रह्म ईश्वर सत्य है। तप अर्थात् धर्म्म सत्य है, प्रजापति जीव सत्य है, सत्यसे उत्पन्न सब भूत सत्य हैं और भूतमय जगत् सत्य है। इसही निमित्त सत्याश्रित क्रोध और सन्ताप विहीन नियतेन्द्रिय तथा नियत योग परायण विप्रगण धर्म्मसेतु कहाते हैं। जो लोग परस्परके भयसे धर्म्मको अतिक्रम नहीं करते, वे विद्वान् धर्म्मसेतु प्रवर्त्तक और शाश्वत लोकाचन्तक ब्राह्मणोंका विषय मैं तुमसे कहता हूं। हे द्विजगण! मनीषीवृन्द चतुष्पाद एकमात्र जिस धर्म्मकी नित्य कहा करते हैं, वही धर्म्म धर्म्मार्थ काम और मोक्षप्रद चारों विद्या, ब्राह्मणादि चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य्यादि चारों आश्रमोंको पृथक् रीतिसे कहता हूं। हे महाभागगण! पहले मनीषिवृन्द ब्रह्मप्राप्तिके निमित्त सदा इसलोकमें जिस पथसे गमन करते थे, वह मोक्ष तथा मङ्गलजनक दुर्व्विज्ञेय परम पथ सब भांति तुम्हारे समीप कहता हूं; तुम लोग सुनो।

पण्डित लोग ब्रह्मचर्य्य आश्रमको प्रथम पद गार्हस्थ्य आश्रमको दूसरा पद वाणप्रस्थ आश्रमको तीसरा पद और परमात्मप्रापक सबसे विशेष सन्न्यासाश्रमको चतुर्थ पद कहा करते हैं। जीव जबतक आध्यात्मिक सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन करके परमात्माका दर्शन नहीं करता, तबतक अग्नि, आकाश आदित्य वायु इन्द्र और प्रजापति प्रभृति विश्वका दर्शन किया करता है, वायु, फलमूलाशी बनवासी मुनियोंकी अध्यात्म दर्शनकी उपाय पहले कहता हूं उसे सुनो। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों द्विजातियोंके लियेही वाणप्रस्थ आश्रम विहित है, अन्य वर्णोंको केवल गार्हस्थ्य आश्रम अवलम्बन करना योग्य है। पण्डित लोग श्रद्धा अर्थात् आस्तिक्य बुद्धिको ही धर्म्मका मुख्य लक्षण कहा करते हैं, यही तुम लोगोंके देवयान मार्ग प्राप्तिका पथ वर्णित हुआ है, साधु लोग निज कर्म्मोंके सहारे धर्म्मके सेतु स्वरूप पथसे गमन किया करते हैं। जो संशितव्रती मनुष्य इन सबके बीच एक मात्र धर्म्मको ही पृथक् रूपसे अवलम्बन करता है, वह कालक्रमसे सर्व्वदा प्राणियोंकी उत्पत्ति और विनाश दर्शन करता है।

इसके अनन्तर युक्तिके अनुसार वुद्धिस्थ वर्त्तमान तत्त्वोंको विभाग क्रमसे यथावत कहता हूं, सुनो। महान् आत्मा, अव्यक्त प्रकृति, अहंकार, श्रोत्रादि, दशो इन्द्रिय, मन विषयादि पञ्चमहाभूत और शब्दादि पञ्च विशेषगुण, ये सनातनी सृष्टि हैं; इस ही प्रकार पचीस तत्त्वोंकी संख्या वर्णित हुई है। जो मनुष्य इन पचीस तत्त्वोंकी उत्पत्ति और विनाशको विशेष रीतिसे जान सकता है, उस धीरको सब प्राणियोंसे मोह नहीं प्राप्त होता और जो मनुष्य पचीस तत्त्वों, सत्त्वादि गुणों तथा देवताओंको विशेष रीतिसे जानता है, वह निष्पाप होकर बन्धनोंसे छूटकर निर्म्मल लोक प्राप्त करता है।

३५ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, उन तत्त्वोंके बीच जो त्रिगुणात्मक सर्व्वकार्य्यव्यापी भावनाशी और अचञ्चल है, उसे ही जानना चाहिये, कि वही अनुत्त

अव्यक्त प्रभृति उद्रिक्त होकर नवद्वार युक्त पञ्च-धातुमय पुररूपसे परिणत होता है। जिसमें जीवात्मा विषयभोग वासनासे जिसके द्वारा परि-क्षिप्त होता है और मनसे सङ्कल्पसम्मत सब विषय प्रकट होते हैं, उन ग्यारह इन्द्रियोंसे युक्त बुद्धि स्वामिकपुरके बीच परब्रह्म अध्यासित होकर ग्यारह भागमें विभक्त होता है। धर्म्म प्राबल्य हिंसारहित शुक्ल, हिंसा प्राबल्य कृष्ण तथा हिंसायुक्त प्रवृत्तिधर्म्म, प्राबल्य शुक्ल कृष्ण; ये तीनों उस पुरस्थित नदीके स्रोत हैं, ये स्रोत त्रिगुणात्मक संस्काररूप तीन नाड़ियोंके द्वारा बार बार आप्यायित तथा सब नाड़ियोंसे बार बार वर्द्धित हुआ करते हैं। पण्डित लोग तम, रज और सत्त्व, इन तीनोंको गुण कहा करते हैं; ये तीनों गुण परस्पर अनुजीव्य अवलम्बन करनेसे मिथुनभावको प्राप्त होकर दम्पतीका कार्य्य उत्पन्न करते हैं। परस्परके अनुवर्त्ती होकर आपसमें एक दूसरेके अवलम्ब होते हैं और अग्नि, जल तथा अन्न इन तीनों कार-णोंकी भांति परस्परमें मिलके पञ्चभूत तथा भौतिकरूपसे परिणत होते हैं। तमोगुणका अभिभावक सत्त्व, सतोगुणका अभिभावक रज, रजोगुणका अभिभावक सत्त्व, सतोगुणका अभि-भावक तम है अर्थात् तमोगुणके उदय होनेसे सतोगुण अन्तर्हित होता है; सतोगुणके उदय होनेसे रज और रज तथा तमोगुणके उदय होनेसे सत्त्व अन्तर्हित होता है। जिसे स्थलमें तमोगुण दूर होता है, उस स्थानमें जो गुण प्रवर्त्तित हुआ करता है और जिस स्थानमें रजोगुण अन्तर्हित होता है, उस स्थलमें सतो-गुण प्रवर्त्तित हुआ करता है। पापकर्म्ममें विरत अधर्म्म लक्षण मोह नामक नैशात्मक तमको त्रिगुणात्मक जानो। पण्डित लोग सर्व्वभूतोंमें प्रवृत्त, उत्पत्तिलक्षण दृश्य वैपरीतकारक रजो-गुणको प्रकृत्यात्मक कहा करते हैं और सर्व्व-भूतोंमें प्रकाशमान धर्म्मज्ञानादि रूप श्रद्धानता प्रभृति सौष्टव सात्विकगुण साधुसम्मत हैं, सत्त्वा-दिगुणोंके समास और व्यासयुक्त कार्य्यस्वरूप सब तत्त्व हेतुके द्वारा यथार्थ रीतिसे वर्णित हुए हैं; तुम लोग उसे सुनो। सम्मोह, अज्ञान, अत्याग, कर्म्मोंका अविनिर्णय, निद्रा स्तम्भ, भय, लोभ, शोक, सुकृत, दूषण, अस्मृति, अविपाक, नास्तिक्य, भिन्न वृत्तिता, निर्व्विशेषत्व, अन्धत्व, जघन्य अर्थात् चाण्डालादि गुणवृत्तत्व, अकृतमें कृतमानित्व, अज्ञानमें ज्ञानशालिता, अमैत्रीकृतता, विविध क्रिया भावत्व, अश्रद्धा, मूढ़भावना अनार्ज्जव, असङ्गत्व, पापकारित्व, अचेतनत्व, गुरुत्व अर्थात् आलससे जड़ता, सन्नभावत्व अर्थात् देवादिमें भक्तिहीनता, अजितेन्द्रियत्व और नीच कर्म्मानुरागिता,—ये सब तामसगुण कहके वर्णित हुए हैं। इस लोकमें भावसंश्रित दूसरे जो सब भाव विहित हैं, तामसगुण उन्हीं भावोंमें नियमके अनुसार उपस्थित हुआ करता है।

सदा ब्राह्मणोंकी परिवाद कथा और निन्दा, अत्याग, अभिमान, मोह, मन्यु, क्षमा, सबका शुभ-द्वेष, वृथा आरम्भ, वृथा दान, वृथा भक्षण अतिवाद, अतितिक्षा, मात्सर्य्य, अभि-मानिता और श्रद्धाहीनता,—ये सब तामसवृत्ति कहके वर्णित हुई हैं। इस लोकमें इस ही प्रकार जो सब पापकर्म्मवाले मर्य्यादारहित मनुष्य विद्यमान हैं, वे सब तामस कहके वर्णित हुए हैं। वे पापकर्म्मवाले तामस मनुष्योंको नियतयोनियोंको प्रकृष्टरूपसे कहूंगा; वे लोग अधःपतनके निमित्त तिर्य्यक्‌योनिमें गमन किया करते हैं। पापकर्म्मवाले तामसी मनुष्य तमसा-च्छन्न होकर क्रमसे स्थावर, पशु, वाहन, क्रव्याद दन्दशूक, कृमि, कीट, विहङ्ग, अण्डज, चतुष्पद जन्तु, उन्मत्त, बधिर, मूक, पापरोगी अपने किये हुए कर्म्मोंके लक्षणसम्पन्न दुर्व्वृत्त और अधोगामी—ये सब तामसयोनि सम्भूत कहके वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर उन लोगोंके

उत्कर्ष उद्रेक तथा वे लोग पुण्यकर्म्मा होकर जिस प्रकार सुकृत लोक लाभ कर सकते हैं, वह कहता हूं। इस प्रकार वैदिक श्रुति है, कि निज कर्म्ममें रत, शुभाकांची ब्राह्मणोंके बीच जो लोग अग्निहोत्रादि कर्म्मोंके निमित्त हिंसित होकर तिर्य्यक् स्थावरादि योनि लाभ करते हैं, वे वैदिक संस्कारसे स्थावर आदि योनिसे च्युत होकर यत्नपूर्व्वक सालोकता अर्थात् ब्राह्मणत्व जाति लाभ करते हुए उर्द्धदेवलोक तथा स्वर्गमें गमन किया करते हैं। तिर्य्यक् स्थावर आदि योनिसम्भूत तामसी पुरुष निज कर्म्मोंसे विवृद्ध होकर पुनरावृत्त धर्म्म ग्रहण करते हुए इस लोकमें मनुष्य योनिको प्राप्त हुआ करते हैं। चाण्डाल, मूक और चूचक प्रभृति मनुष्य पापयोनिको प्राप्त होकर पर्य्याय-क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वर्णोंको प्राप्त होते हैं। अन्यान्य तामसगुण शूद्रयोनि अतिक्रम करके तमोगुणके स्रोतमें आगमन करते हुए तामस-गुणमें ही वर्त्तमान रहते हैं। काममें अभिष्वङ्ग अर्थात् आसक्ति महामोह नामसे विख्यात् हुई है; सुखके अभिलाषी ऋषि, मुनि और देवगण इस महामोहसे मुग्ध हुआ करते हैं। क्रोध नामक मोह, महामोह, तामिस्र, मरण अन्ध-तामिस्र और क्रोध,—ये सब तमरूपसे वर्णित हुए हैं। हे विप्रगण! वर्ण, गुण, योनि और तत्त्वके अनुसार सब प्रकारके तमको तुम्हारे निकट विधिपूर्व्वक वर्णन किया। परन्तु कौन पुरुष इसे उत्तम समझेगा तथा कौन पुरुष ही इसे उत्तम रीतिसे देखेगा? जो पुरुष अतत्वमें तत्त्वदर्शी होता है, उसमें ही तमोगुणके प्रकृत लक्षण मालूम हुआ करते हैं, अनेक प्रकारके तमोगुण वर्णित हुए और परावर तम यथावत् कहा गया। जो मनुष्य इन गुणोंको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह समस्त तामसगुणोंसे मुक्त होता है।

३६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले,—हे द्विजसत्तमगण! तुम लोगोंसे रजोगुण और रजोगुणकी वृत्ति यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सङ्घात रूप, आयास सुख, दुःख, सर्दी, गर्म्मी, ऐश्वर्य्य, विग्रह, सन्धि हेतुवाद, रति, क्षमा, बल, शौर्य्य, मद रोष, व्यायाम कलह, ईर्षा ईप्सा, पिशुनता, युद्ध, ममता परिपालन, वध, बन्धन, क्लेश, क्रय, विक्रय, कतरो, काटो, छेदन करो, ऐसा कहके पराये मर्म्मको छेदन करना, उग्र, दारुण, आक्रोश परछिद्रानुसन्धान, लोकचिन्ता, मत्सरता, परिपालन, मृषावाद, मिथ्यादान, विकल्प, परिभाषण, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा, प्रताप, परिधर्षण, परिचर्य्या, शुश्रूषा, सेवा, तृष्णा, व्यापाश्रय, व्यूह, नीति, प्रमाद, परिवाद, परिग्रह, लोकके बीच नर-नारी, भूतद्रव्य और सब आश्रमोंमें सब संस्कार, सन्ताप, अप्रत्यय, व्रत नियम आशिर्युक्त विविध पौर्त्तकर्म्म, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, वषट्कार, याजन, अध्यापन, यजन, अध्ययन, दान, प्रतिग्रह, प्रायश्चित्त, यह मेरा है, यह मेरे स्नेहसे गुण उत्पन्न हुआ है। अभिद्रोह, माया, निकृति, मान, स्तैन्य, हिंसा, जुगुप्सा, परिताप, जागरण, दम्भ, दर्प, राग, भक्ति, प्रीति, प्रमोद, द्यूत, जनवाद, स्त्रीकृत सम्बन्ध, नृत्य, बाजा और गीत,—ये सब रजोगुणकी वृत्ति कहके वर्णित हुई हैं।

रजोगुणावलम्बी मनुष्य पृथ्वीपर वर्त्तमान, भूत और भविष्यत् विषयोंकी चिन्ता करते हैं, धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंमें सदा तत्पर रहते हैं, वे लोग कामवृत्ति अवलम्बन करके सब प्रकारसे काम तथा समृद्धिके सहित प्रमुदित होते वा ऊर्द्धमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग इस लोकमें बार बार जन्म लेकर ऐहिक और जन्मान्तरीय कुशलकी आकांक्षा करते हुए अत्यन्त आनन्दित होते और हर्षपूर्व्वक दान, परिग्रह, तर्पण तथा होम किया करते हैं। हे द्विजगण! अनेक

प्रकारसे रजोगुण तथा रजोगुणकी वृत्ति तुम्हारे निकट वर्णित हुई; परन्तु जो मनुष्य इन गुणोंको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह सब प्रकार रजोगुणोंसे मुक्त होता है।

३७ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजगण! इसके अनन्तर इस लोकमें सब भूतोंके हितकर साधुओंके लिये अनिन्दित धर्म्मस्वरूप उत्तम तृतीय सतोगुण तुम लोगोंसे कहता हूं, सुनो।

आनन्द, प्रीति, उन्नति, प्रकाश्यसुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धानता, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, शौच, दाक्षिण्य और पराक्रम,—ये सब सतोगुण हैं। जो पुरुष शास्त्रीय ज्ञानवृत्त सेवा और श्रम, इन सबको व्यर्थ समझके योगीधर्म्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें परमपदको प्राप्त हुआ करता है। निर्म्मम, निरहङ्कार, निराकांक्षा, सर्व्वत्र समता तथा अकाम, येही साधुओंके सनातन धर्म्म हैं। विस्रम्भ, लज्जा, तितिक्षा, त्याग, शौच, अतन्द्रिता, अनृशंसता, असम्मोह, सब भूतोंमें दया, अपिशुनता, हर्ष, तुष्टि, विस्मय, विनय, साधुवृत्तिता, शान्ति कर्म्ममें शुद्धि, शुभबुद्धि, विमोचन, उपेक्षा, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वस्व परित्याग, निर्म्ममता निराकांक्षत्व और अपरिक्षत धर्म्मता,—ये सब सतोगुणकी वृत्ति हैं। इसलोकमें जो सब सतोगुणावलम्बी धीर ब्राह्मण दान, यज्ञ, अध्ययन, व्रत, परिग्रह, धर्म्म और तपस्याको मिथ्या जानके ब्रह्मयोनिमें निवास करते हैं, वेही साधुदर्शी होते हैं। साधुदर्शी मनुष्य राजस और तामस पापकर्म्मोंको परित्याग करके निःशोक होकर स्वर्गमें जाकर अनेक प्रकारके शरीर स्रजन किया करते हैं। वे महात्मा त्रिदिववासी देवताओंकी भांति अणिमादि ऐश्वर्य्य लाभ करके मनको अनेक प्रकारके आकारसे विकृत किया करते हैं। ऊर्द्ध्वगामी देवगण वैकारिक नामसे विख्यात हुए हैं; वे प्रकृति अर्थात् भोगजसंस्कारके द्वारा पुनर्व्वार भोग करनेके निमित्त चित्तको विकृत करते हुए स्वर्गमें जाकर जो इच्छा करते हैं, सङ्कल्प भावसे ही उन वस्तुओंको पाते तथा दूसरोंको दान किया करते हैं।

हे द्विजेन्द्रगण! तुम लोगोंके निकट यह जो सात्त्विकी वृत्ति कही गई, मनुष्यगण इसे विशेष रीतिसे जाननेपर अभिलषित विषयोंको पा सकते हैं। मैंने सात्विक गुण तथा विशेष करके सतोगुणकी वृत्ति तुम लोगोंसे कही है। जो मनुष्य इन गुणों तथा गुणकी वृत्तियोंको जान सकता है, वह सर्व्वदा सतोगुण भोग करते हुए उसमें लिप्त हुआ करता है।

३८ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, सब गुणोंको पृथक् करके नहीं कहा जा सकता; सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण अपरिच्छन्न रूपसे लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। परस्परमें एक दूसरेके आश्रय तथा अनुजीव्य अवलम्बन करते हुए परस्परके अनुवर्त्ती होकर परस्परके अनुराग भाजन होते हैं। जिस स्थानमें सत्त्व विद्यमान रहता है, उस स्थानमें रजोगुण प्रवृत्त होता है और जितना तम और सत्त्वप्रकाशित होता है, उतनाही रजोगुण प्रकाशित हुआ करता है। संहतस्वभाव एक व्यवहारसम्पन्न सत्त्वादि सब गुण मिलके लोकव्यवहार सम्पादन करते हैं और हेतु तथा अहेतुके सहित वैषम्यभावसे निवास किया करते हैं। एक दूसरेके आश्रित उन सत्त्वादि गुणोंके परस्परकी उद्बोधक सामग्री न रहनेपर जिस प्रकार उनकी अन्यूनता तथा अनधिकता अर्थात् सबके रूप समान होते हैं, उसे कहना होगा। परन्तु जिस स्थानमें तमोगुण अतिरिक्त और तिर्य्यक्‌भावसे रहित होता है, उस स्थानमें अल्प रजोगुण और किञ्चित

सतोगुन जानो। जिस स्थानमें रजोगुण उदित तथा मध्य स्रोतगत होता है, उस स्थलमें अल्प तमोगुण तथा अल्पही रजोगुण बोध करना चाहिये। सत्त्व इन्द्रियोंकी अहङ्कारसम्बन्धिनी योनि है, सत्त्वही इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादि प्रकाश करता है; इसलिये सत्त्वसे श्रेष्ठ दूसरा धर्म्म और कुछ भी नहीं है। सत्त्वगुणावलम्बी मनुष्य ऊर्द्ध गामी, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यगामी और निकृष्ट तमोगुणावलम्बी पुरुष अधोगामी हुआ करते हैं। तमोगुण शूद्रोंमें रजोगुण क्षत्रियोंमें और उत्तम सतोगुण ब्राह्मणोंमें विद्यमान रहता है; इसही प्रकार सत्त्वादि तीनों गुण तीनों वर्णोंमें प्रवर्त्तित हुए हैं। तम, सत्त्व और रज, इन तीनों गुणोंको हम पृथक् पृथक् जानते हैं; परन्तु ये दूरसे मिले हुए तथा संचारि रूपसे दीख पड़ते हैं। सूर्य्यके उदय होनेपर कुकर्म्मी मनुष्यगण डरते और दुःखभागी पथिक गर्म्मीसे सन्तापित होते हैं। सूर्य्यकी भांति स्वप्रकाश सतोगुण, कुकर्म्मचारियोंका भय स्वरूप तमोगुण और पथिकोंका परिताप रजोगुण कहके वर्णित हुआ है। प्रकाशात्मक आदित्य सत्त्व, सन्ताप रज और पर्व्वसम्बन्धी उपप्लवको तम जानो। इस ही प्रकार समस्त ज्योतिवाले पदार्थोंमें सत्त्वादि तीनों गुण पर्य्यायक्रमसे प्रवृत्त और निवृत्त हुआ करते हैं। परन्तु स्थावर पदार्थोंमें तम तिर्य्यक् भाव अर्थात् अधिकताको प्राप्त होता है, रमणीयत्वादि रूप रजोगुणसे विवर्त्तित होता है और सत्वस्नेहभाव अर्थात् प्रकाशरूपसे स्थित हुआ करता है। दिन, रात, महीना, पक्ष, वर्ष, ऋतु, सन्धि, दान, यज्ञ, लोक, देवता, विद्या, गति, वर्त्तमानादि काल, धर्म्मादि वर्ग और प्राणादि वायु,—इन सबको ही त्रिगुणात्मक जानो। इसलोकमें जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, वे सभी त्रिगुणात्मक हैं, तीनों गुण पर्य्याय क्रमसे सब वस्तुओंमें ही प्रवर्त्तित हुआ करते हैं। सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण अव्यक्त रूपसे सदा प्रवर्त्तित होते हैं; इन गुणोंको सनातन जानके तम, अव्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, प्रकृति, विकार, प्रलय, प्रधान, प्रभव अर्थात् उत्पत्ति, विनाश, अनुद्रिक्त, अन्यून अकम्प, अचल, ध्रुव, सत् असत्, अव्यक्त और त्रिगुण,—अध्यात्मचिन्तक मनुष्य इन्हें अव्यक्त नामसे मालूम करें। जो मनुष्य अव्यक्तके नाम गुण और गतिको यथार्थ रीतिसे जान सकता है, वह विभागतत्त्वज्ञ पुरुष मुक्त और निरामय होकर सब प्रकारके गुणोंसे मुक्त होता है।

३९ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पहले अव्यक्तसे महामति महात्मा महान् उत्पन्न होता है, वह सबकी आदि तथा प्रथम कल्प कहके वर्णित हुआ है। महात्मा महान्, महानात्मा, मति, विष्णु, जिष्णु, शम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, ख्याति, धृति और स्मृति,—ये सब पर्य्यायवाचक शब्दसे विभावित होते हैं, विद्वान् ब्राह्मणगण उस महानको जाननेसे मोहको नहीं प्राप्त होते। वह सर्व्वग्राही, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा सर्व्वानन और सर्व्वश्रोता है; वही समस्त जगतमें व्याप्त होकर निवास कर रहा है। वह महाप्रभाव पुरुष सबके ही हृदयमें निश्चित है, वही अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, ईशान, अव्यय और ज्योतिस्वरूप है। जो सब बुद्धिमान सद्भावमें रत, ध्यानपरायण सदा योगाचारी, सत्यसन्ध जितेन्द्रिय, ज्ञानवान, अलुब्ध, जितक्रोध, प्रसन्नचित्त, धीर, निर्म्मल और निरहङ्कारी मनुष्य उसमें रत रहते हैं तथा जो लोग उस महात्मा महानकी पुण्यगतिको जान सकते हैं, वे सबसे ही मुक्त होकर महत्त्व लाभ करते हैं, पृथ्वी, वायु आकाश, जल और अग्नि, ये पांचो महाभूत अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं। सब भूत उन पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न होकर शब्द, स्पर्श, रूप,

रस और गन्ध,—इन सब क्रियागुणोंसे युक्त होते हैं। हे धीरगण! उन महाभूतोंका अन्त तथा प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्राणियोंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। वही महावीर महान् सब लोकोंके बीच मोहको नहीं प्राप्त होता; वह स्वयम्भू ही आदिसर्गका प्रभु है। जो पुरुष गुहाशय विश्वरूप हिरण्मय बुद्धिमानोंको परमगति पुराण परम पुरुष प्रभुको इस प्रकार जानता है, वही बुद्धिमान मनुष्य बुद्धिको अतिक्रम करके निवास करता है।

४० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पहले, जो महान् उत्पन्न हुआ, वह "अहं" ऐसा अभिमान करते हुए अहंकार तथा द्वितीय सर्ग कहके वर्णित हुआ। वह अहङ्कार सब भूतोंकी आदि है, विकृत महत्से उत्पन्न तीन विकार चेतना पुरुष और प्रजापतिरूपसे उत्पन्न हुआ है। वही इन्द्रिय और मनकी उत्पत्तिस्थान त्रिलोककर्त्ता है, वह सब वस्तुओंमें "अहं" रूप अभिमान करनेसे अहंकार नामसे प्रसिद्ध हुआ। अध्यात्मज्ञानसे परितृप्त परमात्मचिन्तक स्वाध्याय क्रतुके द्वारा सिद्ध मुनियोंका यही सनातन लोक है, अहंकारसे शब्दादि गुणभोक्ता पुरुषका आदिभूत विकृत महत्से उत्पन्न है। वह भूकर्त्ता अहंकार विषयादि भूतोंकी सृष्टि करते हुए निज तेजके द्वारा समस्त जगत्को रञ्जित करके विशेष रीतिसे चेष्टा करता है।

४१ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, पृथ्वी, वायु आकाश, जल और अग्नि ये पांचो महाभूत अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य आदि सब प्राणी निमित्तभूत शब्दादिगुणविमिश्रित उन पञ्चमहाभूतोंसे मुग्ध होते हैं। हे धीरगण! महाभूतोंके विनाश तथा प्रलयका समय उपस्थित होनेपर सब प्राणियोंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे उसहीमें लीन होते हैं; तथा वे सब अनुलोम क्रमसे उत्तरोत्तर उत्पन्न होते और प्रतिलोम क्रमसे लीन हुआ करते हैं। तिसके अनन्तर स्थावर जङ्गमात्मक सब भूतोंके प्रलीन होनेपर उस समय धीरवर स्मृतिवान् मनुष्य कदाचित् लीन नहीं होते। सूक्ष्म शब्दादि विषय और विषय ग्रहणरूप सब क्रिया करणात्मक मन रूपसे नित्य होती और मोहसंज्ञित अर्थात् स्थूल शब्दादि विषय तथा उन विषयोंको ग्रहणरूपी क्रिया अनित्य हुआ करती हैं। लोभजनक कर्म्मसे उत्पन्न निर्विशेष, अस्थि झन मांसशोणित संयुक्त, दीन अर्थात् क्षुधा प्रभृतिके द्वारा उपद्रुत, कृपणजीव, अन्यान्य उपजीवी वहिरात्मा अर्थात् समस्त स्थूल शरीरको अनित्य जानो। प्राणादि पंचवायु और वाक्य, मन तथा बुद्धि, ये आठों उपाधिरूप अन्तरात्माके सम्बन्ध होकर जगदाकाररूपसे भासमान होते हैं। जिसकी त्वचा, नासिका, कान, नेत्र, जिह्वा, वचन संयत तथा मन विशुद्ध वा बुद्धि अव्यभिचारिणी होती है, तथा ये आठों अग्निस्वरूप होकर जिसके चित्तको सदा नहीं जलाते, वह विद्वान् मनुष्य सर्व्वाधिक शुभ ब्रह्मको प्राप्त हुआ करता है।

हे द्विजगण! जो अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें पण्डित लोग एकादश इन्द्रिय कहा करते हैं; मैं तुम लोगोंके समीप उन एकादश इन्द्रियोंको विवरण विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, चरण हाथ, पायु, उपस्थ, वाक्य और मन, ये एकादश इन्द्रिय हैं; पहले इन इन्द्रिय ग्रामोंको वशीभूत करनेसे पूर्णब्रह्म प्रकाशित होता है। पण्डित लोग बुद्धियुक्त श्रोत्रादि पाचोंको ज्ञानेन्द्रिय और कर्मयुक्त वागादि सातोंको कर्म्मेन्द्रिय कहा करते हैं; परन्तु दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंसे अनुगत मनको एकादश और

बुद्धिको द्वादश जानो। यथाक्रमसे ये ग्यारह इन्द्रियां वर्णित हुई हैं, पण्डित लोग इन ग्यारहों इन्द्रियोंको विशेष रीतिसे जानकर कृतकृत्य हुआ करते हैं। हे द्विजगण! इसके अनन्तर सब इन्द्रियों आकाश आदि विविध भूतों तथा उनके अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवतको तुम लोगोंसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। आकाश प्रथम भूत है, उसमें श्रोत्र, अध्यात्म, शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैवत कहके वर्णित हुई हैं। वायु द्वितीयभूत है, उसमें त्वचा अध्यात्म, स्प्रष्टव्य अधिभूत और बिजली अधिदैवत कहके विख्यात हुई है। अग्नि तृतीयभूत है, उसमें नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्य्य अधिदैवत कहा गया है। जल चतुर्थभूत है उसमें जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत और चन्द्रमा अधिदैवत कहके गिना गया है। पृथ्वी पञ्चमभूत है, उसमें नासिका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत और वायु अधिदैवत कहके वर्णित हुआ है। इसके अनन्तर पञ्चभूतोंके अन्तर्गत अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत, इन तीनोंमें जो विधि विहित हुई है, उस विधि और कर्म्मेन्द्रियोंका वर्णन करता हूं, सुनो। तत्त्वदर्शी ब्राह्मण लोग चरणको अध्यात्म उसके गन्तव्यको अधिभूत और विष्णुको अधिदैवत कहा करते हैं। अवाक्‌गति अपानमें पण्डितोंके द्वारा पायु अध्यात्म, विसर्ग अधिभूत मित्र अधिदेवता कहके वर्णित हुए हैं। सब प्राणियोंके प्रजनक उपस्थ अध्यात्म, शुक्र अधिभूत और प्रजापति अधिदैवत रूपसे वर्णित हुए हैं। अध्यात्मवित् लोग हाथको अध्यात्म, उसके कर्म्मको अधिभूत और शक्रको अधिदेवता कहा करते हैं। वाक्यरूप वैश्वदेवी अध्यात्म, उसमें वक्तव्य अधिभूत और अग्नि अधिदेवता है। पण्डित लोग भूतात्मकारक मनको अध्यात्म, उसके सङ्कल्पको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदेवता कहा करते हैं। सर्व्व संस्कारकारक अहङ्कार अध्यात्म, उसमें अभिमान अधिभूत और रुद्र अधिदेवता कहके वर्णित हुए हैं। पण्डित लोग षडिन्द्रियचारिणी बुद्धिको अध्यात्म, उसके मन्तव्यको अधिभूत और ब्रह्माको अधिदेवता कहते हैं। प्राणियोंके जल, स्थल और आकाश, ये तीन स्थान हैं, इनके अतिरिक्त चौथे स्थानकी उपलब्धि नहीं होती। सब प्राणियोंके अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज, यह चार प्रकारके जन्म दीखते हैं। अन्य अपकृष्ट भूतों, खेचरों तथा सरीसृपोंको अण्डज जानो। इस ही प्रकार कृमि प्रभृति जघन्य जन्तु समूह स्वेदज वा जघन्य कहके वर्णित हुए हैं; यह द्वितीय जन्म है। समय पर्य्यायसे जो भूत पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होते हैं। द्विजगण उन्हें उद्भिज्ज कहा करते हैं। हे सत्तमगण! द्विपाद, बहुपाद, तिर्य्यक् गतिविशिष्ट जरायुज प्राणिगण विकृत कहके वर्णित हुए हैं। सनातन ब्रह्मोपलब्धि स्थान दो प्रकारका जानो; पण्डितोंकी ऐसी नीति है, कि वे पुण्यकर्म्मको ही तपस्या कहा करते हैं। कर्म्म अनेक प्रकारके हैं, उनके बीच यज्ञ और दानको मुख्य जानो। हे द्विजेन्द्रगण! वृद्धोंकी ऐसी आज्ञा है, कि ब्राह्मणोंके लिये वेदाध्ययन ही पुण्यकर्म्म है, जो पुरुष इसे विधिपूर्व्वक जानता है, वही उपयुक्त हुआ करता है और यह भी जान रखो, कि वही पुरुष सब पापोंसे छूटता है; यह मैंने अध्यात्म विधिका तुम लोगोंके समीप यथार्थ रीतिसे वर्णन किया है। हे धर्म्मज्ञगण! इस लोकमें ज्ञानवान् पुरुष ही इस अध्यात्म विधिको जानते हैं, इसीसे वे लोग इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ और पञ्च महाभूत, इन सबको सन्धान करते हुए मन मात्रमें निवास करते हैं। मनके सब प्रकारसे क्षीण होनेपर जो पुरुष निर्व्विकल्प सुख अनुभव करता है, उसे पुत्र, कलत्र, परिच्छदजनित संसारसुख अभिलषित नहीं होता; परन्तु जिन विद्वान्

मनुष्योंको बुद्धि आत्मानुभव संयुक्त है, उनके लिये वही सुखरूपसे सम्मत होता है। इसके अनन्तर मनको सूक्ष्मत्वकारी निवृत्ति तुम लोगोंसे कहता हूं, ब्राह्मणादि सब प्राणी मृदु तथा कठिन योगके सहारे निवृत्ति साधनमें यत्नवान् होवें। शौर्य्य आदि गुणागुणयुक्त अभिमान रहित एकान्तवास अवच्छिन्न एक अर्थात् सर्व्वसुख-गर्भ सुखको पण्डित लोग ब्राह्मणोंके वृत्त कहा करते हैं। निज अङ्ग समेटनेवाले कछुवेकी भांति जो विद्वान् मनुष्य सब कामना पूरी रीतिसे संहार करते हुए रजोविहीन होता है, वह सब भांतिसे मुक्त होकर सदा सुखभोग किया करता है। जो समाहितचित्तवाला पुरुष मनुष्य देहके बीच सब कामना संयत करते हुए संसारवासना नष्ट करता है, वह सब प्राणियोंका सुहृत् तथा मित्र होकर ब्रह्मत्व लाभ करता है। विषयाभिलाषी इन्द्रियोंका निरोध और जनपद त्याग निबन्धनसे मुनियोंकी अध्यात्म अग्नि प्रज्वलित होती है। जैसे अग्नि काठके द्वारा प्रज्वलित होकर महाज्योतिस्वरूपसे प्रकाशित होती है, वैसे ही इन्द्रियनिरोधसे परमात्मा प्रकाशित हुआ करता है। जब अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे पुरुष सब भूतोंको निज हृदयमें अवलोकन करता है। तब वह अत्यन्त सूक्ष्म अनुत्तम ज्योतिको प्राप्त होता है। जिस समय कृष्ण तथा गौरादि रूप अग्नि, प्रवाह जल स्पर्श वायु, पंकरूप अस्थ्यादिधारी पृथिवी, अवंणरूप आकाश और रोग शोक समाविष्ट, इन्द्रियगोलक रूप पञ्चस्रोत युक्त, पञ्चभूत समायुक्त-नवद्वार विशिष्ट जीव और ईश्वर रूप दो देवताओंसे युक्त, रजोविशिष्ट, अदृश्य त्रिगुण और त्रिटातुमय, संसर्गाभिरत और अचेतन वस्तु शरीर कहके निश्चित है। सब लोकोंमें समाश्रित सत्त्वबुद्धि दुस्तर अर्थात् व्याधिसे आक्रान्त होनेपर इस लोकमें कालचक्रसे प्रवर्त्तित हुआ करती है। यह मोह नामक अगाध भयंकर महार्णव विक्षिप्त होकर अमर लोकके सहित जगत्‌को प्रबोधित करता है। काम, क्रोध, भय, लोभ और अनृत, ये सब दुस्त्यज विद्यमान विषय इन्द्रियनिरोधके द्वारा परित्यक्त होते हैं। इसलोकमें जिसका त्रिगुण और पंचधातुयुक्त स्थूल शरीर योगबलसे निर्जित होता है, आकाशके बीच उसे अनन्त परमपद ब्रह्मस्थान प्राप्त हुआ करता है। जिसके पञ्चेन्द्रिय महातट, मनका वेग महाजल और मोह ह्रद है, पुरुष वैसी नदीसे पार होकर काम तथा क्रोध, इन दोनोंको जय करे। फिर वह सब दोषोंसे मुक्त होकर हृदय पुण्डरीकमें मनको सन्धान कर सकनेसे देहके बीच उस परमात्माका दर्शन करेगा। सर्व्वज्ञ तथा सर्व्वदर्शी पुरुष निज शरीरमें परमात्माको पाते और एक वा अनेक रूपसे विकृत हुआ करते हैं। जैसे एक दीपकसे सैकड़ों दीपक प्रवर्त्तित होते हैं, वैसे ही योगि पुरुष संकल्प मात्र निज शरीरसे सैकड़ों शरीर उत्पन्न कर सकते हैं; वेही विष्णु मित्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, सर्व्वतोमुख, प्रभु, सर्व्वभूतोंके हृदय और परमात्मरूपसे प्रकाशित हुआ करते हैं। विप्र, सुरासुर, यक्ष, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत और महर्षिगण उनका सदा स्तव किया करते हैं।

४२ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, रजोगुणप्रधान राजन्य क्षत्रिय मनुष्योंके राजा हैं, हाथी वाहनोंके, सिंह बनवासियोंके, मेष पशुओंके, सर्प बिलवासियोंके, गोवृषभ गोसमूहके, पुरुष स्त्रियोंके, वट, अश्वत्थ, जामुन, शाल्मलि, शिंशपा, मेषशृङ्गी और कीचकवेणु वृक्षोंके; हिमवान, पारियात्र, सह्य, त्रिकूटवान, विन्ध्य, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान, गुरुस्कन्ध, महेन्द्र और माल्यवान पर्व्वतोंके, सूर्य्य ग्रहोंके, चन्द्रमा नक्षत्रोंके,

यम पितरोंके, समुद्र नदियोंके, वरुण जलके, इन्द्र मरुद्गणोंके, अर्क उष्ण वस्तुओंके, इन्दु, ज्योतिसमूहके, अग्नि सब भूतोंके, बृहस्पति ब्राह्मणोंके, सोम औषधियोंके, विष्णु बलवानोंके, त्वष्टा रूपसमूहके, शिव पशुओंके, यज्ञ दीक्षित वा देवताओंके, उदीची दिशा समूहके, चन्द्रमा ब्राह्मणोंके, कुबेर रत्नोंके, पुरन्दर देवताओंके, प्रजापति प्रजासमूहके और ब्रह्मम, महान् मैं सब भूतोंका अधिपति हूं; इसे ही भूताधिप सर्ग जानो। विष्णु तथा मुझसे परे अन्यभूत और कुछ भी नहीं है; ब्रह्ममय महा विष्णु ही सब भूतोंके राजाधिराज हैं और अकृत-कर्त्ता हरिकोही मनुष्योंका ऐश्वर्य्य जानो। वह हरि, नर, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व्व, उरग, राक्षस, देव, दानव और नागोंका ईश्वर है। कामु-कोंकी अनुगत स्त्रियोंके बीच माहेश्वरी महा-देवी पार्व्वतीही वामलोचना कहके वर्णित हुई हैं। स्त्रियोंके बीच उमादेवी श्रेष्ठ हैं; सब प्रीतिसुखके बीच धनशालिता प्रीति और स्त्रियोंके बीच अप्सराओंको श्रेष्ठ जानो।

हे द्विजेन्द्रगण! धर्म्मकाम राजा और ब्राह्म-णवृन्द धर्म्मसेतु हैं; इसलिये राजा ब्राह्मणोंकी रक्षामें यत्नवान् होवे। जिन राजाओंके राज्यमें साधुगण अवसन्न होते हैं, वे राजा लोग निज गुणोंसे रहित होकर परलोकमें उन्मार्गगामी हुआ करते हैं और जिन राजाओंके राज्यमें साधु लोग सब भांतिसे रक्षित होते हैं, वेही राजा इसलोकमें अत्यन्त आनन्द अनुभव करके परलोकमें परम सुख भोग किया करते हैं। हे द्विजर्षभगण! इसलिये तुम लोग यह निश्चय जानो, कि महात्मा विद्वान् मनुष्यही विश्वसंसा-रके ऐश्वर्य्यको पाते हैं। हे विप्रगण! इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे धर्म्मादिका लक्षण कहता हूं, सुनो। धर्म्मका लक्षण अहिंसा, अधर्म्मका लक्षण हिंसा, देवताओंका लक्षण प्रकाश, मनुष्योंका लक्षण कर्म्म, आकाशका लक्षण शब्द, वायुका लक्षण स्पर्श, अग्निका लक्षण रूप, जलका लक्षण रस, सर्व्वधात्री पृथिवीका लक्षण गन्ध, स्वर और व्यञ्जनसंस्का-रवती सरस्वतीका लक्षण शब्द तथा मनका लक्षण संशयात्मिका चिन्ता है। इस शरीरमें मनके जो सब विषय चिन्तित होते हैं और बुद्धि उनका निश्चय किया करती है; इस ही निमित्त बुद्धि निश्चयके द्वारा मालूम होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। मनका लक्षण ध्यान, साधुका लक्षण अव्यक्त, योगका लक्षण प्रवृत्ति और ज्ञानका लक्षणसन्न्यास है, इसही निमित्त बुद्धिमान मनुष्य ज्ञानको अगाड़ी करके सन्न्यास अवलम्बन करें। सन्न्यासी पुरुष ज्ञानमुक्त होनेसे द्वन्द्वातीत होकर अज्ञानमृत्यु और जराको अतिक्रम करते हुए परम गति पाते हैं, हे द्विजेन्द्रगण! मैं तुम लोगोंसे विधिपूर्व्वक धर्म्म तथा लक्षणादिका वर्णन किया। अब भूत तथा इन्द्रियोंके ग्राहकोंका पूरी रीतिसे वर्णन करता हूं, सुनो। नासिका पृथिवीके गुण गन्धको ग्रहण करती है, घ्राणस्थित वायु उस गन्ध ग्रह-णको अनुकूलता करती है। जिह्वा जलके गुण इसको ग्रहण करती है, जिह्वामें स्थित सोम रस ग्रहणको अनुकूलता किया करता है। नेत्र अग्निके गुण रूपको ग्रहण करता है, नेत्रस्थित आदित्य उस रूपको ग्रहण करनेमें सहायता किया करता है। त्वचा वायुके गुण स्पर्शको ग्रहण करता है, उस त्वक्में स्थित वायु ही उस स्पर्शज्ञानका साधक होता है। कान आका-शके गुण शब्दको ग्रहण करता है, श्रोत्रस्थित सब दिशा उस शब्दज्ञानकी अनुकूलता किया करती हैं। प्रज्ञा मनके गुण चिन्ताको ग्रहण करती है, हृदयस्थ सारभूतचेतना चिन्ता ग्रहणकी अनुकूलता किया करता है। भूत और इन्द्रियां जिस प्रकार कारणान्तरके सहारे गृहीत हुआ करते हैं, वैसेही बुद्धिस्वरूप अध्य-वसायके द्वारा और महान् स्व-स्वरूपके ज्ञानसे

गृहीत हुआ करता है, परन्तु स्व-स्वरूप निश्चयरूपसे लिङ्गके द्वारा बुद्धि और स्वरूप अस्मदके अस्तित्व ज्ञानरूप लिङ्गके द्वारा महान् व्यक्तरूपसे गृहीत होनेपर भी यथार्थमें उसका व्यक्तरूप मालूम नहीं होता। इस ही निमित्त नित्य निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ किसी प्रकार लिङ्गसे गृहीत न होनेसे वह अलिङ्ग वा केवल उपलब्धिस्वरूप है। क्षेत्रलिङ्गस्थ अर्थात् स्थूल वा सूक्ष्म शरीरमें अवस्थित सत्त्वादि गुणोंकी उत्पत्ति और विनाशकी हेतुभूत अव्यक्तको मैं सदा विलीनरूपसे देखता, जानता और सुनता हूं। पुरुष उस अव्यक्तके सहित क्षेत्रको जानता है, इसीसे पण्डित लोग उसे क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं, वह क्षेत्रज्ञ उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंशविशिष्ट, दृश्यमान अचेतन गुणवृत्त अर्थात् प्रकाश, प्रवृत्ति तथा होमादि दर्शन करता है। सब गुण कूटस्थ परमात्माके द्वारा बार बार उत्पन्न होके उसे नहीं जान सकते। गुण वा गुणभूत अर्थात् भोज्यवस्तुओंसे श्रेष्ठ उस कूटस्थ आत्माको कोई नहीं पा सकता; परन्तु क्षेत्रज्ञ उसे प्राप्त कर सकता है। इसलिये धर्मज्ञ मनुष्य इसलोकमें गुण और सत्त्वको परित्यागके दोषरहित वा गुणातीत होकर क्षेत्रज्ञमें प्रवेश करे। क्योंकि वह क्षेत्रज्ञ ही निर्द्वन्द्व, श्रेष्ठ नमस्कार और स्वाहाकार-विहीन अचल अनिके तथा विभु है।

४३ अध्याय समाप्त।

——

ब्रह्मा बोले, हे द्विजेन्द्रगण! जो जन्मादियुक्त ग्रहण उपाय-विशिष्ट तथा नामलक्षण संयुक्त है, वह सब मैं तुम लोगोंसे यथार्थरीतिसे कहता हूं सुनो।

पहले दिन, तिसके अनन्तर रात्रि, उसके बाद शुक्लादि मास, उसके अनन्तर श्रवण आदि नक्षत्र और उसके बाद शिशिर आदि ऋतु उत्पन्न होती हैं, गन्धकी आदि भूमि है, रसकी आदि जल, रूपकी आदि ज्योतिर्मय आदित्य, स्पर्श समूहकी आदि वायु और शब्दकी आदि आकाश है, ये भूतगण कहके वर्णित हुए हैं। इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे भूतादि तथा उत्तम कहता हूं, सुनो। ज्योतिकी आदि आदित्य, जरायुजादि भूतगणोंकी आदि जठराग्नि, सर्वविद्याकी आदि सावित्री, देवताओंकी आदि प्रजापति वेदोंकी आदि ओंकार, वाक्यकी आदि प्राण इसलोकमें जो ब्राह्मणादि वर्णोंको उपासनाके निमित्त नियत है, वही सावित्री कहके वर्णित हुई है। सब छन्दोंकी आदि गायत्री; पशुओंकी आदि अज, चतुष्पद जन्तुओंको गऊ, मनुष्योंकी आदि द्विजातिगण, पक्षियोंकी आदि बाज, यज्ञोंकी आदि हुत, सब सरीसृपोंकी आदि सर्प, युगोंकी आदि सत्य; रत्नोंकी आदि हिरण्य, ओषधियोंकी आदि यव है समस्त भक्ष्य तथा भोज्य वस्तुओंके बीच अन्न उत्तम कहके गिना गया है। सब पीनेवाली वस्तुओंके बीच जल उत्तम है; सब स्थावर भूतोंके बीच ब्राह्मण शरीरके सदृश सदा पवित्र प्लक्ष अश्वत्थ वृक्ष प्रथम गिना गया है। मैं सब प्रजापतियोंके बीच अग्रज हूं; स्वयम्भू अचिन्त्यात्मा विष्णु मेरे अग्रज हैं; पर्व्वतोंका अग्रज महामेरु, सब दिशाओंसे पहली पूर्व्व दिशा है; नदियोंके बीच त्रिपथगामिनी गङ्गा बड़ी हैं, तालावों तथा उपादानोंका अग्रज समुद्र है। देव, दानव, भूत, पिशाच, उरग, राक्षस, नर, किन्नर और यक्षोंका प्रभु ईश्वर है; ब्रह्ममय महाविष्णु संसारकी आदि है, क्योंकि तीनों लोकके बीच उससे श्रेष्ठ भूत और कुछ भी विद्यमान नहीं है। आश्रमोंके बीच निःसन्देह गार्हस्थ्याश्रमही उत्तम है अव्यक्त सब लोकोंकी आदि और अन्त है, दिन समस्त अस्तमयन्त, रात्रि उदयान्त, सुखका अन्त दुःख, दुःखका अन्त सुख है; सब वस्तु क्षयान्त हैं; उन्नतिके अन्तमें अवनति, संयोगके अन्तमें वियोग, जीव-

नके अन्तमें मरण, सब कृत वस्तुओंका विनाशान्त और उत्पन्न हुई वस्तु अन्तमें नाशवान् हैं; क्यों कि इस लोकमें स्थावर जङ्गम प्रभृति सब वस्तु अनित्य हैं। इष्ट दत्त, तपस्या, अध्ययन व्रत और नियम, ये सभी विनाशी हैं; परन्तु ज्ञान अनन्त है, उसका अन्त नहीं है; इस ही लिये जितेन्द्रिय प्रशान्तचित्त निर्म्मम निरहङ्कारी मनुष्य केवल ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं।

४४ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे द्विजगण! जिसकी बुद्धि सारस्वरूप, मन स्तम्भस्वरूप, इन्द्रिय ग्रामबन्धन रज्जुरूपी और जो पञ्चभूत समूहात्मक है, निवेश जिसकी नेमिस्वरूप है, जो जरा वा शोकसे समाविष्ट हैं, व्याधि और व्यसनकी उत्पत्ति स्थानभूत, देश और कालके सहित विचरणकारी, व्यायामजनित श्रम जिसका शब्द अहोरात्र जिसके परिचालक, सर्द्दी और गर्म्मी जिसके परिमण्डल, सुख और दुःख जिसकी सीमा, क्लेश जिसका संश्लेष, भूख और प्यास जिसके अन्तःप्रविष्ट अर, छाया और धूप जिसके उत्खात हैं; जो निमेष तथा उन्मेषसे आकुल, भयङ्कर मोहरूपी जलसे आकीर्ण सदा गमनशील अचेतन जड़स्वरूप, मासदि समयके द्वारा परिमित अनेकरूप, ऊर्द्ध मध्य और अधोलोकमें विचरनेवाला, तमोगुणके द्वारा ज्ञान यथाकर्म्मके निरोधरूप मलिनतासे युक्त, रजोगुणके द्वारा विहित तथा निषिद्ध कर्म्मोंमें प्रवृत्त महाअहङ्कारसे प्रदीप्त, सत्त्वादि गुणोंमें अवस्थित, शोक और दुःखसे जीवित, क्रिया कारण युक्त, राग जिसका आयत, लोभ तृष्णा जिसके अध और ऊर्द्ध हैं, जो मायासे उत्पन्न, भय और मोहसे परिवृत, भूतोंका सम्मोहकारक, वाह्य सुख, आनन्द और प्रीतिके सहित विचरणशील, काम और क्रोध जिसका मूल, महदादि विशेष जिसका अन्त है, वह अनिरुद्ध भावसे संचरणशील संसारकारण अव्ययस्वरूप, मनकी भांति वेगशाली और अत्यन्त मनोहर कालचक्र प्रवर्त्तित होता है। मान अपमान द्वन्द्वयुक्त यह अचेतन कालचक्र सुरपुरके सहित जगत्को उत्पन्न, संहार और प्रबोधित किया करता है। जो मनुष्य इस कालचक्रकी प्रवृत्ति और निवृत्तिको विशेषरूपसे जाना है, वह प्राणियोंके बीच मुग्ध नहीं होता। बल्कि वह सब द्वन्द्वोंसे रहित, सर्व्वसंस्कार और सब पापोंसे मुक्त होकर परमगति पाता है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ और भिक्षुक, ये चारों आश्रम गार्हस्थ्यामूलक कहके वर्णित हुए हैं। इस लोकमें जो कई विधि निषेधक शास्त्र प्रकीर्त्तित हुए हैं, उनका अनुगमन करना कल्याणकारी है; इस कीर्त्तिको ही सनातनी जानो। गुणविशिष्ट जातिमें उत्पन्न तत्त्ववित् मनुष्य पहले स्वजायुक्त संस्कारके द्वारा संस्कृत होकर व्रतोंका पूरी रीतिसे अनुष्ठान करके गुरुकुलसे प्रत्यागमन करें। अनन्तर इस लोकमें सदा निज स्त्रीमें रत रहके शिष्टाचारयुक्त जितेन्द्रिय तथा श्रद्धावान् होकर पञ्चमहायज्ञोंके द्वारा अर्च्चना करें। देवताओं और अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नभोजन करें, देवकर्म्ममें रत रहें और शक्तिके अनुसार सुखपूर्व्वक यज्ञ तथा दानकर्म्ममें नियुक्त होवें। मननशील मनुष्य हाथ, पांव, नेत्र, तथा अङ्गको परिचालित न करें यही शिष्ट पुरुषोंके लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त सदा यज्ञोपवीत तथा सफेदवस्त्र पहरे, पवित्र व्रतका अनुष्ठान करे और यम तथा दानमें रत होकर सदा शिष्ट पुरुषोंके सहित संवास करे। मैत्र मनुष्य शिष्टाचार युक्त होकर उदर तथा शिश्नको संयत करते हुए जलयुक्त कमण्डलु तथा बांसकी लाठी धारण करे। अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह इन छः प्रकारके गुणोंकी वृत्तिका आचरण करे।

हे द्विजगण! याजन, अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह, इन तीनों कर्म्मोंको ब्राह्मणोंकी जीविका जानो। धर्म्मज्ञ, दान्त, मैत्र, क्षमायुक्त, सर्व्वभूतोंमें समदर्शी और मननशील मनुष्य अवशिष्ट दान, अध्ययन और यज्ञ, इन तीनों धर्म्मयुक्त कर्म्ममें प्रमाद न करे। पवित्रचित्त-वाला संशितव्रती गृहस्थ विप्र शक्तिके अनुसार इन सब कार्य्योंको नियमपूर्व्वक पूर्ण करते हुए उसमें नियुक्त रहनेसे स्वर्गजय करनेमें समर्थ होता है।

४५ अध्याय समाप्त।

———

ब्रह्मा बोले, ब्रह्मचर्य्यवान् पुरुष पहले कहे हुए इस ही मार्गके अनुसार अध्ययन करे। स्वधर्म्ममें रत, जितेन्द्रिय, गुरुप्रिय, तथा हित-कारी, सत्यधर्म्म परायण, पवित्रचित्त, हविष्य, और भैक्ष्यभुक्, स्थानासन विहारवान् विद्वान्, मननशील मनुष्य गुरुके द्वारा पूरी रीतिसे अनुज्ञात होकर निन्दा न करके अन्न भोजन करे। पवित्र तथा समाहित होकर बेल वा पलासका दण्ड धारण करके दोनों समय अग्निमें आहुति डाले। गेरुआ तथा लालरङ्गके क्षौम वा सूती वस्त्र अथवा मृगछाल पहरे। मूञ्जको करधनी और जटा धारण करे, सदा जलयुक्त, यज्ञोपवीती, स्वाध्यायी, अलुब्ध तथा नियतव्रती होकर पवित्र जलके द्वारा सदा देव-ताओंका तर्पण करे; क्योंकि ब्रह्मचारी संयत होकर विशुद्धभावसे इस प्रकार आचरण कर-नेसे प्रशंसित हुआ करता है। ऊर्द्ध्वरेता ब्रह्म-चारी समाहित होकर इसही भांति युक्त होनेसे स्वर्ग जय करनेमें समर्थ होता है और परमपद अवलम्बन करते हुए जातिके बीच संसारी नहीं होता। ब्रह्मचर्य्य विशिष्ट मननशील मनुष्य सब संस्कारोंसे संस्कृत तथा निज ग्रामसे बाहिर होकर प्रव्रज्या अवलम्बन करते हुए वनके बीच वास करे। चर्म्म और वल्कल वस्त्रधारी होकर सन्ध्या तथा सवेरे जलस्पर्श करे और सदा वनवासी होकर फिर ग्राममें प्रवेश करनेसे निवृत्त होवे, फल, पत्र, क्षुद्रमूल और सावांके द्वारा जीविका निर्व्वाह करते हुए यथा समयमें उपस्थित अतिथियोंकी पूजा करके उन्हें आश्रय प्रदान करे। दीक्षाके अनुसार अतन्द्रित होकर उपस्थित जल, वायु और वनके फलमूलादिको क्रमसे भोजन करे। वनवासी मुनि सदा अत-न्द्रित होकर फलमूलकी भिक्षाके सहारे समा-गत अतिथियोंकी अर्च्चना करे और भिक्षाके द्वारा जो वित्त प्राप्त होवे, उसमेंसे कुछ अंश भिक्षा प्रदान करना चाहिये। सदा वाग्यत होकर देवताओंका आश्रय तथा आशिर्व्वाद पाके देवता तथा अतिथि पूजाके अनन्तर प्रकृ-ष्टरूपसे भोजन करे। वाणप्रस्थ मनुष्य मैत्र, क्षमायुक्त, सत्यधर्म्म, परायण, स्वाध्यायशील केशश्मश्रुधारी, होमकारी, पवित्र, देहधारी, दक्ष, वननिरत, समाहित चित्त और जितेन्द्रिय ऐसे गुणोंसे युक्त होनेसे स्वर्गको जय किया करते हैं। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ पुरु-षोंके बीच जो लोग मोक्षमार्ग अवलम्बन कर-नेकी इच्छा करें, वे उत्तम वृत्ति अवलम्बन करें। सब भूतोंके सुखदायक, मैत्र सब इन्द्रि-योंको दमन करनेवाले मननशील मनुष्य सब भूतोंको अभय प्रदान करके नैष्कर्म्माचरण करें। भिक्षुक मनुष्य अग्निहोत्रीय अग्नि प्रज्व-लित करके होमकार्य्यको पूरा करके धूमरहित तथा जनपदोंके भोजनकार्य्य सिद्ध होनेपर अया-चित असङ्कल्प तथा यदृच्छा प्राप्त भोज्य वस्तु भिक्षारूपसे ग्रहण करें। मोक्षवित् मनुष्य शरा-वसम्पात सम्पन्न होनेपर भिक्षा प्राप्तिके लिये इच्छा करे और लाभसे हृष्ट तथा अलाभसे असन्तुष्ट न होवें। जीवनयात्रा निभानेकी इच्छा करनेवाले भिक्षुक समाहित होकर समयकी अपेक्षा करते हुए भिक्षामांगनेमें प्रवृत्त होवें, परन्तु साधारण लाभ ग्रहण करनेकी इच्छा न

करें और किसी पुरुषके द्वारा समादृत होकर भोजन न करें ; क्योंकि भिक्षुक समादरके सहित भिक्षा पानेसे निन्दाभाजन हुआ करते हैं । भिक्षुक तीता, कड़ुआ और कसैला खाद्य भोजन करे, मधुर रसयुक्त भोज्य वस्तुओंका स्वाद न लेकर केवल प्राणधारणके निमित्त भोजन करे । मोक्षवित् पुरुष प्राणियोंको रुद्ध न करके वृत्तिलाभकी इच्छा करे और भिक्षामें प्रवृत्त होकर दूसरेके अन्नकी कदापि अभिलाष न करे, भिक्षुक किसी प्रकार धर्म्म नष्ट न करे, रजोगुणसे रहित होकर मुक्तिमार्गमें विचरै, आश्रमके निमित्त सूना स्थान, अरण्य, वृक्षमूल, नदी और पर्व्वतकी गुफा अवलम्बन करे । ग्रीष्मकालमें ग्राममें एक रात्रि वास करे, वर्षाकाल उपस्थित होनेपर एकत्रवास करे ; सूर्य्यके उदित होनेसे मार्ग प्रकाशित होनेपर कीटकी भांति पृथ्वीपर विचरण करे । प्राणियोंके विषयमें दया प्रकाशित करके तथा समस्त पर्य्यवेक्षण करते हुए पृथ्वीपर पर्य्यटन करे, किसी वस्तुको सञ्चय न करे और स्नेहवाससे रहित होवे । मोक्षवित् पुरुष सदा पवित्र जलसे कार्य्य करे और सदा उद्धृत जलसे आचमन करे । पुरुष इन्द्रियनिग्रह पूर्व्वक अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, दम और अपिशुनता, इन आठ प्रकारके व्रतोंमें नियुक्त रहके सदा पाप, शठता और कुटिलता रहित व्रताचरण करे । ग्राममें आके निष्पृह होकर भोज्य वस्तु मांगे और केवल प्राणयात्रा निभानेकेलिये भोजन करे । धर्म्मसे प्राप्त हुई वस्तु भोग करे, कदापि कामके अनुवर्त्ती न होवे और ग्रासाच्छादनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको कदापि ग्रहण न करे तथा दूसरोंके निकट प्रतिग्रह वा दूसरेको दान न करे, प्राणिगण दीनतासे सबका विभाग करके जो दान करें, पण्डित पुरुष अयाचित होकर उस परस्वकी ग्रहण न करे, कार्य्यवान् मनुष्य किसी विषयको एक बार भोग करके फिर उसमें स्पृहा न करे ; उपस्थित मृत्तिका, जल, अन्न, पत्र पुष्प और फल, यह सब अनावृत्त रहनेपर ग्रहण करे, आवृत्त होने पर ग्रहण न करे । शिल्पवृत्तिके द्वारा जीविका निर्व्वाह न करे, सुवर्णकी कामना न करे, किसीका उपदेष्टा वा द्वेष्टा न होवे ; केवल अलङ्कारादिसे रहित होकर निवास करे । अयाचित वृत्ति अवलम्बन करके सब विषयोंमें अनासक्त होकर श्रद्धापूत वस्तुओंको भोजन करे, समस्त निमित्त वर्ज्जित होवे और प्राणियोंके अज्ञात रूपसे निवास करे । आशीर्व्वादयुक्त तथा हिंसायुक्त कर्म्म तथा लोकसंग्रह न करे, न दूसरेके द्वारा करावे । सब भावोंको अतिक्रम करके दण्ड कमण्डलु प्रभृति भिक्षुकोंको उपासना सामग्रियोंको अल्प परिमाणसे ग्रहण करके परिभ्रमण करे और समस्त चराचर प्राणियोंके विषयमें समदर्शी होवे ।

जो लोग दूसरोंको उद्वेगयुक्त नहीं करते और स्वयं किसीके निकट उद्विग्न न होकर सबके विश्वासपात्र होते हैं, वेही उत्तम मोक्षवित् कहके वर्णित हुआ करते हैं । वैसे मोक्षवित् मनुष्य कालाकांक्षी और समाहित होकर अनागत तथा अतीत विषयोंका अनुध्यान न करें और वर्त्तमान विषयमें उपेक्षा करें । नेत्र, मन और वचनके द्वारा किसी प्रकार दोष न करें और प्रत्यक्ष वा परोक्ष किसी दुष्ट विषयका आचरण न करें । सर्व्वतत्त्वज्ञ भिक्षुक मनुष्य अङ्गसङ्कोच करनेवाले कूर्म्मकी भांति इन्द्रियोंको संकुचित करते हुए इन्द्रिय, मन तथा बुद्धिको क्षीण करके निरीह निर्द्वन्द्व, निर्न्नमस्कार, निःस्वाहाकार, निर्म्मम, निरहङ्कार, निर्विकार, निर्योगक्षेम, निराशी, निर्गुण निरासक्त, निराश्रय, आत्मवान्, शान्त, आत्मसङ्गी तथा तत्त्वज्ञ होनेसे निश्चय मुक्त हुआ करते हैं । जो लोग हाथ, पाव, पीठ, सिर उदरसे गुण तथा कर्म्मविहीन, निर्म्मल, अद्वितीय, अविनाशी, गन्ध रस

स्पर्श रूप और शब्द रहित अनुगम्य, अनासक्त, अमांस, निश्चिन्त, अव्यय, दिव्य गृहस्थ तथा सर्व्वभूतस्थ उस आत्माका दर्शन करते हैं। वे मृत नहीं होते उस आत्मामें बुद्धि, इन्द्रिय, देवता, वेद, यज्ञ, तपस्या, व्रत तथा सब लोक गमन नहीं कर सकते। ज्ञानियोंको दण्ड कमण्डल प्रभृति चिन्ह धारण करना अनुचित होनेसे अलिङ्ग धर्म्मज्ञ मनुष्य धर्म्मतत्त्वाचरण करे। गृहधर्म्माश्रित विद्वान् मनुष्य विज्ञान चरित विषय आचरण करे और अमूढ़ होकर मूढ़रूपसे दूषित न करके धर्म्माचरण करे। फिर मानी भिक्षुक सदा धर्म्मकी निन्दा करने वाली वृत्तिको अवलम्बन करके भी साधुओंके धर्म्मकी निन्दा न करके धर्म्माचरण करे। जो लोग ऐसी वृत्तिसे युक्त होते हैं, वेही उत्तम मुनि कहके वर्णित हुआ करते हैं। वे मुनि इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, पञ्च महाभूत, मन, बुद्धि, अहङ्कार अव्यक्त और पुरुष, इन सबको प्रकृष्टरूपसे संख्या करके सब तत्त्वोंका यथावत् निश्चय करें। तत्त्ववित् पुरुष इन सब तत्त्वोंकी परिसंख्या करनेसे सब बन्धनोंसे मुक्त होकर स्वर्ग लाभ करते हैं। अनन्तर निर्ज्जन स्थान अवलम्बन करके ध्यान करनेसे आकाशगामी वायुकी भांति निराश्रय तथा सर्व्वसङ्गसे निर्म्मुक्त होकर मुक्त होते और क्षीणकोष तथा निरातङ्क होकर परब्रह्मको प्राप्त हुआ करते हैं।

४६ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, निश्चितवादी वृद्ध लोग सन्न्यासको तपस्या कहा करते हैं और ब्रह्मयोनिस्थ ब्राह्मणगण ज्ञानको परब्रह्म बोध करते हैं। रजोगुणसे रहित, निर्म्मलचित्त पवित्र स्वभाव वाले धीरगण ज्ञान तथा तपस्यासे अत्यन्त दुरात्मक वेदविद्याके सहारे निर्द्दन्द्व, निर्गुण नित्य अचिन्त्य गुणवाले उस अनुत्तम परब्रह्मका दर्शन किया करते हैं। सन्न्यासमें रत ब्रह्मवित् पुरुष तपस्याके सहारे परमेश्वरके मङ्गलमय पथमें गमन किया करते हैं। पण्डित लोग तपस्याको प्रदीप और आचारको धर्म्मसाधक कहा करते हैं; परन्तु सन्न्यासको उत्तमतपस्या और ज्ञानको सबसे उत्कृष्ट जानना चाहिये। जो पुरुष सब तत्त्वोंका निश्चय करते हुए बाधारहित ज्ञानस्वरूप सर्व्वभूतस्थ परमात्माको जान सकता है, वह सर्व्वत्रगामी हुआ करता है। जो विद्वान् मनुष्य आत्माका सहवास, निवास, एकत्व और अनेकत्व अवलोकन करता है, वह दुःखोंसे मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ होता है। जो मनुष्य इस लोकमें विद्यमान रहके किसी विषयकी कामना अथवा किसीकी अवज्ञा नहीं करता, वह ब्रह्मत्व लाभ करता है। जो मनुष्य विधि, गुण, तत्त्व तथा सर्व्वभूतोंके प्रधानको जानके अहङ्कार वा ममताविहीन होता है, वह निश्चय ही मुक्त हुआ करता है। निर्द्दन्द्व, निर्नमस्कार, निःस्वधाकार पुरुष शमगुणके द्वारा सब विषयों तथा सत्य मिथ्या, इन दोनोंको परित्याग करनेसे अवश्य ही मुक्ति लाभ कर सकता है। अव्यक्त जिसका मूल, बुद्धि महास्कन्ध, अहङ्कार वृक्ष, इन्द्रियें जिसके अङ्कुर वा कोटर हैं, महाभूत जिसका विस्तार विशेष, यतिवृन्द जिसकी शाखा हैं, सदा पत्र पुष्प और शुभाशुभरूपी फलोदययुक्त वह सनातन ब्रह्मवृक्ष सब भूतोंका आजीव्य है। ज्ञानवान मनुष्य तत्त्वज्ञानरूपी तलवारके द्वारा ऐसे ब्रह्मवृक्षको छेदन तथा भेदकर जन्म मृत्यु जरा तथा उदययुक्त सङ्गमय पाशोंको छेदन करते हुए निर्म्मम और निरहङ्कारी होकर निश्चय ही मुक्त हुआ करते हैं। जीव और ईश्वर, ये दोनों पक्षी नित्य, सखा वा अचेतन हैं, इससे जो पृथक् है, वह चेतनावान् कहके वर्णित होता है। अचेतनकी भांति अहंबाह्यगम्य जो जीव प्राणिसंख्यासे विमुक्त होकर बुद्धिके अतीत वस्तुको चेतनायुक्त करता है, वह क्षेत्रज्ञ नामक अन्त-

रात्मा ही समस्त बुद्धिका साची है; वह गुणोंसे युक्त होनेपर सब दोषोंसे दूषित होता और गुणातिग होनेपर सब पापोंसे मुक्त हुआ करता है।

४७ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, कितने ही मनुष्य वृक्ष और बनरूपी जगत्को ब्रह्ममय कहके निर्द्देश करते हैं, कोई ब्रह्मको अव्यक्त निर्व्विकार परमात्मा कहते हैं और कोई कोई प्रकृतिको इस समस्त जगत्की उत्पत्ति और लयका कारण कहा करते हैं। जो पुरुष मृत्युकालमें निश्वास पतनकाल मात्र समदर्शी होते, वह हृदयके बीच परमात्माका दर्शन करके मुक्ति लाभ किया करते हैं। यदि केवल निमिष कालमात्र देहके बीच आत्माको संयत कर सके, तो उसे परमात्माको कृपासे पण्डितोंकी अक्षय परम गति प्राप्त हुआ करती है। यदि कोई दश वा बारह बार प्राणायाम करते हुए प्राणको बार बार संयत करनेमें समर्थ हो, तो वह चौबीस तत्त्वों तथा अव्यक्तातीत पञ्चविंश पुरुषको प्राप्त हुआ करता है; इस ही प्रकार पुरुष प्रथम प्रसन्न होकर जो कुछ अभिलाष करे, उसे ही प्राप्त कर सकेगा; परन्तु जब अव्यक्त लाभके अनन्तर पुरुषमें सत्त्वगुण उदित होगा, तब वह अमृतत्त्व लाभ करेगा।

हे द्विजसत्तमगण! मोक्षवित् पण्डित लोग सत्त्वके अतिरिक्त अन्य किसीको भी अत्यन्त उत्कृष्ट कहके प्रशंसा नहीं करते; मैं भी अनुमानसे पुरुषको सत्त्वगुणका अवलम्ब जानता हूं, क्यों कि जो पुरुष सतोगुणावलम्बी न होता, तो उसे कोई न जान सकता। क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, ज्ञान, त्याग और सन्न्यास, इन सबको सात्त्विकवृत्ति जानो; इन वृत्तियोंके विशेष रीतिसे विदित होनेपर पुरुषको जाना जा सकता है। मनीषिगण इस ही प्रकार अनुमानके द्वारा सत्त्व तथा पुरुषमें अभेद बोध करते हैं, उसमें और विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञाननिष्ठ कोई कोई पण्डित ऐसा कहा करते हैं, कि सत्त्व और क्षेत्रज्ञ पुरुषका ऐक्य युक्तिसिद्ध नहीं हो सकता। पुरुषसे जो सत्त्व पृथक् है, इसमें विचार नहीं करना पड़ता, वरण समुद्रकी तरङ्गसमान सत्त्व और पुरुषका पृथक् भाव स्वभाविक जानो। इस विषयमें पण्डित लोग ऐसी युक्ति दिया करते हैं, कि जैसे मशक और उडुम्बरका ऐक्य तथा पार्थक्य दीखता है, वैसे ही सत्त्व तथा पुरुषका एकत्व और अनेकत्व जानना चाहिये। और जिस प्रकार मछली तथा जलका पार्थक्य है, तथा जैसे पद्मपत्र और जलकी बूंदका सम्बन्ध है, सत्त्व और पुरुषका वैसा ही पार्थक्य तथा सम्बन्ध जानो।

गुरु बोला, जब लोक पितामह ब्रह्माने उन मुनिसत्तम विप्रोंसे ऐसा कहा, तब वे लोग फिर संशययुक्त होकर उनसे पूछने लगे।

४८ अध्याय समाप्त।

ऋषिगण बोले, हे ब्रह्मन्! सब धर्म्मोंके बीच कौन धर्म्म एकान्त अनुष्ठेय है? क्यों कि हम लोग धर्म्मको विविधगतिको व्याहतरूपसे देखते हैं। कोई कोई नास्तिक कहते हैं, कि देहनाश होनेपर भी आत्मा निवास करता है; लोकायतगण देहान्त होनेपर उसका अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करते; कोई कोई उस विषयमें संशय और कोई निश्चय किया करते हैं। मीमांसक लोग आत्माको नित्य, तार्किक लोग अनित्य शून्यवादीगण अस्ति सौगत लोग नास्ति कहा करते; योगाचारी लोग एकरूप और द्विरूप, उडुलोमा अनेक रूप अर्थात् भिन्न वा अभिन्न कहा करते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग एकमात्र ब्रह्मको विद्यमान समझते हैं; सगुण ब्रह्मोपासक मनुष्यगण ब्रह्मको

पृथक् पृथक् ज्ञान करते हैं, परमाणुवादी लोग ब्रह्मका अनेकत्व स्वीकार किया करते हैं और ज्योतिर्व्विद लोग देशकाल दोनोंको ब्रह्म कहते हैं, वृद्ध लोग स्वप्नराज्यका मिथ्या चिद्विलास-स्वरूप कहा करते हैं।

कितने ही लोग जटाजिनधारी होकर ब्रह्मकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं, कोई कोई मुण्डित तथा असंवृत होते हैं, कोई स्नान करके और कोई बिना स्नानके ही उपासनामें प्रवृत्त हुआ करते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग पवित्र आचारको उपासना किया करते हैं। कोई कोई भोजन करके उपासनामें प्रवृत्त होते और कोई निराहारी रहके ही उपासना किया करते हैं। कोई कोई धर्म्मकी प्रशंसा करते हैं, दूसरे मनुष्य शान्तिकी प्रशंसा किया करते हैं। कोई देश तथा काल, कोई मोक्ष, कोई पृथग्विध भोगोंकी प्रशंसा करते हैं, कोई उपास्यके साधन धनको इच्छा करते, दूसरे लोग निधनत्वकी अभिलाष करते हैं और कोई पुरुष कुछ भी इच्छा नहीं करते। कोई कोई अहिंसामें रत, कोई हिंसापरायण होते हैं; कोई पुण्य और यशके निमित्त यत्न करते हैं, कोई यश और पुण्य कुछ भी स्वीकार नहीं करते। कोई कोई सद्भावमें रत, कोई संशयमें स्थित होते हैं; कोई सुखके निमित्त और कोई दुःखके निमित्त ध्यान किया करते हैं। कोई कोई विप्र यज्ञ, कोई दान, कोई तपस्या और कोई स्वाध्यायकी प्रशंसा किया करते हैं। कोई ज्ञान, कोई सन्न्यास और वस्तु तत्त्व-विचारक कोई कोई पण्डित स्वभावकी प्रशंसा करते हैं, कोई सबकी कोई कोई एक विषयोंकी प्रशंसा किया करते हैं।

हे सुरसत्तम! इस ही प्रकार धर्म्म व्युत्थापित और अनेक प्रकारसे प्रबोधित होनेपर हम लोग अज्ञानपूर्व्वक उसका निश्चय नहीं कर सकते हैं। लोगोंके बीच कोई यह कल्याणकारी है, कोई यही श्रेय है, ऐसा ही बोध करके जिसको जिस धर्म्ममें प्रवृत्ति होती है वह सदा उसको ही पूजा किया करता है। इसहीसे हम लोगोंकी बुद्धि विचलित तथा मन अनेक विषयोंमें दौड़ता है। हे सत्तम! इसलिये कल्याण क्या है? उसे आप हमलोगोंसे कहिये हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं। इसके अनन्तर जो गुह्य है, उसे और सत्त्व तथा क्षेत्रज्ञका किस कारणसे सम्बन्ध होता है, वह आपको कहना होगा। धर्म्मात्मा बुद्धिमान् लोकभावन ब्रह्मा ब्राह्मणोंका ऐसा वचन सुनके उन लोगोंसे यथार्थ रीतिसे कहने लगे।

४९ अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे सत्तमगण! तुम लोगोंने मुझसे जो विषय पूछा है; गुरु उपयुक्त शिष्यके समीप जिस विषयको कहा करता है; वही विषय मैं तुम लोगोंसे कहता हूं, सावधान होके सुनो। तुम लोग मेरे समीप उन विषयोंको सुनकर पूरी रीतिसे निश्चय करो। अहिंसा ही सब प्राणियोंके विषयमें श्रेष्ठ कर्म्म है, यह साधुसम्मत तथा धर्म्मका वरिष्ट लक्षण है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। निश्चितदर्शी वृद्धगण ज्ञानको मोक्ष कहते हैं, इसही निमित्त प्राणिवृन्द केवल ज्ञानके द्वारा सब पापोंसे मुक्त होसकते हैं और जो लोग हिंसापरायण, नास्तिक धर्म्मावलम्बी तथा लोग लोभ, मोहके वशवर्त्ती हैं; वे नरकगामी हुआ करते हैं। परन्तु जो सब मनुष्य अतन्द्रित होकर आशीर्युक्त समस्त कर्म्म करते हैं, वे इस लोकमें बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए प्रमुदित हुआ करते हैं। जो सब विपश्चितगण श्रद्धापूर्व्वक धर्म्म कर्म्म करते हैं, वे साधुदर्शी पुरुष आशियोंग संयुक्त नहीं होते। हे सत्तमगण! सत्त्व और क्षेत्रज्ञका जिस प्रकार संयोग तथा वियोग होता है, इसके अनन्तर मैं तुम लोगोंसे वह

विषय कहता हूं तुम लोग सावधान होकर सुनो। इस स्थलमें विषय और विषयीभाव सम्बन्ध कहा गया है, उसके बीच सत्वको विषय और पुरुषको विषयी जानो। जैसे पहिले मशक तथा उडुम्बरका भोज्य भोक्तृभाव सम्बन्ध कहा गया है, वैसे ही इस स्थलमें भी सत्व और पुरुषका भोग्यभोक्तृभाव सम्बन्ध वर्णित होता है। अचेतन सत्वभोक्ता पुरुषके द्वारा भुज्यमान होकर अपनेको नहीं जान सकता; परन्तु भोक्ता पुरुष मशककी भांति भुज्यमान सत्त्व तथा अपनेको जान सकता है। मनोषिगण सत्त्वको सर्व्वदा सुख दुःखादि द्वन्द समायुक्त कहते हैं और पुरुषको नित्य, निर्द्वन्द, निष्फल, निर्गुणात्मक चिद्रूप कहा करते हैं। सर्व्वत्र विद्यमान असङ्ग अधिष्ठानभूत वह परम पुरुष अधःस्तभूत सलके समसंस्थलको प्राप्त होकर सलिल उपभोगी कमलके पत्रकी भांति वह सदा सत्त्वको उपभोग किया करता है। विद्वान् पुरुष सब भांतिसे गुणोंके द्वारा व्यतिषक्त होनेपर भी पद्मिनोपत्र संस्थित चञ्चल जलबिन्दुकी भांति उसमें लिप्त नहीं होते; इसलिये पुरुषके असङ्ग होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है। ऐसा निश्चय है, कि सत्त्व पुरुषका द्रव्यमात्र है, सत्त्व और पुरुष, दोनों मिलकर द्रव्यमात्र हुआ करते हैं, कर्त्ता और द्रव्यका जैसा सम्बन्ध है, सत्त्व तथा पुरुषका वैसाही सम्बन्ध जानो। जैसे कोई पुरुष दीपक लेकर अन्धकारके बीच गमन करता है, वैसेही परमपदके अभिलाषी मनुष्य सत्त्वरूपी प्रदीपके द्वारा प्रकाश करते हुए गमन किया करते हैं। जबतक तेल और बत्ती विद्यमान रहती है तबतक दीपक जलता है, परन्तु तेल और बत्तीके क्षीण होनेपर ज्योति अन्तर्हित होजाती है। जैसे प्रदीप तेल और बत्तीसे युक्त होकर गृह, आकाश तथा अपनेको प्रकाशित करता है और तेल तथा बत्तीके क्षीण होनेपर स्वयं अन्तर्हित होता है, वैसे सत्त्वगुण कर्म्मके द्वारा चरम-वृत्तिरूपसे अभिव्यक्त होकर पुरुष तथा अपनेको पृथक्‌रूपसे प्रकाशित करता है और कर्म्म शेष होनेपर स्वयं अन्तर्हित हुआ करता है; परन्तु, पुरुष अव्यक्त भावसे निवास करता है। हे विप्रगण! यह विषय तुम लोगोंसे विशेष रीतिसे कहता हूं औरभी तुम लोगोंसे अन्यप्रकार कहता हूं, सुनो। दुर्मेधा मनुष्य सहस्रवार उपदिष्ट होनेपर भी नहीं समझ सकता, परन्तु बुद्धिमान मनुष्य चौथीवार उपदिष्ट होनेसेही उस विषयको हृदयङ्गम करके सुख अनुभव किया करता है। इसही प्रकार उपायके द्वारा धर्म्मका साधन विशेष रीतिसे मालूम करे, क्यों कि उपायज्ञ मेधावी मनुष्य ही अत्यन्त सुख भोग किया करता है। जैसे पाथेय विहीन प्रसन्नचित्त मनुष्य महत्‌कष्टसे मार्गमें गमन करता है और बीचमें विनष्ट भी होता है उसही प्रकार जानना चाहिये, कि ज्ञानके साधनभूत कर्म्मसे फल उत्पन्न होते तथा विनष्ट होते हैं। परन्तु पुरुषका चित्त स्थित कल्याण विषयमें शुभाशुभ दृष्टान्त है, अर्थात् पुरुषका बहुतसा पुण्य सञ्चय होनेपर सम्पूर्ण योग लाभ होता हैं और अल्प पुण्य सञ्चय होनेसे मृत्यु-लाभ हुआ करता है। तत्त्व दर्शनसे हीन मनुष्य अदृष्टके अनुसार पैरके सहारे जिस दीर्घ-पथमें गमन करता है, तत्त्वदर्शी पुरुष शीघ्र-गामी रथके द्वारा उस पथमें गमन किया करते हैं; इसलिये बुद्धिमानोंकी ऐसीही गति जाननी चाहिये। पुरुष पर्व्वतके ऊपर चढ़के भूतकालको न देखे अर्थात् परमपद प्राप्त होनेपर शास्त्र तथा उसके विहित कर्म्मको परित्याग करे। विद्वान मनुष्य कर्म्मसे क्लेशित आत्माको अवलोकन करते हुए जबतक कर्म्म नष्ट न हों, तबतक कर्म्म मार्गमें ही गमन करे; परन्तु कर्म्म नष्ट होनेपर उस कर्म्म मार्गको परित्याग करके ज्ञानपथमें गमन करे। तत्त्वयोग विधानवित गुणज्ञ मेधावी मनुष्य इस ही प्रकार सन्न्यासाश्र-

मसे धीरे धीरे उत्तरोत्तर अर्थात् हंस परमहंस आश्रमको पूर्ण रीतिसे मालूम करके गमन करे। नौकारहित पुरुष मोहके वशमें होकर महाघोर समुद्र पार होनेके निमित्त बाहुसे तैरते हुए थककर निश्चय ही मृत्युको प्राप्त होता है; परन्तु बिभागवित प्राज्ञ पुरुष आरत्रयुक्त नौकाके सहारे जलमें गमन करते हुए अनायास भावसे शीघ्रही ह्रदसे पार हुआ करता है। मैंने जिस प्रकार पहले रथौ और पदादिका बृत्तान्त कहा है, वैसे ही ममतारहित मनुष्य ह्रदसे पार होकर नौका परित्यागके किनारे गमन करे। जैसे नाववाला कैवर्त्त स्नेहके वशमें मूढ़ होकर नौकामें ही परिभ्रमण करता है, वैसे ही पुरुष ध्यानयोग प्राप्त न कर सकनेसे ममतासे मूढ़ होकर उस गुरुके निकटमें ही परिभ्रमण किया करता है। जैसे पुरुष नौकामें चढ़के स्थलके बीच भ्रमण नहीं कर सकता; वैसे ही रथपर चढ़के जलके बीच बिचरनेमें समर्थ नहीं होता। इसही प्रकार कर्म्मकृत फलको अनेक रूप तथा आश्रमस्थ फलको पृथक् पृथक् जानो; इसलोकमें जिस प्रकार कर्म्म अनुष्ठित होता है, उस ही प्रकार फल प्राप्त हुआ करता है।

हे द्विजगण! जो गन्ध, रस, रूप स्पर्श और शब्दयुक्त नहीं है, विद्वान् मुनिगण उसे प्रधान कहा करते हैं। वही प्रधान अव्यक्त है, उस अव्यक्त प्रधानका गुण महान् है; उस महत् है; उस महत्‌रूपी प्रधान भूतका गुण अहङ्कार है। अहङ्कारसे आकाश आदि पञ्च महाभूत उत्पन्न हुए हैं, शब्दादि प्रत्येक विषय पञ्चमहाभूतोंसे गुण कहके बर्णित हुए हैं; उस अव्यक्तको बीजधर्म्मा अर्थात् सृष्टिका कारण तथा प्रसवात्मक अर्थात् कार्य्यरूपी जानो। हमने ऐसा सुना है, कि महात्मा महान्, अहङ्कार तथा पंचमहाभूत, ये सभी बीजधर्म्मा तथा प्रसवधर्म्मा कहके बर्णित हुए हैं। पण्डित लोग शब्दादि विषयोंको भी बीजधर्म्मा तथा प्रसवधर्म्मा कहा करते हैं; चित्त उनका व्यावर्त्तक होता है। उन पंच महाभूतोंके बीच आकाशमें एक गुण, वायुमें दो गुण, अग्निमें तीन गुण, जलमें चार गुण और सर्व्वभूतकारी शुभाशुभ निदर्शनी चराचरोंसे परिपूरित पृथिवी पंचगुणयुक्त कहके बर्णित हुई है।

हे द्विजगण! शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध इन पांचोंको पृथिवीका गुण जानो। गन्ध पार्थिव गुण है, वह गन्ध अनेक प्रकारसे बर्णित हुआ है; उस गन्धके सब गुणोंको बिस्तारपूर्व्वक तुम लोगोंसे कहता हूं। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रूक्ष और बिषद, यह दश प्रकार पार्थिव गन्ध जानो, शब्द, स्पर्श, रूप और द्रव्य, ये सब जलके गुण कहे गये हैं; परन्तु रस अनेक प्रकारका कहा गया है, रसज्ञान बिस्तारपूर्व्वक कहता हूं। मीठा, खट्टा, कड़वा, तीता, कषेला और खारा ये छः प्रकार रसके बिस्तार हैं, ये जलमय कहके बर्णित हुए हैं। शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीनों अग्निके गुण कहे गये हैं। अग्निका गुण रूप अनेक प्रकारका है। सफेद, कृष्ण, लाल, नीला, पीला, अरुण, ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, चौकान और गोलाकार ये बारह प्रकारके अग्निके रूप बर्णित हुए हैं। इसही प्रकार शब्द और स्पर्श ये सब सत्यबादी ब्राह्मणोंके द्वारा बिशेष रीतिसे बिहित हुए हैं। वायुमें दो गुण है, वायुका गुण स्पर्शके कई भेद बर्णित हुए हैं। रूखा, शीतल, उष्ण, स्निग्ध, बिशद, कठिन, चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छल, दारुण, मृदु और बिस्तार, ये बारह प्रकार वायुके गुण हैं, इन्हें तत्त्वदर्शी धर्म्मज्ञ सिद्ध ब्राह्मणगण बिधिपूर्व्वक जानते हैं।

इसके अतिरिक्त हमने ऐसा सुना है, कि उन भूतोंके बीच आकाशमें भी एक गुण शब्द बर्णित हुआ है, उस शब्दके कई गुणोंको बिस्तार

पूर्व्वक कहता हूं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, निषाद, धैवत, इष्ट और बिभाग विशिष्ट संहत ये दश प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। सब भूतोंके बीच आकाश उत्तम है, आकाशसे उत्तम अहङ्कार; अहङ्कारसे श्रेष्ठ बुद्धि उससे श्रेष्ठ आत्मा, आत्मासे श्रेष्ठ अव्यक्त और अव्यक्तसे पुरुषको श्रेष्ठ जानो। जो लोग सब भूतोंके परापर तथा सब कर्म्मोंकी विधिको विशेष रीतिसे जानते हैं, वे सब भूतोंके आत्मभूत आत्मास्वरूप होकर अव्यय परमात्माको प्राप्त हुआ करते हैं।

५० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, मन पञ्चभूतोंकी उत्पत्ति स्थिति और विनाशके विषयमें प्रभु होता है। मन पञ्चभूत तथा महतका अधिष्ठाता है, बुद्धि मनका ऐश्वर्य्य कहके वर्णित हुई है; वह मन ही क्षेत्रज्ञ कहा गया है। जैसे सारथी उत्तम घोड़ोंको नियोग करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको नियोग किया करता है और इन्द्रियें बुद्धिकी सर्व्वदा क्षेत्रज्ञसे युक्त करती हैं। भूतात्मा शरीराभिमानी जीव महत और इन्द्रिय रूपी घोड़े तथा बुद्धिरूपी सारथीयुक्त रथमें चढ़के सर्व्वत्र भ्रमण करता है। जिसमें वशीभूत इन्द्रियग्राम अश्वस्वरूपसे नियुक्त, मन सारथी और बुद्धि प्रतोदस्वरूप है, उस ब्रह्मके विकारभूत शरीरको महारथ जानना चाहिये। जो ध्यानशील विद्वान मनुष्य इस ब्रह्ममय रथको विशेष रीतिसे जानता है, वह प्राणियोंके बीच कदापि मोहित नहीं होता। आदिभूत अव्यक्त और शेषस्वरूप विशेषयुक्त स्थावर तथा जङ्गममय, चन्द्रमा और सूर्य्यकी प्रभासे प्रकाशित, ग्रह तथा नक्षत्रमण्डलसे मण्डित, नदी और पर्व्वतोंसे परिभूषित, जलके द्वारा विविध रूपसे समलंकृत, सर्व्वभूतोंके आजीवभूत तथा सब प्राणियोंकी गतिस्वरूप परब्रह्म सदा विराजित है; उसमें ही क्षेत्रज्ञ विचरण किया करता है। इसलोकमें जो सब स्थावर और जङ्गम प्रभृति सत्व हैं, पहले वेही सब लीन होते हैं, फिर सूक्ष्म शरीरात्मक पञ्चमहाभूत तिसके अनन्तर भूतोंके सब शब्दादि गुण लीन हुआ करते हैं; येही दो शरीररूपी भूतसमुच्चय जानो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व्व, पिशाच, असुर और राक्षस, ये सब स्वभावसे उत्पन्न होते हैं, क्रिया वा कारणसे उत्पन्न नहीं होते। हे विप्रगण! जैसे समुद्रमें तरङ्ग उठके यथा समयमें उसहीमें लीन होती है, वैसे ही ये विश्वस्रष्टा मरीच्यादि प्रजापतिगण पञ्च महाभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन हुआ करते हैं। परन्तु विश्वस्रष्टा भूतोंके लय होनेपर पञ्च महाभूत विद्यमान रहते हैं, पुरुष उन्हीं भूतोंसे मुक्त होनेसे परम गति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। प्रभु प्रजापतिने इच्छा मात्रसे ही इस समस्त जगत्की सृष्टि की है; ऋषियोंने तपस्याके द्वारा देवत्व लाभ किया है। फल-मूल भोजन करनेवाले सिद्ध मुनिगण साधनके अनुसार तपस्यासे समाहित होकर त्रैलोक्यदर्शन करते हैं; रोगनाशक औषधी तथा अनेक विद्या तपस्याके द्वारा सिद्ध होती हैं, क्यों कि तपस्याकोही साधनका मूल जानो। जो दुष्प्राप्य इन्द्रपदादि, दुराम्नाय वेदादि, दुराधर्ष व्याघ्र आदि और प्रलयादि दुरन्वय है, वे सब तपस्यासे सिद्ध हुआ करते हैं; इसलिये तपस्या दुरतिक्रमणीय है। जो लोग सुरा पीनेवाले, ब्रह्महत्यारे, स्तेयी, भ्रूणहत्यारे तथा गुरुतल्पगामी हैं, वे भी सुतप्त तपस्याके द्वारा उन सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। मनुष्य सदा तपस्यापरायण होनेसे उस तपोबलसे ही सिद्ध होता है। महामायाविशिष्ट देवताओंने उस तपोबलसे ही स्वर्गमें गमन किया है।

जो लोग अतन्द्रित होकर आशीर्युक्त कर्म्म करते हैं, वे अहङ्कार समायुक्त होकर प्रजापतिके निकट निवास करते हैं। जो सब महात्मा

केवल ध्यानयोग करते हैं, वे ममतारहित तथा निरहङ्कारी होकर उत्तम महत लोक पाते हैं, प्रसन्नचित्त उत्तम आत्मवित पुरुष ध्यानयोग पर्य्याप्त होनेसे सदा लौकिक प्रकृतिमें प्रविष्ट हुआ करते हैं। ममतारहित निरहङ्कारी मनुष्य ध्यानयोगसे निवृत्त होनेपर इसलोकमें अव्यक्तमें प्रवेश करते हुए उत्तम महत् लोक पाते हैं; प्राणिवृन्द प्रकृतिसे उत्पन्न होके फिर प्रकृति संज्ञा लाभ करते हैं। जो पुरुष रज और तमोगुणसे निर्म्मुक्त होता है, वह केवल सतोगुण अवलम्बन करते हुए सब पापोंसे रहित होकर समस्त जगत्‌को उत्पन्न करता है; उसे ही निष्कल देवश ईश्वर जानो। उसे जो पुरुष जान सकता है, वही वेद जाननेमें समर्थ होता है। मननशील मनसे संपूर्ण ज्ञानको लाभ करते हुए सदा संयत होके रहें, और जो चित्त है, उसे ही मन कहते हैं, इस मनके वशीभूत होनेपर इसीको सनातन ईश्वर जानना चाहिये; अव्यक्तादि विशेषान्त अविद्याके लक्षण कहके वर्णित हुए हैं; तुम लोग गुणके द्वारा इन लक्षणोंको विशेष रीतिसे मालूम करो। "मम" ये दो अक्षर मृत्यु और "न मम,"—इन तीन अक्षरोंको शाश्वत ब्रह्म जानो, मन्दबुद्धि-रत कोई कोई मनुष्य कर्म्मकी प्रशंसा करते हैं जो महात्मा ज्ञानवृद्ध हैं, वे कर्म्मकी निन्दा किया करते हैं। पञ्चमहाभूत और एकादश विकार, यह षोड़शात्मक जीव कर्म्मके द्वारा मूर्त्तिमान होकर जन्म ग्रहण किया करता है। विद्या जो उस षोड़शात्मक पुरुषको ग्रास करती है, उसे ही अमृताशियोंका उपादेय ग्राह्यविषय जानो। इसही निमित्त पारदर्शी पुरुष कर्म्मसे प्रीति न करें; यह पुरुष विद्यामय है, कर्म्ममय नहीं है; जो लोग इस ही प्रकार उस अमृत, नित्य, अग्राह्य परमश्रेष्ठ अविनाशी जितचित्त और असङ्ग पुरुषको जानते हैं। वे अमर हुआ करते हैं। जो मनुष्य अपूर्व्व, अकृत्रिम, नित्य अपराजित आत्माको प्राप्त कर सकता है, वह इन सब कारणोंसे ही निश्चय अग्राह्य और अमृत हुआ करता है। जो पुरुष चित्तके मैत्र्यादि संस्कारोंको दृढ़ करते हुए हृदयपुण्डरीकमें चित्तको निरोध कर सकता है, वही उस सर्व्वाधिक शुभङ्कर ब्रह्मको जाननेमें समर्थ होता है; चित्त प्रसन्न रहनेसे पुरुष शान्ति लाभ कर सकता है,; स्वप्न दर्शन चित्त-प्रसादका लक्षण जानो। ज्ञानसिद्ध मुक्त पुरुषोंकी गति इस ही प्रकार जाननी चाहिये; योगिगण परिणामज प्रवृत्तियोंका दर्शन किया करते हैं; संसारसे विरत प्राणियोंकी ऐसी गति और यह सनातन धर्म्म, ज्ञानवान् पुरुषोंको प्राप्ति तथा अनिन्दित वृत्तियोंको इस ही प्रकार जानना योग्य है। सर्व्वभूतोंमें समनिष्पृह, निराशिष और सर्व्वत्र समदर्शी मनुष्य निज शक्तिके अनुसार इसगतिको प्राप्त कर सकते हैं।

गुरु बोला, उन महात्मा मुनियोंने गुरु ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके इस ही प्रकार आचरण करके उत्तम लोकोंको पाया था। हे महाभाग! मैंने यह सब तुमसे ब्रह्माका वचन यथार्थ रीतिसे कहा है। हे शुद्धात्मन्! तुमभी इसकापूरी रीतिसे आचरण करनेसे सिद्धिलाभ कर सकोगे।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुन्तीनन्दन! उस समय जब गुरुने शिष्यसे उस ही प्रकार अनुत्तम धर्म्म कहा, तब शिष्यने उन सब धर्म्मोंका पूरी रीतिसे आचरण करके मुक्ति लाभ किया। हे कुरुकुलोद्वह! जिस स्थानमें जानेसे पुरुष शोक नहीं करता, शिष्य उसही पदको पाकर कृतकृत्य हुआ।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण! आपने जिस ब्राह्मण और शिष्यको कथा कही है, वह ब्राह्मण तथा शिष्य कौन है? हे विभु! यदि यह विषय मेरे सुनने योग्य हो, तो आप कृपा करके इसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाहो! मुझे गुरु और मेरे मनको शिष्य जानो; हे धनञ्जय!

तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति रहनेसे मैंने तुमसे यह गुप्त विषय कहा है। हे कुरुकुलोद्वह! यदि मेरे विषयमें तुम्हारी नित्य प्रीति हो, तो तुम इस अध्यात्म-विषयको मेरे समीप सुनके इसका पूरी रीतिसे आचरण करो। हे अरिकर्षण! तुम इस धर्म्मको पूरी रीतिसे आचरण करनेपर सब पापोंसे मुक्त होकर कैवल्यमोक्ष लाभ करोगे। हे महाबाहो! पहले युद्धके समयमें इस ही विषयको मैंने तुमसे कहा था, इस निमित्त इस विषयमें मन संयोग करो। परन्तु मैंने बहुत समयसे प्रभु पिताका दर्शन नहीं किया, अब उन्हें देखनेकी अभिलाष होती है। हे भरतश्रेष्ठ! इसलिये तुम्हें इस विषयमें सम्मति देनी योग्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब कृष्णने अर्ज्जुनसे इतनी कथा कही, तब धनञ्जयने कहा, हे कृष्ण! आओ हम लोग अब इस नगरसे हस्तिनापुरको चलें, फिर आप वहां धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरको राज्यपालन करनेकी आज्ञा देकर निज पुरीमें गमन करियेगा।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कृष्णने दारुककी रथमें अश्व जोतनेकी आज्ञा दी, दारुक मुहूर्त्तभरके बीच रथमें घोड़ोंको जोतकर कृष्णसे बोला, 'रथ तैयार है'। इधर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन अनगामी सैनिक पुरुषोंसे बोले, हम लोग हस्तिनापुरमें जायेंगे, तुम लोग सुसज्जित होके रहो। हे पृथ्वीनाथ! सैनिक पुरुष अमित तेजस्वी पृथापुत्र अर्ज्जुनकी आज्ञानुसार सुसज्जित होकर उनसे बोले, कि हम लोग सज्जित हुए हैं। हे पृथ्वीपति! तिसके अनन्तर कृष्ण और अर्ज्जुन प्रसन्नचित्तसे रथपर चढ़के आपसमें अनेक प्रकारकी वार्त्ता करते हुए नगरकी ओर चले। हे भरतसत्तम! महातेजस्वी धनञ्जय उस रथमें स्थित वसुदेवपुत्र कृष्णसे फिर इस प्रकार कहने लगे। हे वृष्णिकुलोद्वह! आपकी कृपासे सब शत्रु मारे गये और राजा युधिष्ठिरने अकण्टक राज्य लाभ करके जय पाई है। हे मधुसूदन! आप पाण्डवोंके नाथ हैं, पाण्डव लोग प्लवस्वरूप आपको पाके कुरुसागरसे पार हुए हैं। हे विश्वात्मन्! हे विश्वकर्म्मन्! हे विश्वसत्तम! आपको नमस्कार है; मैं आपको जिस प्रकार जानता हूं, आप वैसे ही हैं। हे मधुसूदन! भूतात्मा नित्य आपके तेजसे उत्पन्न होता है। हे विभु! रति आपको क्रीड़ामयी लीला है और द्युलोक तथा भूलोक आपकी माया है। स्थावर जङ्गमके सहित यह समस्त जगत् आपमें ही प्रतिष्ठित है, आप ही सब भूतोंको चार भांतिसे विभक्त किया करते हैं। हे मधुसूदन! पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, निर्म्मल जोत्स्ना, छहों ऋतु और इन्द्रियें, ये सब आपकी हांसी हैं। हे मतिमन्! सदा गमनशील वायु आपका प्राण है, क्रोध सनातन मृत्यु है, पद्मालया लक्ष्मी आपमें नित्य विद्यमान रहती हैं। हे अनघ! आप रति, तुष्टि धृति, क्षान्ति, मति, कान्ति और समस्त चराचर हैं, इन सबको इस काल तथा प्रलयकालमें संहार किया करते हैं। हे कमलनेत्र! मैं अनन्तकालमें भी आपके गुणोंको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हूं, आप ही आत्मा और आप ही परमात्मा हैं, इसलिये आपको नमस्कार है। हे दुर्द्धर्ष! मैंने नारद, देवल, कृष्णद्वैपायन और कुरुपितामह भीष्मके निकट आपको जाना है। आपमें सब वस्तु समासक्त है, आप ही एकमात्र जनेश्वर हैं; आपने कृपा करके जो सब विषय मुझसे कहा है, मैं उसका पूरी रीतिसे आचरण करूंगा; आपने मेरे हितके लिये यह अत्यन्त अद्भुत कर्म्म किया है। धृतराष्ट्रपुत्र पापात्मा दुर्य्योधन जो युद्धमें मारा गया, आपनेही उसकी सेना जलाई है। मैंने जो युद्धमें विजय पाई है, वह आपकी बुद्धि तथा पराक्र-

मसे ही दुर्य्योधनके युद्धमें मुझे जय प्राप्त हुई है, ये सब कार्य्य तुम्हारे ही द्वारा पूरे हुए हैं। कर्ण, पापात्मा सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवाके बधको उपाय तुम्हारे ही द्वारा प्रदर्शित हुई। हे देवकीनन्दन! आपने प्रसन्नचित्त होकर मुझसे जो कहा है, मैं वही करूंगा; इसमें मुझे कुछ भी विचार नहीं है। हे अनघ! मैं धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर तुम्हारे गमन करनेके निमित्त उनसे निवेदन करूंगा। हे प्रभु! आपके द्वारका-गमन विषयमें मुझे भी अभिलाष होती है। हे जनार्द्दन! आप शीघ्र ही उस मेरे मातुल वसुदेव, दुर्द्धर्ष बलदेव तथा अन्यान्य वृष्णिपुङ्गवोंका दर्शन करेंगे।

अनन्तर वे कृष्णार्ज्जुन, दोनों इसी प्रकार वार्त्तालाप करते हुए हस्तिनापुरमें पहुंचकर प्रहृष्ट जनसमूहसे परिपूरित उस पुरीके बीच प्रविष्ट हुए। हे महाराज! श्रीकृष्ण! और अर्ज्जुनने इन्द्रभवन सदृश धृतराष्ट्रके गृहमें जाकर प्रजानाथ धृतराष्ट्र, महाबुद्धिमान विदुर, राजा युधिष्ठिर, दुर्द्धर्ष भीम, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव, धृतराष्ट्रके समीप बैठे हुए अपराजित युयुत्सु, महाबुद्धिमती गान्धारी, पृथा, भामिनी द्रौपदी, सुभद्रा प्रभृति भरतकुलकी स्त्रियोंको देखा। तिसके अनन्तर अरिदमन वासुदेव और अर्ज्जुन, दोनों उस राजा धृतराष्ट्रके निकट अपना अपना नाम सुनाकर उनके दोनों चरण ग्रहण किये। अनन्तर गान्धारी, पृथा, धर्मराज युधिष्ठिर और भीमके दोनों चरण ग्रहण किये। फिर विदुरको आलिङ्गन करते हुए कुशल पूंछके उनके सहित बूढ़ेराजा धृतराष्ट्रकी उपासना करने लगे। अनन्तर महाराज मेधावी धृतराष्ट्रने रात्रिके समयमें शयन करनेके लिये युधिष्ठिर प्रभृति कुरुद्वह और जनार्द्दन कृष्णके निमित्त गृह बिभाग कर दिया। वे लोग राजा धृतराष्ट्रके द्वारा शयन करनेकी आज्ञा पाकर निज निज गृहमें गये, परन्तु वीर्य्यवान् कृष्णने धनञ्जयके गृहमें गमन किया। अर्ज्जुनके सहायवान् मेधावी कृष्णने धनञ्जयके गृहमें सब प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा विधिपूर्व्वक पूजित होकर उस स्थानमें शयन किया। रात्रिके अनन्तर प्रभात होनेपर श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन प्रातःकृत्य करके अर्च्चित होकर जिस स्थानमें महाबल धर्मराज मन्त्रियोंके सहित निवास करते थे, उस गृहमें उपस्थित हुए। महात्मा कृष्ण और अर्ज्जुन धर्मराजके अत्यन्त सुशोभित गृहमें प्रवेश करके इन्द्रका दर्शन करनेवाले अश्विनीकुमारकी भांति उनका दर्शन करने लगे। वृष्णि और कुरुपुङ्गव कृष्णार्ज्जुन राजा युधिष्ठिरके निकट जाकर प्रसन्नचित्तसे उनके द्वारा अनुज्ञात होकर बैठे। तिसके अनन्तर वाग्मिवर मेधावी राजा युधिष्ठिर आपकीन्मुख कृष्ण और अर्ज्जुनको देखकर कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे वीरवर यदुकुरुद्वह कृष्णार्ज्जुन! मुझे मालूम होता है, कि तुम लोग कुछ कहोगे, इसलिये वक्तव्य विषयमें विचार न करके शीघ्र कहो, तुम लोग जैसा कहोगे, मैं वही करूंगा। वाक्यविशारद फाल्गुन अर्ज्जुन धर्मराजका ऐसा बचन सुनकर उनके निकट जाके विनीतभावसे कहने लगे। महाराज! प्रतापवान् श्रीकृष्णचन्द्रको द्वारकासे आये बहुत समय बीत गया, अब आपकी अनुमति होनेसे ये पिता माताके दर्शनके निमित्त द्वारकापुरीमें जानेकी इच्छा करते हैं। हे महावीर! यदि आप सम्मत होकर इन्हें आज्ञा दें, तो ये आनर्त्तनगरीकी ओर गमन करें, इसलिये आपको अनुमति देनी उचित है।

युधिष्ठिर बोले, हे पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन! तुम्हारा कल्याण हो, तुम आज शूरसुत वसुदेवका दर्शन करनेके लिये द्वारका नगरीमें जाओ। हे महाबाहु केशव! तुमने मेरे मामा वसुदेव और देवकी देवीका बहुत समयसे दर्शन नहीं किया, इसीसे तुम्हारे गमन विषयमें

मुझे अभिलाष होती है । हे महाप्राज्ञ ! तुम मेरे मामा वसुदेव और बलदेवके निकट जाकर उनकी यथायोग्य पूजा करना । हे मानद ! तुम सदा मुझे और बलिश्रेष्ठ भीम, फाल्गुन अर्ज्जुन, सहदेव और नकुलको स्मरण करना । हे महाभुज ! तुम आनर्त्तनगरवासी प्रजागण, पिता वसुदेव और वृष्णिवंशियोंको देखकर मेरे अश्वमेध यज्ञमें फिर आना । हे सात्वत ! विविध रत्न, धन तथा दूसरी जिन वस्तुओंके लिये तुम्हारी इच्छा हो, तुम उन्हें ग्रहणकरके गमन करो । हे केशव ! तुम्हारी कृपासे ही यह समुद्रके सहित पृथ्वी हमारे हस्तगत हुई और सब शत्रु मारे गये हैं ।

कुरुपति धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे । श्रीकृष्ण बोले, हे महाभुज ! यह पृथिवी, रत्न और सब धन तुम्हारा है, मेरे गृहमें जो सब अन्यान्य धन है, तुम ही उस समस्त धनके स्वामी हो ।

अनन्तर बलवान गदाग्रज श्रीकृष्णचन्द्रने धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके द्वारा प्रतिपूजित तथा उस ही प्रकार उक्त होकर पितृष्वसा कुन्तीकी विधिपूर्व्वक प्रदक्षिणा करते हुए उससे कहके भली भांति सम्मानित होकर गमन किया । अनन्तर चतुर्भुज गदाग्रज कृष्ण कुन्ती और विदुर प्रभृति मनुष्योंसे प्रतिनन्दित होकर दिव्य रथमें चढ़के नागपुरसे बाहिर हुए । महाभुज जनार्द्दन युधिष्ठिर तथा पितृष्वसा कुन्तीकी अनुमतिके अनुसार निज भगिनी सुभद्राको रथपर चढ़ाके पुरवासियोंके बीच घिरकर हस्तिनापुरसे बाहिर हुए । कपिध्वज (अर्ज्जुन) सात्यकि, माद्रवतीपुत्र नकुल सहदेव, अगाधबुद्धि विदुर और गजराज-विक्रम भीमसेन उस माधवके अनुगामी हुए । अनन्तर जनार्द्दनने कुरुराष्ट्रवर्द्धन भीमादि तथा विदुरको लौटाकर दारुक और सात्यकिको शीघ्र रथ चलानेके लिये आज्ञा दी ।

अनन्तर जैसे इन्द्र शत्रुओंको मारके स्वर्गपुरमें गमन करते हैं, वैसे ही अरिगणमर्द्दन प्रतापवान जनार्द्दनने शत्रुओंको संहार करके सात्यकीके सङ्ग आनर्त्तपुरीमें गमन किया ।

५२ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वृष्णिकुलनन्दन कृष्णके द्वारकाकी ओर गमन करनेपर परन्तप भरतश्रेष्ठ अनुयात्रिकगण उन्हें आलिङ्गन करके उनके समीपसे निवृत्त हुए । फाल्गुन अर्ज्जुन वृष्णिवंशीय कृष्णको बार बार आलिङ्गन करके जबतक वह नेत्रोंसे दीख पड़ते थे, तबतक उन्हें बार बार देखने लगे ; अनन्तर अर्ज्जुनने गोविन्दमें निवेशित निज दृष्टिको अत्यन्त कष्टसे संहार की और अपराजित कृष्णने भी अति कष्टसे निज दृष्टि निवारण की ।

महात्मा कृष्णके चलनेके समयमें जो सब अद्भुत निमित्त प्रकट हुए थे, वह सब विषय मैं कहता हूं, तुम सुनो । वायु रथके अगाड़ी मार्गको कङ्कड़, धूलि और कांटोंसे रहित करके महावेगपूर्व्वक प्रवाहित होने लगा ; इन्द्र शार्ङ्गधन्वा कृष्णके रथके अगाड़ी सुगन्धित उत्तम शीतल जल तथा दिव्य फूलोंकी वर्षा करने लगा । अनन्तर महाबाहु कृष्ण समतल मरुभूमिमें गमन करते हुए अमिततेजस्वी मुनिश्रेष्ठ उतङ्कका दर्शन किया । विशाल नेत्रवाले तेजस्वी कृष्णने मुनिकी पूजा करके अनामय कुशल प्रश्न किया, ब्राह्मणश्रेष्ठ उतङ्क कृष्णके द्वारा कुशल पूछे जानेपर माधवकी पूजा करते हुए पूछने लगे । हे शौरि ! आपने जो कुरुपाण्डवोंके गृहमें जाकर अचल सौभ्रात्र किया है, वह सब मेरे निकट वर्णन करो । हे वृष्णिपुङ्गव केशव ! आप अपने सदा प्रियसम्बन्धी उन वीरोंको एकत्रित करके आये हैं न ? हे परन्तप ! पाण्डुके पांचो पुत्र और धृतराष्ट्रके सब पुत्र आपके सहित विहार करते हैं न ? हे केशव ! आपके

प्रभु होकर कौरव कुलको सान्त्वना करनेसे सब राजा निज राज्यके बीच सुख भोग करेंगे न? हे तात! मेरी जो सम्भावना तुममें नित्य निवास करती है, तुम भरतकुलके विषयमें उसे सफल किया है न?

श्रीभगवान् बोले, मैंने पहिले कौरवोंके लिये सन्धिविषयमें विशेष यत्न किया था, जब वे लोग शान्ति अवलम्बन करनेमें समर्थ न हुए, तब वे सब पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मृत्युको प्राप्त हुए, कोई पुरुष बल वा बुद्धिसे दैवको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होता। हे पापरहित महर्षि! उन कौरवोंने जो भीष्म, बिदुर तथा मेरे मतको अतिक्रम किया था, उसे आप जानते हैं, उसहीसे वे सब परस्पर लड़के यमलोकमें गये हैं; मित्रों और पुत्रोंके मारे जानेपर केवल पांचो पाण्डव अवशिष्ट हैं और धृतराष्ट्र पुत्रगण पुत्रों तथा बान्धवोंके सहित मारे गये हैं। कृष्णके ऐसा कहनेपर उतङ्क अत्यन्त क्रुद्ध होकर क्रोधसे नेत्र लाल करके उनसे कहने लगे।

उतङ्क बोले, हे कृष्ण! जब तुमने परित्राण करनेमें समर्थ होके भी उन प्रिय सम्बन्धी कुरुपुङ्गवोंका परित्राण नहीं किया, उसही निमित्त मैं तुम्हें निश्चयही शाप दूंगा। हे मधुसूदन! क्यों कि तुमने उसही समय उन लोगोंको निग्रह करके निवारित नहीं किया, इसही निमित्त मैं मन्युयुक्त होकर तुम्हें शाप दूंगा। हे माधव! तुमने समर्थ होके भी मिथ्या आचरण किया है, इसीसे कुरुपुङ्गवगण उपेक्षित होकर बिनष्ट हुए हैं।

श्रीकृष्ण बोले, मैं बिस्तारपूर्व्वक जो कहता हूं, उसे सुनो। तुम तपस्वी हो, इसलिये मैं जो तुमसे बिनय करता हूं, उसे ग्रहण करो; मैं जो अध्यात्म विषय कहता हूं, उसे सुनके इस समय शाप मोचन करो; कोई पुरुष अल्प तपस्यासे मुझे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता, हे तपताम्बर! तुम्हारी तपस्या नष्ट करनेकी मैं इच्छा नहीं करता, क्यों कि तुमने अत्यन्त कष्टसे उस उत्तम महद्दीप्त तपस्या उपार्ज्जन तथा गुरुजनोंको सन्तुष्ट किया है। हे द्विजसत्तम! तुम्हारा कौमार ब्रह्मचर्य्य विशेष रीतिसे बिदित है, तुमने अधिक दुःख करके जो तपस्या उपार्ज्जनकी है, उसे मैं नष्ट करनेकी इच्छा नहीं करता।

५३ अध्याय समाप्त।

उतङ्क बोले, हे केशव! आप मुझसे अनिन्दित अध्यात्म विषय यथार्थ रीतिसे कहिये, मैं उस अध्यात्म विषयको सुनकर आपके शापका उत्तम रीतिसे अभिधान करूंगा।

श्रीकृष्ण बोले, हे द्विज! तम, रज और सत्त्व इन सब गुणोंको मेरे आश्रित जानो और रुद्र तथा वसुगणको मुझसे उत्पन्न हुआ समझो। सब भूतोंमें मैं विद्यमान हूं और यह निश्चय जानो; कि मुझमें सब भूत विद्यमान रहते हैं। हे द्विज! दैत्य, यक्ष, गन्धर्व्व, राक्षस, अप्सराओं और नागोंको मुझसे ही उत्पन्न हुआ समझो, पण्डित लोग जिसे सत्, असत्, अव्यक्त, व्यक्त, अक्षर और क्षर कहा करते हैं, उन सबको ही मदात्मक जानो। हे मुनि! चारों आश्रमोंमें जो चार प्रकारके धर्म्म और वैदिक कर्म्म बिहित हैं, वे सब आपको बिदित हैं, उन सबको भी सदा मदात्मक जानो। असत् 'शश बिषाणादि' सदसत 'घटपटादि' और सदसतपर अव्यक्तात्मकरूपसे मैंही विश्वमें देवदेव सनातन हूं; इस लिये मुझसे जगत् भिन्न नहीं है। हे भृगुद्वह! मुझेही ओंकार प्रभृति सब वेद, यूप, सोम, चरु होम और यज्ञमें त्रिदशाप्यायन जानो।

हे भृगुनन्दन! मुझेही होता, हव्य, अध्वर्य्यु, कल्पक और परम संस्कृत हवि जानो, महायज्ञोंमें उद्गाता गीतघोषके द्वारा मेराही स्तव किया करते हैं और प्रायश्चितमें शान्ति तथा मङ्गलवाचक ब्राह्मणगण विश्वकर्म्मा कहके

मेरीही स्तुति किया करते हैं। हे द्विजसत्तम! धर्म्मको मेरा जेष्ठ पुत्र और सर्व्वभूत दयात्मक मानसको दयित जानो। हे सत्तम! जो सब मनुष्य इस धर्म्म में बर्त्तमान और निवृत्त रहते हैं, मैं उनही उस मनुष्यरूपसे अनेक योनियोंमें भ्रमण करते हुए धर्म्म संस्थापन तथा धर्म्मरक्षाके हेतु निवास किया करता हूं। हे भार्गव! मैं तीनों लोकोंके बीच वही रूप तथा वही वेष धारण करता हूं। मैंही विष्णु, मैंही ब्रह्मा तथा मैंही उत्पत्तिलयकर्त्ता प्रभु हूं। मैंही सब भूतोंकी सृष्टि तथा संहारकर्त्ता हूं और अधर्म्ममें विद्यमान मनुष्योंके बीच मैंही अच्युत हूं। मैं प्रजासमूहकी हितकामनासे युग युगमें उनही उस योनिमें प्रविष्ट होकर धर्म्मका सेतुबन्धन किया करता हूं।

हे भृगुनन्दन! जब मैं देवयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, तब देववत्, जब गन्धर्व्वयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, उस समय गन्धर्व्वसदृश, जिस समय नागयोनिमें प्रविष्ट होता हूं, उस समय नागसदृश और यक्ष राक्षस प्रभृति जब जिस योनिमें प्रवृत्त होता हूं, तब उस ही प्रकार आचरण किया करता हूं। मैंने मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होकर उन कौरवोंके समीप कृपणभावसे बहुत ही याच्ञा की थी, क्रुद्ध होकर महत् भय दिखाके त्रासित किया तथा यथायोग्य शिक्षाप्रदान की थी; परन्तु उन लोगोंने महामोहसे विमोहित होकर मेरे बचनको ग्रहण नहीं किया। बल्कि उन लोगोंने कालधर्म्मसे घिरके तथा अधर्म्मसंयुक्त होकर धर्म्मके द्वारा युद्धमें मरके सुरपुरमें गमन किया है। हे द्विजोत्तम! पाण्डवोंको भी जगतके बीच बड़ाई प्राप्त हुई है। हे विप्रवर! आपने मुझसे जो पूछा था, मैंने वह विषय पूरी रीतसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

५४ अध्याय समाप्त।

उतङ्क बोले, हे जनार्द्दन! मैं आपको जगतकर्त्ता कहके जान सका हूं, निश्चय ही यह आपकी कृपा है, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। हे अच्युत! मेरा चित्त आपमें आसक्त होनेसे प्रसन्न होकर आपसे निवृत्त हुआ। हे जनार्द्दन! यदि आपकी किञ्चित कृपा हो, तो मैं आपका ईश्वररूप देखनेकी इच्छा करता हूं, आप अनुग्रह करके वह रूप मुझे दिखाइये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धीमान् धनञ्जयने जिस शाश्वत वैष्णवरूपका दर्शन किया था, कृष्णने परम प्रसन्न होकर उतंकको वही मूर्त्ति दिखाई। उतङ्कने महात्मा महाभुज विश्वरूप सहस्रसूर्य्य तथा जलती हुई अग्निसदृश सर्व्वव्यापी सर्व्वतोमुख कृष्णका दर्शन किया अनन्तर विप्रवर उतङ्क उस अद्भुत परम रूप परमेश्वरका दर्शन करके अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगे।

उतंक बोले, हे विश्वकर्म्मन विश्वात्मन्! आपको नमस्कार है। हे विश्वसम्भव! आपके दोनों चरणोंसे पृथ्वी, सिरसे आकाश जठरके द्वारा द्युलोक तथा भूलोकका मध्य और दोनों भुजासे सब दिशा आवृत होरही हैं। हे अच्युत! आप ही इस विश्वरूपसे निवास करते हैं। हे देवदेव! यह समस्त अक्षय अनुत्तम रूप संहार करिये। मैं फिर आपको उस ही कृष्णरूपसे देखनेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय गोविन्द कृष्ण प्रसन्न होकर उतङ्कसे बोले, कि तुम मुझसे बर मांगो। तब उतङ्कने उनसे यह बचन कहा, हे पुरुषोत्तम कृष्ण! आज मैंने आपके इस रूपका जिस प्रकार दर्शन किया, वही मुझे यथेष्ट वर प्राप्त हुआ है। कृष्ण फिर उतङ्कसे बोले, कि तुम निश्चय ही मेरा यह अमोघ दर्शन पाओगे; इसमें और विचार मत करो।

उतङ्क बोले, हे विभु! यदि आप इसे अवश्य करणीय बोध करते हैं, तो इस मरुभूमिके बीच जिस स्थानमें मैं इस दुर्लभ जलकी